जाग्रत नेपाल

लेखक,

श्री ठा० रघुनाथसिंह

अनुभूति-प्रकाशन

बनारस ।

प्रथमावृत्ति]

प्रकाशक—

श्री रघुनाथ 'नाथ',

अनुभूति-प्रकाशन,

काशी ।

[सन् १९५० ई०]

मुद्रक—

बजरंगबली गुप्त

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, बनारस ।

समर्पण

आदरणीय श्री श्रीप्रकाशजी महोदय

के

कर-कमलों में

महामहिम,

शुद्ध हृदय, पवित्र भावना एवं सच्चाई के साथ नेपाली जनता के जीवन-स्तर को उठाने का जो ऐतिहासिक शुभ प्रयास आपने किया था, यदि उसकी स्मृति में यह पुस्तक आपको न समर्पित करूँ तो अन्य किसे करूँ ? यह पुस्तक आप ही के उद्योग, प्रयास एवं सहानुभूति का परिणाम है। मैंने तो केवल अक्षरों को कागज़ पर फैलाया है।

आपका स्नेहभाजन,

रघु०

लेखक के अन्य प्रकाशित ग्रंथ

१ Towords freedom
२ Consider
३ आधुनिक राजनीति का क ख ग
४ फासिज्म
५ भिखारिणी
६ एक कोना
७ चौरा
८ संस्कार
९ कहाँ
१० इन्द्रजाल
११ मैं
१२ लावारिस

शीघ्र प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थ—

१ योगवशिष्ठ उपाख्यान
२ रामगाथा
३ भक्तमाल
४ स्वाधीनता

———

श्री श्रीप्रकाश

भूमिका

जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप पराधीन और दरिद्र होना कहा जाता है। जब दोनों एक साथ मिल जायँ तो उसे दैवी कोप समझना चाहिए। नेपाल में दोनों ही वर्तमान हैं। नेपाल को मैंने कभी स्वाधीन अथवा स्वतंत्र देश नहीं समझा। अंग्रेज, महाराज तथा राणा इन तीन की गुलामियों के बीच नेपाली जनता शस्त्रोपजीवी मात्र रह गई है। नेपाली और गुरखे नौजवान दरवान के रूप में जहाँ तक फैल सकते थे, फैल गए। यदि नेपाल में कुछ लोग आगे बढ़े अथवा समाज में स्थान प्राप्त किया तो वह अपवाद ही कहा जायगा। नेपाल के राजा केवल शोभा की वस्तु हैं। राणा-वंश ही फैला है। जनता की जीवन-श्री सोखकर वही फूलता-फलता है। केवल दो ही वर्ग नेपाल में है—[१] राणा अथवा उनके विलास किंवा कृपा द्वारा या उनके आश्रय में पनपनेवाला कुलीन अथवा उच्च वर्ग और [२] जनता। मध्यमवर्ग नेपाल में अपवादरूप हैं। भारत में आबाद नेपाली, अथवा जिनका भारत में सम्बन्ध है, वे ही नेपाल के नाममात्र के मध्यम वर्गी हैं। नेपाल में आन्दोलन चल-चलकर रुक जाता है। उसका कारण यह है कि आन्दोलनकारियों में अधिक संख्या उन लोगों की हो गई है, जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से किसी-न-किसी राणावंशीय शाखा के आश्रित रहते हैं अथवा उनकी नीति उन्हीं के द्वारा परिचालित होती है। इन कुटुम्बीय नीति का उद्देश कुटुम्बविशेष के हाथों में अधिकार अथवा कौटुम्बिक स्वार्थ को अक्षुण्ण बनाए रखना होता है। यदि नेपाल में ठोस मध्यम-

वर्ग होता तो नेपाली जनता बहुत आगे बढ़ गई होती। क्योंकि उस समय आर्थिक श्रोत का आधार जनता होती; न कि राणा वंशीय व्यक्तिविशेष। इस अन्धकारपूर्ण वातावरण में हम लोगों का नेपाल जाना नेपाल के साहसी सच्चे नवयुवकों के प्रथम प्रयास का फल था, जिसके द्वारा नेपाली वर्तमान कुटुम्बीय शासन के स्थान पर जनता के हाथों में शासन लाना चाहते थे। यह बात उस समय की है जब भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था और पण्डित जवाहरलालजी के विशेष व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण वैधानिक सलाहकार के रूप में सर्व श्री श्रीप्रकाशजी एवं डा० रामउग्रह सिंह का प्रतिनिधिमंडल नेपाल गया था। मेरा जाना केवल श्री श्रीप्रकाशजी की कृपा का परिणाममात्र था।

नेपाल की प्राकृतिक शोभा ने हमें आकर्षित किया। परन्तु सबसे अधिक मैं आकर्षित हुआ नेपाली जीवन से। नेपाल में वैधानिक एवं राजनीतिक दृष्टि से हम लोगों ने क्या किया, यह राजनीतिक बात है और उसका गुप्त रहना ही उचित है। इस पुस्तक का उद्देश्य नेपाल के सम्बन्ध में कुछ जानकारी जनता एवं नेपाली बन्धुओं को करा देना है।

नेपाल में पहुँचते ही दो दिनों के पश्चात् ही मैं समझ गया कि हम लोगों का यहाँ आना व्यर्थ हुआ। नेपाल के राणा महोदयगण हमें अपना शत्रु तथा नेपाली-जनआन्दोलन का समर्थक समझते थे। वे हमें भुलावे में रखकर बात टालना चाहते थे। मुझे अपने कार्य से स्वयं अरुचि उत्पन्न हो गई। श्री श्रीप्रकाशजी भी कुछ असन्तुष्ट हुए; लेकिन इस ओर मेरी प्रगति न हो सकी, क्योंकि राजनीति-विज्ञान मेरा प्रिय विषय रहा है।

अपने समय का यथाशक्ति उपयोग मैंने नेपाली-जीवन एवं समस्या को राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन करने में लगाया। हम लोगों पर गुप्तचर लगाए गए थे। सतर्क-दृष्टि हमें पर रखी जाती थी। फिर भी मेरा मिलन काठमाण्डू के प्रगतिशील उदार व्यक्तियों से हो जाया करता था। मिलन किस प्रकार होता था, इसे गुप्त रखना श्रेयस्कर है।

यह पुस्तक केवल दस दिनों में लिखी गई है, वह भी रात्रि में दो बजे से छः बजे के बीच में अर्थात् जब श्री श्रीप्रकाशजी सिंहदरबार की बैठकों में सम्मिलित होने के लिए जाते थे। कागज की कमी थी, अतएव अधिकतर बनाए गए विधान के मसौदे के बेकार पृष्ठ भागों पर ही प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई। बड़ी कठिनता से एक सज्जन ने एक दस्ता कागज दिया, वह भी डरते हुए। पुस्तक की पाण्डुलिपि मैं बड़ी सतर्कता के साथ रखता था; क्योंकि भय था कि कहीं नेपाल-सरकार रोक न ले। काशी से शीशगढ़ी तक एक लेख लिखा था और उसे डाक में छोड़ा; परन्तु उसका आज तक पता नहीं चला कि क्या हुआ? उसे श्री श्रीप्रकाशजी ने शीशगढ़ी में ही देखा था। उस भाग को मैंने पुनः वहीं लिखा; क्योंकि नेपाल के सम्बन्ध में उस समय जैसी भावना हृदय में उदित थी उसे तद्रूप रखने के लिए मैंने वहाँ ही लिखना उचित समझा।

मैंने किसी द्वेष या ईर्ष्यावश यह पुस्तक नहीं लिखी है। प्रस्तुत पुस्तक लिखकर किसी को कष्ट भी पहुँचाना नहीं चाहता हूँ। मैंने विश्वास किया है और अब भी उसी विश्वास पर दृढ़ हूँ कि राणाशाही के बिना हटे नेपाल की उन्नति नहीं हो सकती।

जनता एवं राणाशाही दोनों का स्वार्थ एक दूसरे के विपरीत है। दोनों के मार्ग परस्पर विरोधी हैं। दोनों की धाराएँ दो ओर चलनेवाली हैं; अतएव एक के विकास में दूसरे का अवसान होना अवश्यम्भावी है।

मैं काशी का रहनेवाला हूँ, अतः काशी में बैठकर सुदूर-स्थित नेपाल की उन्नति में क्या सहायता पहुँचा सकता हूँ? आर्थिक सहायता, दरिद्रतादेवी का एकान्त पुजारी होने के कारण भी नहीं कर सकता; किन्तु काशी के नेपाली बन्धुओं से मेरा साथ रहा है। नेपाली राष्ट्रीय कांग्रेस तथा प्रगतिशील बन्धुओं से सम्पर्क रहा है। नेपाल की सीमाओं की कितनी ही सभाओं में गया हूँ। जितनी भी सहायता जनता की उन्नति एवं विकास के लिए मुझसे हो सकती है, मैं अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर सकता हूँ और करूँगा। क्योंकि मैं नेपाल को प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टियों से भारतवर्ष का अविभाज्य अंग मानता हूँ। नेपाल की वनश्री, वहाँ के मन्दिर, पेगोड़ा, प्रकृति एवं वहाँ के लोगों का सादा, सरल, शुद्ध जीवन मानों पुकार उठता है, मुझे अपनी ओर बुलाता है और मेरा मन अनजाने उनमें मिल जाता है। उनसे क्यों स्नेह हो गया, कह नहीं सकता। जब एकान्त में बैठता हूँ तो एक-एककर आँखों के सम्मुख अपनी सुहावनी स्मृति के साथ आते-जाते हैं। कभी-कभी न जाने क्यों अनायास इच्छा होती है कि गोकर्ण-जैसे एकान्त स्थान में जाकर एकान्त चिन्तन में अपना शेष समय बिता दूँ। वहीं अपनी शारीरिक लीला चुपचाप एक दिन दूसरी यात्रा के लिए समाप्त कर दूँ। काशी-जैसे मुक्ति-स्थान में रहकर भी इस प्रकार सोच उठता हूँ।

हो सकता है कि पूर्वजन्म का कोई संस्कार हो; परन्तु इतना मैं अवश्य कह सकया हूँ कि मनुष्य के नाते संसार के मानव की सेवा करना, उन्हें विकास की ओर चलते देखकर प्रसन्न होना मानवीय गुण है और मैं उस गुण का ग्राहक हूँ। इससे यदि किसी को ठेस लगे तो मैं श्री पशुपति भगवान् से यही कहूँगा कि भगवन् ! मैं किसी को कष्ट देना नहीं चाहता; किन्तु बुद्ध के रूप में एक दिन आपने ही कहा था कि 'बहुजन सुखाय' 'बहुजन हिताय' कार्य करना श्रेयस्कर है। मैं उसी मार्ग का अनुसरण कर नेपाल के बहुजनसुखाय निमित्त कुछ करना चाहता हूँ।

पुस्तक तीन वर्ष पीछे रह गई। कारण स्पष्ट है, कन्ट्रोल और कांग्रेस-सरकार आने के पश्चात् शिफारिस के वातावरण की बाढ़। प्रकाशक उन्हीं पुस्तकों को लेना चाहता है, जो पाठ्यपुस्तकों में ले लीं जायँ अथवा सरकारी पुस्तकालयों में उन्हें लेखकों के प्रयास से स्थान मिलने का भरोसा हो। मैं इस गुण से रहित हूँ, इसे काशी के प्रकाशक जानते हैं। स्वभावत: शिफारिस से मुझे घृणा है। मानव होकर मानव के सम्मुख ही याचनावृत्ति का प्रकृतित: विरोधी हूँ। किसी को धोखा देना सीखा नहीं, इसलिए चिकनी-चुपड़ी बातों से काम निकालना छल समझता हूँ। पुस्तक बहुत दिनों तक 'ज्ञानमण्डल' काशी में रखी रही। एक दिन मैंने उसे मँगाकर श्री पशुपति के पथरघट्टा-घाट के समान गंगालाभ के लिए एक ओर रख दिया ? 'युग-वाणी' नेपाली साप्ताहिकपत्र के मित्रों ने प्रति सप्ताह नेपाली अनु-वाद छापना चाहा। अस्तव्यस्त पृष्ठ एकत्र किए गए। छापना आरम्भ किया गया; किन्तु आगे चलकर आर्थिक अवस्था के

कारण 'युगवाणी' भी गंगालाभ कर गयी। मैंने सोचा भगवान् की इच्छा नहीं है। जिस प्रकार अपने ३१ वर्ष के पुराने राजनीतिक जीवन को सन्तोष के साथ काशी की गलियों के घूमता हुआ बिता चुका हूँ उसी प्रकार सोचा कि पुस्तक में पृष्ठ समय की गति के साथ स्वत: नष्ट होकर अनन्त में विलीन हो जायँगे।

मुरब्बा खाकर कितने मन्त्री हो गए, कितने एम० एल० ए० हो गए, कितने नेता हो गए, यह किंवन्ती श्री रघुनाथ 'नाथ' मुरब्बावाले चौक, काशी और अपने बालसखा एवं जेल के साथी के विषय में कही जाती है। उनकी दुकान स्वयं काशी के राजनीति में अपना स्थान रखती है। कांग्रेसी गान्धीवादी, समाजवादी, कम्युनिस्ट, फारवर्ड-ब्लाक, राइस्ट, हिन्दूसभाई, राष्ट्रीय सेवकसंघ सभी वहाँ आते हैं, मुरब्बा खाते हैं, ठहरते हैं और अपनी-अपनी बातकर चले जाते हैं। श्री रघुनाथ 'नाथ' जी स्वयं कांग्रेस-कमेटी के सदस्य हैं और कर्मठ कार्यकर्ता सन् १९२१ ई० से रहे हैं। काशी के प्रबल राजनीतिक क्षेत्र में वे अजातशत्रु हैं।

नेपाली बन्धुओं की सहायता हजारों रुपयों से उन्होंने की है। नेपाली कार्यकर्ता अथवा कुलीन नेपाली, जिनका सम्बन्ध काशी से है, प्राय: सभी उन्हें जानते हैं, केवल उन लोगों को छोड़कर जो किसी को जानना भी अपने लिए छोटी बात समझते हैं। इनके बड़े भाई श्री ज्ञानचन्दजी जैसा निष्काम-कर्मी मिलना दुर्लभ है। सन् १९२१ ई० से जेल जाते-जाते वे तबाह से एक समय हो गए थे; लेकिन आज भी उन्हें अपनी दुकान में बैठना और काशी की गलियों में घूमकर काम करना जितना

प्रिय है, उतना यदि दुकानदारी या कांग्रेस में पद-प्राप्ति प्रिय होती तो आज कहाँ होते, अन्दाज लगाने में दिक्कत होती है। उनकी भी दुकान ठठेरीबाजार में नेपाली-आन्दोलन के सहायकों का एक अड्डा है। उनसे तथा नाथजी से नेपाल के सम्बन्ध में ऐसी बातें मालूम होती हैं, जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता है। श्री रघुनाथनाथजी नेपाल भी भ्रमण कर चुके हैं और वास्तविक स्थिति से पूर्ण परिचित हैं।

श्री रघुनाथ नाथ ने एक दिन मुझसे पाण्डुलिपि माँगी। लगभग तीन मास तक मैं टालता गया। आखिर एक दिन मुझे देना ही पड़ा। श्री बजरंगबली अध्यक्ष श्री सीताराम प्रेस स्वयं क्रांतिकारी तथा सन् १९२१ ई० में मेरे साथ जेल में रह चुके हैं। प्रेस चल गया, भगवान् की दया, नहीं तो अपनी स्थिति से ही सन्तोष। लड़ाई के समय और आजकल जब कि लोगों ने आज प्रेस खोला और कल लखपती हो गए, वे सन् १९२२ ई० में जहाँ अपने प्रेस के साथ थे शायद उसके पीछे हो गए। कारण यही था कि न कागज नाजायज तौर से लिया और न एक पैसा ब्लेकमारकेट द्वारा प्राप्त करने की कोशिश की और न दिया। परिणाम यह हुआ कि जहाँ के तहाँ रह गए और पुस्तक छपते-छपते एक वर्ष लग गया। श्री रघुनाथ नाथ जी ने पुस्तक छपाने का पूरा भार स्वयं अपने व्यय से उठाया है। इस पुस्तक की यदि कुछ आय हुई तो दूने रूप में साथ श्री रघुनाथ नाथ जी से नेपाली बन्धु ले जायँगे, मुझे इसमें सन्देह नहीं, चाहे उनको स्वयं सन्देह क्यों न हो। कन्ट्रोल से कागज समय पर और बिना किसी प्रकार रुपया नष्ट किए

दिलाने में तत्कालीन काशी के पूर्ति अफसर श्री भास्करराव शर्मा तथा असिस्टेन्ट पेपर कन्ट्रोलर श्री एम० एन० मेढ़ ने जो तत्परता दिखाई उसके, लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस काल में ब्लेक मारकेट का बिना आश्रय लिए शुद्ध और मैत्रीपूर्ण वातावरण में पुस्तक प्रकाशित हो गई, मैं इतने से ही संतुष्ट हूँ। पुस्तक-प्रकाशन में पवित्रता का जो आश्रय लिया गया है, उससे मुझे पूरा विश्वास है कि पुस्तक जिस भावना से लिखी गयी है, उसका प्रसार नेपाली जनता में होगा और पुस्तक पवित्रता का ही सृजन करेगी।

मैं अपने मित्र और साहित्यिक एवं राजनीतिक सहयोगी श्री श्रीदेवाचार्य को धन्यवाद दूँगा जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि को शोध एवं प्रूफ देखकर वास्तविक प्रकाशन का शारीरिक कष्ट उठाया है। तरुण चित्रकार श्री कांजीलाल ने आवरण पृष्ठ की कल्पना की है, वे धन्यवाद के पात्र हैं। मित्रों ने पुस्तक केवल एक हजार छपाई है और केवल २४ रीम कागज ही कन्ट्रोल से लिया गया था; अतएव उसे एक सीमा तक रखना ही ठीक समझा गया। उच्चारण-सम्बन्धी त्रुटियाँ तथा अशुद्धियाँ बहुत रह गयी हैं जिनके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। यदि शुद्धिपत्र लगाया जाय तो वही सोहल पृष्ठ हो जायगा। अतएव यह संस्करण पुस्तक के वास्तविक संस्करण का प्रथम प्रयास है।

रामनवमी, सं० २००७
औरंगाबाद, काशी।

अपने को जो स्वयं न जान सका—

रघुनाथसिंह

विषय-सूची

पृष्ठ

जाग्रत नेपाल

भौगोलिक स्थिति

ने = मध्य, पा = देश, नेपा = मध्यदेश, नेपाल 'नेपा' का सांस्कृतिक रूप है। तिब्बत में नेपाल को 'नेपा' कहते हैं। नेपाल के प्राचीन निवासी नेपाल को 'नेवा' कहते हैं। नेवा शब्द नेपा का अपभ्रंश है। नेपाल के निवासी नेवारी लोग अभी तक नेपाल को नेपा ही कहते हैं। जापान का शुद्ध नाम निपन है। नेपा और निपन शब्द में क्या कोई सम्बन्ध रहा है, यह गवेषणा का विषय हो सकता है। हिमालय का मध्य-प्रदेश होने के कारण कहा जाता है कि इस प्रदेश का 'मध्यदेश' अर्थात् 'नेपाल' नामकरण किया गया है।

नेपाल पूर्व-पश्चिम ५२० मील लम्बा और उत्तर-दक्षिण १४० मील चौड़ा है। इसकी औसत चौड़ाई ९० और १०० मील के बीच होगी। भीखनाढोरी से सीधे चौड़ाई ८९ मील होगी। भीखानाढोरी से सीधे चौड़ाई ८९ मील होगी।

क्षेत्रफल ५४००० वर्ग मील है। यह प्रदेश २६–३० अक्षांश और ८०–८८ देशान्तर में स्थित है। सन् १९२० ई० की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या ५५,७४, ७५६ और सन्

१९१० ई० के अनुसार ५५,७३, ७९१ थी। सन् १९२० ई० की जनगणना त्रुटिपूर्ण मालूम होती है। इस समय की जनसंख्या का अनुमान ७० लाख, संसार के अनुपातगत-वृद्धि के आधार पर किया जा सकता है। नेपाल में १९२० ई० के पश्चात् जनगणना संभवत: नहीं हुई है, और यदि हुई भी है तो आँकड़े प्राप्त नहीं हैं।

नेपाल का प्रदेश चार भागों में इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—(१) तराई का प्रदेश, (२) धूस या मधेश, (३) पर्वतीय प्रदेश और (४) पर्वत-श्रेणी। इसकी सीमा में उत्तर तिब्बत तथा हिमालय की हिमाच्छादित पर्वतमाला, दक्षिण विहार, बंगाल तथा युक्तप्रान्त, पूर्व शिकम, दार्जिलिंग तथा मिची नदी और पश्चिम कमायूँ तथा काली किंवा शारदा नदी है।

तराई का प्रदेश शारदा नदी से आरम्भ होकर मिची नदी; अर्थात् युक्तप्रान्त, विहार, बंगाल तथा हिमालय की उपश्रृङ्खलाओं या मधेश के मध्य में है। इसकी चौड़ाई १० मील से ३० तक होगी। यह भूभाग साल के वन, धान के खेतों, फलों के बागों, तथा नाना प्रकार की उपजों से भरा है। नेपाल के उद्योग-धन्धे; अर्थात् मिलें आदि भी इसी भूखण्ड में हैं।

तराई तथा पर्वतीय प्रदेश के मध्य धूस किंवा मरिस या मधेस् क्षेत्र है। यह क्षेत्र स्थानीय भूमि-प्रदेश से ३००–६०० फीट और समुद्र की सतह से २०००-३००० फीट तक ऊँचा है। देहरादून भी एक प्रकार का धूस प्रदेश है। यह धूस-प्रदेश हिमालय का उपगिरि प्रदेश है, जिसे शिवालिका पर्वतमाला कहते हैं।

पर्वतीय प्रदेश मुख्य नेपाल है। यहीं नेपाल की सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, कला, मन्दिर पैगोडा आदि सब कुछ हैं। यह प्रदेश समुद्र की सतह से ४००० से १०००० फीट ऊँचा है। यही भूभाग नेपाल का हृदय है।

उत्तर में नेपाल का वह प्रदेश है जिसके विषय में अभी लोगों को बहुत कम ज्ञान है। तिब्बत को स्पर्श करता यह क्षेत्र नेपाल के पश्चिमी छोर से पूर्वी छोर तक भारतवर्ष को उज्वल पवित्र मुकुट पहनाता हुआ चला गया है। यहाँ की पर्वतमाला १०००० फीट से २९००२ फीट तक ऊँची है। इसी प्रदेश में गौरीशंकर २३४५७, नन्दादेवी २५७००, धवलागिरि २६८२६, गोसाईंनाथ २६३०५, कुम्भकर्ण श्रृंखला का मंकाल २०७७०, कंचिनचंगा २८१५६ और इवरेस्ट या विभीषण २९००२ फीट ऊँचा है। संसार का सर्वोच्च पर्वत विभीषण या इवरेस्ट नेपाल में ही है।

नेपाल का भूभाग पाँच भागों में व्यवस्था की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित है—(१) पश्चिमी, (२) मध्य, (३) पूर्वी, (४) नेपाल-उपत्यका तथा (५) तराई। उत्तर से दक्षिण की ओर पर्वत एवं भूमि ढालुआँ होती गई है, अतएव यहाँ सभी नदियाँ उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हैं। मुख्य नदियाँ काली किंवा शारदा, कर्णाली, राप्ती, गंडक, बागमती, कोसी और मिची हैं।

नेपाल को तीन पर्वतीय खण्डों में भी बाँटा जा सकता है। नन्दादेवी, धवलागिरि, कंचिनचंगा और गोसाईंनाथ इन्हीं चारों पर्वतमालाओं से घिरे नेपाल के तीनों पर्वतीय खण्ड हैं। प्रत्येक

खण्ड चारों दिशाओं में इन्हीं पर्वतों द्वारा परिवेष्टित है। उक्त तीनों खंड तीन नदियों के परिवेष्टित प्रदेश हैं। पश्चिमी खण्ड करनाली या कर्णाली नदी का, मध्य का खण्ड गण्डक नदी का और पूर्वी खण्ड कोसी नदी का परिवेष्टक प्रदेश है।

पश्चिमी खण्ड दोती आदि जातियों से बसा हुआ है। इस खण्ड को बाइसीराज कहते हैं। इसमें जुमला, जगवीकोट, चेन, अचम, रुघम, मुसीकोट, रोआलपा, मल्लिजत्ता, बलहंग, दकलेख, दरीमेका, दोती, सैल्यान, रामफी, मेलियत्ता, जेहरी, कालागाँव, गौरैयाकोट, गुलाम, गजुर, जजरकोट और विलासपुर हैं।

मध्यखण्ड सप्तगण्डकी प्रदेश है। धवलागिरि एवं गोसाईं-नाथ के मध्यवर्ती प्रदेश का जल सप्तगण्डकी के रूप में, अर्थात् गण्डक की सात धाराएँ बनकर बाहर निकलता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) वारिजय, (२) नारायणी, (३) श्वेत गंडकी, (४) मरिश्यंगदी, (५) दारामदी, (६) गण्डी और (७) त्रिशूली। जब सातो धाराएँ मिल जाती हैं तो उसे गण्डक कहते हैं। मध्यखण्ड के निवासी मगर और गुडंग जाति के लोग हैं। इस खण्ड को चौबिसियाराज कहते हैं, जिसमें लामजुंग, तान्हुँग, गलकोट, मलिबम, साथुंग, गरुआ, ऋषिंग, घिरिंग, देवराली, पालपा, पोखरा, भिरकोट, बुटबल, गुल्मी, नवकेवट, काशी, इस्मा, धरकोट, मुसीकोट, अर्घा, प्युंग, लतहुंग, कैरवो और पुइ-थान-प्रदेश हैं। गुरखा लोगों ने प्रदेश को पाँच प्रान्तों में इस प्रकार विभक्त कर दिया है—(१) उत्तर-पश्चिम में मलीथाप, (२) दक्षिण-पश्चिम में काशी, (३) दक्षिण में पालपा, (४) पूर्व में गुरखा और (५) उत्तर में पोकुरा।

, नेपाल का पूर्वी खण्ड सप्तशोषी कोशिकी नदी की सप्त-धाराओं का परिवेष्टक प्रदेश है। कोशी की सात धाराएँ—(१) मिलमची, (२) सूनकोशी, (३) तात्वाकोशी, (४) लिक्खू ,(५) दूधकोशी, (६) अरुण और (७) तम्बर हैं। इन धाराओं में अरुण सबसे बड़ी है। वर्षात्त्र किंवा बाराछतरिया के बाद सातो धाराओं का जल एक साथ मिलकर बहता है और भागलपुर के पास गंगाजी में मिल जाता है। अरुण की धारा भूखण्ड को दो भागों में विभाजित करती है। अरुण के दक्षिण तट से दूधकोशी तक किरात अथवा राय लोग बसे हैं। अरुण के वाम तट से शिकम तक का प्रदेश लिम्बु-याना कहा जाता है, क्योंकि यहाँ के निवासी लिम्बु हैं। दूधकोशी का मूलश्रोत महालंगूर हिमालय है। पश्चिम की ओर इवरेस्ट शिखर है। ३५ मील पश्चिम गौरीशंकर शिखर है।

नेपाल-उपत्यका ५००० फीट से ८००० फीट तक ऊँची है। उपत्यका का आकार अंडाकार है। इसका क्षेत्रफल २५० वर्ग मील है। गोसाईंनाथ पर्वतमाल के दक्षिण ओर यह त्रिभुजाकार फैला है। इसकी औसत लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः १५ और १२ मील है। यहाँ के मूल-निवासी नेवार और मुरमी हैं।

नेपाल-उपत्यका को गुरखा-प्रान्त से पश्चिम में त्रिशूलगंगा और पूर्व में भिलमची नदी सप्तकोशी-परिवेष्टक प्रदेश से अलग करती है। सप्तकोशी तथा सप्तगण्डक के मध्य में उपत्यका स्थित है। गोसाईंनाथ के दक्षिण में फैले इस त्रिभुजाकार प्रान्त का आधार मकवानपुर है।

दक्षिण-पश्चिम में चितलांग-उपत्यका, उत्तर में नवकोट-उपत्यका और पूर्व में वर्णोया-उपत्यका है। शिवपुरी-पर्वत की

उत्तरी ढाल से चलकर बागमती नदी उपत्यका के जल को बाहर ले जाती है। उपत्यका को घेरनेवाले पर्वतों में उत्तर की ओर शिवपुरी-पर्वत ९००० फीट ऊँचा है, ककनी और मनीचूर सीमावर्ती पर्वत ७००० फीट और पूर्वी सीमा पर महादेवपोखरी पर्वत ६७०० फीट ऊँचा है। दक्षिण-पूर्व की ओर फूलचोक पर्वत ८००० फीट ऊँचा है। दक्षिण-पश्चिम चन्द्रगिरि ६६०० फीट ऊँचा है। उत्तर-पश्चिम नागार्जुन पर्वत ७००० फीट ऊँचा है। कुम्हरा, भीरबन्दी, ककनी, शिवपुरी, मनीचूर, महादेवपोखरी की पर्वतमालाएँ पश्चिम में त्रिशूलगंगा से, पूर्व में सप्तकोशी से परिवेष्टित प्रदेश मिलमची-नदी तक नेपाल की उत्तरी सीमा बनाती हैं। इस माला के धुर दूसरी ओर गोसाईंनाथ पर्वत के मध्य में जिबजिबिया पर्वत है। इन्द्रथान-पर्वत उपत्यका की पश्चिमी सीमा है। दक्षिणी सीमा पर महाभारत-पर्वत है, जहाँ से बागमती नदी उपत्यका के बाहर निकल जाती है।

नेपाल से तिब्बत में जाने के लिए सात गिरिद्वार हैं। (१) तकलाखर-दर्रा (गिरिद्वार) धवला गिरि और नन्दादेवी-पर्वतमाला के मध्य में है। (२) मुस्तांग या मुस्ताक-दर्रा धवलागिरि से ४० मील पूर्व है। यहीं से मुक्तिनाथ को मार्ग जाता है और आठ दिनों में यात्री वहाँ पहुँचता है। मालिबम की राजधानी बेणी शहर से चार दिनों का रास्ता है। तिब्बत के व्यापारी नमक लेकर इसी मार्ग से आते हैं। (३) केरांग-दर्रा गोसाईंनाथ पर्वत के पश्चिम ओर है। (४) कुटी या कुती-दर्रा गोसाईंनाथ-पर्वत के पूर्व है। यह मुख्य व्यापारी मार्ग है। काठमाण्डू और नेपाल के बीच इसी मार्ग से व्यापार तथा आवागमन होता है।

तिब्बती यात्री इसी मार्ग से आते हैं। मार्ग अत्यन्त भयंकर है। केरांग द्वारा खच्चर भी आ सकते हैं। लाशा को यही मार्ग जाता है। काठमाण्डू से यह सब से समीप का रास्ता है। (५) हतिया-दर्रा कुती-गिरिद्वार से ४० या ५० मील पूर्व है। अरुण नदी तिब्बत-भूमि को त्यागकर इसी मार्ग से नेपाल में प्रवेश करती है। (६) बालंग किंवा बालेनचेन-दर्रा कचिंनचंगा के थोड़े पश्चिम और नेपाल के पूर्व छोर पर है। सन् १८ ८५ ई० में तिब्बत के भय के कारण इस मार्ग की विशेषरूप से मरम्मत की गई थी। (७) यग्मा-दर्रा पग्मा नदी के प्रवेश-द्वार से तिब्बत का मार्ग है।

शासन की दृष्टि से नेपाल दो भागों में बाँटा गया है—(१) तराई और (२) पर्वत। तराई में १४ जिले हैं—(१) मोरंग, (२) सपतरी, (३) वरसा, (४) वारा, (५) रौटहट, (६) सरलाही, (७) महोतरी, (८) बुटबल, (९) वाल्ही, (१०) डंग, (११) बाँकी, (१२) बरदिया, (१३) कैताती और (१४) कंचनपुर। उक्त जिले चार सरकिलों अर्थात् मण्डलों में विभक्त किए गए हैं। प्रत्येक मण्डल के प्रधान अधिकारी को बड़ा हाकिम कहते हैं। बड़े हाकिम के अधीन सूबा होता है। उसके हाकिम का नाम अमीनी गोसबारा कचहरी होता है।

पर्वत २४ तहसीलों में विभाजित हैं—(१) तहसील ईलाय, (२) धनकुटा, (३) पूर्व तरफ नं० १ तहसील, (४) पूर्व तरफ नं० २ तहसील, (५) पूर्व तरफ नं० ३ तहसील, (६) पूर्व तरफ नं० ४ तहसील, (७) पश्चिम तरफ नं० १ तहसील, (८) पश्चिम तरफ नं० २ तहसील, (९) पश्चिम तरफ नं० ३ तहसील,

(१०) पश्चिम तरफ नं० ४ तहसील, (११) पश्चिम तरफ नं० ५ तहसील, (१२) तहसील पाल्पा, (१३) जुमला, (१४) जाजरकोट, (१५) दुल्लू-दैलेख, (१६) बझांग, (१७) सल्याना, (१८) प्यूठाना, (१९) अदाय, (२०) ढलहरा, (२१) डोटी, (२२) काठमाण्डू, (२३) पाटन और (२४) भाट गाँव। तहसीलें जिलों में विभक्त हैं और जिले मौजों में विभक्त हैं।

सप्तगण्डकी और सरयू परिवेष्टकों में धान, जौ, मक्का, कोदो मुख्यतया उपजते हैं। मर्स्यांदी के परिवेष्टक में कपास होती है। पोखरा के कतिपय सरोवरों में मछली और सन्तरे होते हैं। बुटवल में सन्तरा और ईलाय एवं धनकुटा में चाय होती है।

जनसमुदाय

नेपाल शब्द का प्रयोग भारतीय संस्कृत-साहित्य में हुआ है या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता परन्तु 'किरात' शब्द के प्रयोग की बाहुल्यता है। भगवान् शंकर ने किरात-रूप धारणकर अर्जुन से युद्ध किया था, यह उपाख्यान अत्यधिक ख्याति पा चुका है। किरात जाति के विषय में महाभारत में अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। सुनकोसी एवं अरुण के मध्य का नेपाली भू-भाग किरातदेश के नाम से प्रसिद्ध है। नेपाल में मंगोल, आर्य-मंगोल एवं आर्य जातियाँ परस्पर एक दूसरे से मिल गई हैं।

नेपाल के आदिमनिवासी मगर, गुरंग या गुरुङ्ग, नेवार, सुंवार या सुनुवार, खम्बुस, यत्त, यत्तुम्ब, लिम्बू, मुरमी और लपचा हैं। खम्बुस एवं यत्त जाति राय है। यत्तुम्ब लिम्बू है।

खम्बुस, यत्त एवं यत्तुम्ब किरात समुदाय के हैं। मगर, गुरुंग, सुंवार, राय और लिम्बू लोगों की आकृति मिलती है। सभी की आकृति में मंगोल-रूप की छाप है। खश, मगर, गुरुंग, ठाकुर, लिम्बू और सुंवार एवं राय आयुधजीवी हैं।

हिन्दू अधिकांश पश्चिमी और दक्षिणी भागों में आबाद हैं। जुमला, सल्यान, टोडी और पश्चिमी नेपाल के लोग भाषा, रीति-रिवाज, धर्म एवं आकार में भारतीयों से मिलते-जुलते हैं। पूर्व और उत्तर के निवासी मंगोलों से अधिक समता रखते हैं। उनका आचार-व्यवहार भी बहुत कुछ हिन्दुओं से नहीं मिलता।

नेपाल पाँच राजकीय विभागों में बँटा था—(१) वाइसिया राज, (२) चौबीसिया राज, (३) नेपाल राज, (४) राय-किरात राज और (५) लिम्बू राज। सतलज एवं आसाम तक राज्य फैला था। उत्तर में चारों ओर से दुर्लंघ्य एवं दुर्भेद्य पर्वत-मालाओं से परिवेष्टित होने से, भारतवर्ष से अलग रहने के कारण वे लोग विचित्र हो गए थे और उन्होंने भारतीय संस्कार एवं परम्परा के आधार पर अपना अलग ही क्षेत्र बना लिया था।

नेपाल उष्ण प्रदेश नहीं है। ठण्डक अधिक पड़ने के कारण लोग परिश्रमी और मजबूत होते हैं। आर्य और मंगोल-रक्त के सम्मिश्रण से उनके शरीर की गठन निराली हो गई है। उन्हें अपनी रक्षित स्वाधीनता का विशेष गर्व है। हिन्दू-धर्म के मूल-तत्व को स्वीकारकर उसकी छाया को उन लोगों ने त्याग दिया है।

नेपाल के सब से अधिक क्षेत्रफल में मगर जाति के लोग तथा कम में नेवार जाति के लोग बसे हैं। नेवारों की आबादी

केवल नेपाल की उपत्यका, अर्थात् थानकोट, पाटन, भक्तगाँव और नयाकोट के आसपास तथा इनके मध्य भाग में है। सुनुवार लोग दूधकुण्ड झील, जुवंग, बुगनम, निंगाखिया, धूलीखाल और बसंखू के मध्यवर्ती प्रदेश में बसे हैं। राय किंवा राई जातिवाले अरुण नदी के पश्चिमी तट से दूधकोशी, खुरकोट, सिंधुलीगढ़ी, कमला नदी, पतनीदन, छत्र, और हथिया तक फैले हैं। लिम्बू जाति के लोग अरुणकोशी के पूर्वी तट से कंचिनचंगा, महानँद नदी, बीजापुर, छत्र, पग्मा और राबुलमगंज तक आबाद है। गुरुंग जाति के लोग मध्य नेपाल में मुख्यतया बसे हैं; परन्तु इनकी कुछ आबादी सुदूर पश्चिम में भी मिलती है। बीच का प्रदेश अन्य जातियों से आबाद है। मालूम होता है कि मध्य नेपाल से कुछ गुरुंग लोग उपनिवेश बसाने के लिए पश्चिम में गए थे और वहीं बस गए। मध्य नेपाल में गुरुंग लोग उत्तर में दामोदर कुण्डझील, डुंगलांग, पंगसिंग और मुक्तिनाथ तक, दक्षिण में मटिशदोहन, दवतर, घुरिंग तक, पूर्व में नयाकोट, काठमाण्डू की उपत्यका तक और पश्चिम में पोखरा तक फैले हैं। पश्चिमी गुरुंग लोग डकलेख, जुबिथंग, सेरजुला और बिलखेत के मध्य में बसे हैं। मंगर लोग पूर्व में हथौरा और महिपदोहन तक, पश्चिम में कुलिनारोघाट, कोरियाला नदी और जन्त्राघाट, तक, उत्तर में मुक्तिनार्थ, घुरिंग, पोखरा, नीशी, फुलीवान, हैथंग और दुल्लूदलेखा विलखेट तक तथा दक्षिण में चित्तवन, त्रिवेणी, पत्थरकोट, जुफेन, सैल्यान, चन्धारा और जटाघाट तक फैले हैं। तराई में हिन्दुस्तानी तथा नेपाल की अन्य अल्पसंख्यक जातियाँ मिली-जुली हुई बसी हैं, अतः उनका कोई उल्लेख योग्य

सीमित क्षेत्र नहीं है। इन दिनों वहाँ चेपाङ एवं कुसुण्डा जाति कम होती जा रही है।

नेपाल में जनगणना का कोई विशेष प्रबंध नहीं है। सन् १९११ ई० में जनगणना हुई थी। उनके पश्चात् सन् १९२० ई० में जब हुई तो वह इतनी गलत मानी गई कि उसे आधार नहीं माना जा सकता। १९३० ई० और १९४० ई० में संभवतः जन-गणना हुई ही नहीं। यदि हुई है तो न जाने क्यों वह गुप्त रखी गई है। सन् १९२० ई० की जनगणना के अनुसार निम्न-लिखित संख्या है—

प्राकृतिक खण्डानुसार जनसंख्या

खण्ड	पुरुष	स्त्री	जोड़
पर्वत	१५,५३,९४८	१४,७७,९३४	३०,३१,८८२
उपत्यका	१,८५,०३५	१,८१,९७५	३,६७,०१०
तराई	१०,६१,०५९	११,१४,८०५	२१,७५,८६४
	२८,००,०४२	२७,७४,७१४	५५,७४,७५६

तीन मुख्य नगरों की जनसंख्या

नगर	पुरुष	स्त्री	जोड़
काठमाण्डू	५३,३१३	५५,४९२	१,०८,८०५
ललितपत्तन	५३,६२१	५१,३०७	१,०४,९२८
भक्तगाँव	४७,३०८	४५,८६८	९३,१७६
	१,५४,२४२	१,५२,६६७	३,०६,९०९

मध्य भाग

स्थान	मकान	आबादी
उपत्यका के भीतर	६४,४४०	३,०६,९०९
उपत्यका के बाहर	१०,३६१	६०,१०१
	७४,८०१	३,६७,०१०

पश्चिमी भाग

स्थान	मकान	जनसंख्या
नं० १	३८,३९७	१,६५,२५१
नं० २	१४,५९७	७९,२०३
नं० ३	१४,९७६	८२,१६०
नं० ४	२९,५२३	१,८३,४१७
पाल्पा और गुल्पी	६३,६१५	३,७६,९००
पियुथना	२१,३४५	१,२२,०६३
सल्याना	३६,५३१	२,१४,३२९
डोटी	२४,३३२	१,५३,२२९
बैताडी	९,११६	७७,८९५
दहीलेख	११,७८९	८४,१७३
जुमला	१४,२९६	८९,०२२
	२,७८,५१७	१६,२७,६४२

कास्की-लमजंग-भाग

स्थान	मकान	जनसंख्या
कास्की-लमजंग	२३,७७५	१,३९,५६५
फलवंग	७९०	४,५३०
जाजरकोट	१२,१३७	७३,८७४
बझंग	५,८२१	४३,०४३
बजुरा	२,४८३	२०,२२०
	४५,००६	२,८१,२३२

पूर्वी भाग

स्थान	मकान	जनसंख्या
नं० १	३९,६६९	२,१३,७०३
नं० २	३१,७८५	१,७७,०७२
नं० ३	२०,६९९	१,०८,१०६
नं० ४	४९,९५८	२,६९,६६८
धनकुटा	५८,७८४	३,५३,०६२
इलाम	१४,९७०	८७,४७५
	२,१५,८६५	१२,०९,०८६

स्फुट

स्थान	मकान	जनसंख्या
वीरगंज, वारा, परसा, रुथाट	७७,०६५	४,१४,६५७
महुतरी और सरलाही	७१,२७९	४,७१,२९२
सुपनरी	६२,७६६	३,७७,८५५
उदैपुर	९,०३२	४८,११३
मोरंग (विराटनगर और झाया)	३६,२५७	२,११,३०८
खजहनी और शिवराज	१६,१५६	१,२२,२८३
पल्ही मझखंड	२८,६४४	१,८४,५८१
बाकी,वरदिया	१७,४०५	१,०४,४६६
कैलाली,कंचनपुर	४,७७७	४६,८१६
मकबनपुर	१०,१०६	५६,५१६
कन्दरंग	१,४२५	९,५५९
चित्तवन	२,०८८	२०,५२०
सुनार	३५१	२,७२८
सूर खेत	३,०६९	१७,३२३
	३,४३,४२०	२०,८८,८२१

मुख्यतया खस, राजपूत, ब्राह्मण २५ लाख, नेवार १५ लाख, गुरुंग, मगर आदि १५ लाख, पूर्वी नेपाल जिसे किरात देश कहते हैं, वहाँ के निवासी राय, लिम्बू, थेल आदि १० लाख, तथा तराई के रहनेवाले हिन्दुस्तानियों की जनसंख्या लगभग ३० लाख होगी।

गोरखा

काठमाण्डू से ५० मील पश्चिम पहाड़ी की ढाल एवं उपत्यका में अर्द्धवृत्ताकार बसा हुआ गोरखानगर है। भारत के प्रसिद्ध शैवमत के प्रचारक गुरु गोरखनाथजी यहाँ एक गुफा में रहते थे। उन्हीं के नाम पर नगर एवं जाति का नाम 'गोरखा' पड़ा है। गुरु गोरखनाथजी की गुफा अभी तक विद्यमान् है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही मनोरम है। गोरखा लोगों का यह सर्वश्रेष्ठ स्थान एवं जन्मभूमि है।

ठाकुर, खस, मगर और गुरुङ जातियाँ भी गोरखा जाति के अन्तर्गत आती हैं। लिम्बू, राय और सुवार जातियों के लोग भी नेपाल से बाहर गोरखा ही कहे जाते हैं। इनमें खस जाति शुद्ध हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। गुरुङ और मगर जाति के लोग नाम के लिए हिन्दू हैं।

गोरखा ब्राह्मण हैं और अपने ब्राह्मण जाति में ही हिन्दू-धर्मानुसार व्याह करते हैं। ये निम्नजाति से सम्बन्ध नहीं करते। गुरुङ बौद्ध हैं; परन्तु बौद्ध धर्म के पतन के कारण ये भी हिन्दू ही कहे जाते हैं। ब्राह्मण खस जाति से और खस जातिवाले निम्न जाति से व्याह नहीं करते। मगर और गुरुंग जाति के लोग एक-दूसरे से व्याह-सम्बन्ध नहीं करते हैं। सोलह

जातिवाले गुरुंग भी चार जातिवाले गुरुंग से व्याह नहीं करते हैं।

बच्चा पैदा होने पर ११ दिनों तक माता-पिता का स्पर्श वर्जित है। सम्बन्धियों के अतिरिक्त दूसरे लोग उनका छुआ हुआ नहीं खाते-पीते हैं। बारहवें दिन माता-पिता शुद्ध होते हैं और उस दिन सगे सम्बन्धी तथा मित्रों को दावत दी जाती है। कन्या का उत्पन्न होना एक प्रकार से खर्चीली बात समझी जाती है, जैसा कि प्रायः उत्तरी हिन्दुस्तान में उच्च वर्ण के लोग समझते हैं। अन्नप्राशन संस्कार बड़े धूमधाम से किया जाता है। इसे गोरखा लोग 'भात खिलाना' कहते हैं।

कन्या की मँगनी में सोने या चाँदी की चूड़ियाँ दी जाती हैं। जिस दिन व्याह ठीक हो जाता है उस दिन कन्या को 'सही मुँदरी' दी जाती है और वह अँगूठी सोने की होती है। विवाह सात वर्ष के पश्चात् १३ वर्ष तक होता है। विधवा-विवाह नहीं होता। यदि विधवा चाहे तो किसी कुटुम्ब की सदस्या हो सकती है। विधुर व्याह करता है।

यदि कोई लड़का किसी लड़की से बिना मँगनी हुए प्रेम करने लगता है और लड़की को भगा ले जाता है तो लड़का अपने स्वसुर के पास उस समय तक व्याह के निमित्त नहीं जा सकता जब तक स्वसुर स्वयं उन्हें आमन्त्रित न करे। स्वसुर स्वेच्छा से यथासमय कहला भेजता है कि अमुक दिन अमुक समय पर लड़का उसकी कन्या के साथ उसके यहाँ आए और निश्चित समय पर दोनों उपस्थित हो जाते हैं। कन्या का पिता दोनों को दही और अक्षत का टीका लगाता है। वर-कन्या दोनों मस्तक झुकाकर

नमस्कार करते हैं। इस प्रकार प्रेम को वैधानिक रूप दे दिया जाता है, जिसे 'धोक दिन्नू', कहते हैं।

मगर लोगों के यहाँ व्याह हिन्दू-रीति के अनुसार होता है। पहले जन्ती की रीति होती है, जिसमें कन्या के यहाँ अपराह्न में वरपक्ष के लोग जाते हैं। उनका स्वागत चावल की पिंडियों की वर्षा से किया जाता है और वर का स्वसुर उन लोगों को खिलाता है। अनंतर व्याह रात में होता है, जिसे 'फेरा' कहते हैं। 'फेरा' सप्तपदी ही है। 'फेरा' के पश्चात् 'अंचलगाँठ' होता है, जिसमें वर की कटि में और कन्या के स्कंध में वस्त्र गाँठ देकर बाँध दिया जाता है। यह प्रथा दो जीवनों को एक में गाँठ देकर बाँध देने के रूप में प्रचलित है।

गुरुंग और मगर जातियों में संबंध-विच्छेद (तलाक) की प्रथा है। 'सिको दागो' या 'सिको पंगरा' करने के पश्चात् तलाक पूरा समझा जाता है। तलाक स्त्री या पुरुष दोनों ही अपने इच्छानुसार दे सकते हैं; किंतु दोनों की स्वीकृति आवश्यक है। पति को ४०) रु० और पत्नी को १६०) रु० देने पड़ते हैं। दो बाँस की फराटियाँ बाँधकर दो मिट्टी की कच्ची दीवालों पर रख दी जाती हैं और उसके पास रुपया भी रख दिया जाता है। पति या पत्नी दोनों में से जो चाहे अपने इच्छानुसार उस संयुक्त फराटी को उठाकर तोड़ देता है और रुपया ले लेता है। दूसरा पक्ष शांतिपूर्वक वहाँ से चला जाता है और इच्छा होने पर अपना दूसरा व्याह कर सकता है।

नेपाल में व्यभिचार का दण्ड बहुत कड़ा है। व्यभिचारिणी स्त्री आजीवन कारावास का दण्ड भोगती है। पति अपनी स्त्री के

प्रेमी को खुखड़ी के एक ही वार से मार डालता था। लेकिन राणा जंगबहादुर ने इस दंड-व्यवस्था में कुछ सुधार कर दिया है जिसके अनुसार अपराधी गिरफ्तार किया जाती है। उसका अपराध जब प्रमाणित हो जाता है तो अपराधी पति के हवाले कर दिया जाता है। पति जनता के सम्मुख अपराधी को खुखड़ी से काट डालता है। इसके पूर्व अपराधी को कुछ अंतर पर छोड़कर भागने का मौका दिया जाता है। लेकिन वास्तव में उसको भागने का मौका नहीं मिलता; क्योंकि वह किसी-न-किसी के द्वारा पकड़ ही लिया जाता है। फिर भी अपराधी चाहे तो जातिच्युत होकर अथवा पतिके पैर के नीचे से निकलकर अपनी प्राणरक्षा करा सकता है। किंतु कोई इसे स्वीकार नहीं करता। स्त्री अपने प्रेमी की जान यह कहकर भी बचा सकती है कि वह पहला ही व्यक्ति नहीं था जिसके साथ उसने प्रेम किया था।

गो-हत्या और मानव-हत्या का दण्ड भी मृत्यु है। गाय का अंग-भंग करना या मानव को किसी प्रकार मार डालने के प्रयत्न का दण्ड आजीवन कारावास है।

अंग्रेजी फौज में भर्ती गुरखे लौटने पर तीन रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से राज्य को कर देते हैं। इस कर को 'पानी-पनिया' कहते हैं। कर न देने पर जाति तथा अधिकार से उन्हें च्युत होना पड़ता है।

गुरुंग मरने पर गाड़े जाते हैं। वे फूँके नहीं जाते। फौज में रहनेवाले गुरुंग अपने इच्छानुसार गाड़े या फूँके भी जाते हैं। किंतु गुरुंग जाति के लोग गाड़ा जाना अधिक पसंद करते हैं।

मृत्यु के पश्चात् शव को श्वेत मृतचीवर (कफन) से कई बार लपेटकर कपड़ा लकड़ी के आलपीन से टाँक दिया जाता है। मित्र तथा सम्बन्धी लोग शव को शवभूमि (कब्रगाह) में ले जाते हैं और वहाँ श्वेत वस्त्रधारी लामा ऊँघता रहता है। वह शव-भूमि के चारों ओर गाता जाता है। लोग शव को उसके पीछे-पीछे लेकर चलते हैं। अनंतर शव शवगर्त (कब्र) में रख दिया जाता है। सब लोग मिट्टी डालकर घर लौट आते हैं। कब्र पर पत्थर रख दिया जाता है। मगर-जाति के लोग भी गाड़े या जलाए जाते हैं। गावों में अधिकतया गाड़ दिए जाते हैं।

ठाकुर

गुरखों में श्रेष्ठता में ब्राह्मण के पश्चात् ठाकुर का स्थान होता है। ठाकुरों में शाही-ठाकुर सर्वश्रेष्ठ होते हैं। महाराज-नेपाल शाही-ठाकुर हैं। नेपाल में शाही-ठाकुरों से मालगुजारी नहीं ली जाती।

ठाकुर विवाह के पूर्व यज्ञोपवीत धारण करने के लिए बाध्य नहीं हैं। विवाह के पश्चात् यज्ञोपवीत पहनना अनिवार्य है।

शाही, मल्ल, सिंह, सेन, खाँ और सुमल ठाकुरों के मुख्य कुल हैं। हमल कुलवाले ठाकुर पिता ठाकुर और माता उपाध्याय अथवा पिता उपाध्याय और माता ठाकुर से उत्पन्न हैं। सब उचई वंश के ठाकुर, केवल 'सिगात उचई' को छोड़कर, ठाकुर और मगर कुलों से उत्पन्न हुए हैं।

'खवास' ठाकुरों की दासियों की संतान हैं। खवास राज्य-घराने के अवैधानिक संतानों को भी कहते हैं।

खस

खस-जाति प्राचीन है। प्राचीन ग्रंथों में काश्मीर और नेपाल की उपत्यका के मध्य के देश को खस-देश कहते थे। किरातों की तरह इनका भी वर्णन हिंदू-शास्त्रों, पुराणों एवं गाथा-ग्रन्थों में मिलता है। नेपाल के राजा नरेंद्रदेव ने बंधुदत्त आचार्य के आशीर्वाद से खस-देश में देवता का निवास कराया, जिससे अवर्षण रुक गया। दसवीं शताब्दी के लेखों से भी पता चलता है कि पालपा के पास और नेपाल के दक्षिणी भाग में खस नाम की हिंदू-जाति रहती थी।

इक्कारिया-जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय राजपूत और संभवतः ब्राह्मण द्वारा खस-जाति की स्त्री से है। कहा जाता है कि खस लोग पर्वतीय जातियों की स्त्री और ब्राह्मण या क्षत्रिय पुरुष की संतान हैं। दूसरा मत है कि पहले वे अहिंदू थे, और बाद में हिंदू बनाकर सभ्य बना लिए गए हैं। तीसरा मत है कि इक्कारिया लोग ही धीरे-धीरे खस-जाति के हो गए। हिंदुओं के उच्च वर्ण के संसर्ग से खसों की एक नई भाषा उत्पन्न हो गई जिसे खस लोग 'खुरा' कहते हैं। खसों की खुरा-भाषा सारे नेपाल में समझी जाती है और नेपाल की भाषा हिंदुस्तानी है।

जैसी

उपाध्याय ब्राह्मण और ब्राह्मण-विधवा से उत्पन्न संतान को 'जैसी' कहते हैं। नेपाल में इनकी भी पर्याप्त संख्या है।

खत्री

पंजाब के खत्रियों से नेपाल की खत्री-जाति का उत्पत्ति-संबंध कोई नहीं है। दोनों स्थानों की जातियों का

विकास अलग-अलग हुआ है। ब्राह्मणों द्वारा निम्न-जाति की, चाहे वे खस ही क्यों न हों, स्त्रियों से उत्पन्न संताने 'खत्री' कहलाती हैं। बरेली के देवकोट के कुछ खत्रियों ने खस-खत्रियों से संबंध स्थापित किया है। खत्री यज्ञोपवीत पहनते हैं और सैनिक जाति के समझे जाते हैं।

मतवाला-खस

सल्यान के उत्तर और पश्चिम में 'मतवाला-खस' मिलते हैं। मतवाला-खस पश्चिमी नेपाल के खस तथा पश्चिमी नेपाल की मगर-स्त्रियों द्वारा उत्पन्न हुए हैं। ये यज्ञोपवीत नहीं पहनते। बोहरा, रोका, चौहान, झाकरी आदि इनके कुल हैं।

खस-जाति की उपजातियों के नाम इस प्रकार हैं:—अधिकारी, बनिया, बैसनेत, बंदरी, बिश्त, बोहरा, बुढ़ा, बूढ़ाथोकी, घरनी, करकी, खण्डक, खत्री, कोंवर, मंझी, महत, राना, रावट, रोका, थापा आदि।

गुरुंग या गुरुङ

गुरुंग तातार-जाति के हैं। उनकी निजी भाषा है। किंतु इधर आकर उन्होंने खस-भाषा को अपना लिया है; फिर भी उनकी पुरानी भाषा की छाप उसपर विद्यमान है। गुरुंग दो भागों में विभक्त हैं—(१) चार जातिवाले और (२) सोलह जातिवाले। दोनों भागों में परस्पर ब्याह नहीं होता। चार जातिवालों में घाले, घोतानी, लामा और लामछन होते हैं। वे अपने को कुलीन गुरुंग समझते हैं।

मगर

मुकुंदसेन मगर-जाति के राजा थे। बुटवल और पाल्पा

उनका राज्य था। १२ वीं शताब्दि में नेपाल के राजा हरीदेव को पराजित कर उन्होंने नेपाल को जीता था। इस मगर-जाति में सूर्यवंशी और चंद्रवंशी होते हैं। ये यज्ञोपवीत पहनते हैं। बोहरा, रोका, चोहान, भाँकरी, कुवर और उचे नाम की उपजातियाँ भी अपने को मगर-जाति के अंतर्गत बताती हैं। किंतु वास्तव में मगर जातिवाले बुटथोकी, घरनी, पुन, राना और थापा कुलों में विभक्त हैं।

नेवार

नेवार-जाति के लोग काठमाण्डू की उपत्यका के निवासी हैं। ललितपत्तन एवं भक्तगाँव उनके गौरव की कहानी हैं। नेवारी जाति के मनुष्यों की आकृति आर्य-जाति से अधिक मिलती-जुलती है। नेपाल के ये मौलिक कलाकार हैं। इनका अपना साहित्य और अपनी भाषा है। नेवार लोगों के हाथ में नेपाल का व्यापार अधिक है। सरकारी नौकरियों में भी ये हैं; किंतु सेना में भर्ती नहीं किए जाते। नेवार की कन्या बाल्यावस्था में ही नारायण से व्याह दी जाती है। पुत्र होने पर उसका पुनः व्याह होता है। इनमें विधवा-विवाह नियमित है। पति-पत्नी में छुट्टी-छुट्टा होकर पुनर्विवाह भी होता है। नेवार लोग शव को जलाते हैं। नेवार वज्रयानी बौद्ध हैं।

नेवारों के विषय में डाक्टर श्री दिल्लीरमण रेगमी का अन्वेषण विचारणीय है जिसे उन्होंने 'विहार रिसर्चसोसाइटी' के जनरल भाग १ एवं २, सन् १९४८ ई० में प्रकाशित कराया है। उनके मतानुसार नेवार-जाति का अस्तित्व आज से २६ सौ वर्ष पहले से नेपाल की उपत्यका में मिलता है और प्रसिद्ध गण-

तंत्रीय प्रणाली के अनुयायी वृज्जी-जाति के वंशज हैं। किरातों के विषय में पुराणों में गाथाएँ हैं; परंतु नेवार-जाति का नाम कहीं नहीं मिलता। किंतु भाषा एवं पुरातत्व-प्रमाण के द्वारा यह बात सिद्ध होती है कि नेवार लोग आज से १५ सौ वर्ष पूर्व काठमाण्डू के समीपवर्ती प्रदेश में आबाद थे। 'गम विहार', 'नेगवल नारायण', 'वग भूमि', 'थम्बूजंगूला भुला' आदि शुद्ध-नेवारी शब्द हैं। उस समय के शिला-लेखों आदि की भाषा संस्कृत थी, अतएव नेवारी-भाषा का स्थान गौण हो गया था, जैसा कि अब तक है। लिच्छवियों तथा गुप्तों की राजभाषा संस्कृत थी। अतएव यह स्वाभाविक था कि उनके उत्कर्षकाल में नेवारी-भाषा को स्थान न प्राप्त हुआ हो, जैसा कि एक शताब्दी पहले भारत में तथा हिंदी-भाषा को भी नहीं प्राप्त था। वंशावली द्वारा प्रतीत होता है कि किरात लोगों को लिच्छवियों ने जीता था। लिच्छवी-विजय के साथ-ही-साथ मगध का प्रभाव नेपाल पर अवश्य पड़ा होगा और नेवार लोग उस प्रभाव के प्रथम ग्रास हुए हैं।

श्री रेगमीजी का कथन है कि प्राचीन किरात लोग ही आज-कल के नेवार हैं। लिच्छवी तथा वृज्जियों के प्रभाव या मेल-जोल के कारण ही आज किरात एवं नेवार जाति में अंतर मालूम होता है। लिच्छवी लोग नेवार नहीं हैं, इसके बहुत से स्पष्ट उदाहरण हैं। नेवार लोग थारू-जाति में भी मिलते हैं, जो कि निम्न हिमालय-भूमि के निवासी हैं। यह कहना कि नेपाल के नेवार लोग दक्षिणी भारत के नायर लोग थे, निरी कल्पना मात्र है। नेवार नाम कैसे पड़ा, इसके विषय में डाक्टर साहब का मत है कि

'नेपा' से ही बिगड़कर 'नेवा' अर्थात् नेवार हो गया है। नेवार लोग वृज्जी जाति में सम्मिलित थे, इसके मुख्यता तीन प्रमाण हैं। पहला प्रमाण है कि नेवार लोग वृज्जी जाति के उपाधियों को अब तक धारण करते हैं। दूसरा और तीसरा प्रमाण चैत्य-पूजा तथा पत्त सम्बन्धी संस्कार है। पत्त को अब नेपाल में रव्या कहते हैं। अछूत लोग नेवार लोगों को अब तक आदर के साथ वृज्जी कहते हैं।

दुरस

यह जाति मदी-नदी के ऊपरी श्रोत के समीप बसती है। ये लोग अन्तर्विवाह नहीं करते।

तकले

इस जाति के लोग कालीगण्डक के तट, थाक के समीप और मुक्तिनाथ के दक्षिण में रहते हैं। ये चार कुलों में विभक्त हैं, यथा गोचंद, तुलाचंद, शेरचंद और वुत्ताचंद।

धौतिपाल

धौतिपाल नेपाल के धुर पश्चिम में हैं। ये जुमला के दक्षिण रहते हैं।

थारू

यह जाति नेपाल की तराई में बसती है। ये लोग कृषिकार तथा श्रमजीवी होते हैं। आपस में विवाह करते हैं।

किरात

'किरात' शब्द प्राचीन हिंदू-गाथाओं एवं इतिहासों में बहुत आया है। किरात लोगों का कथन है कि उनकी जन्मभूमि काशी

है। •काशी से नेपाल में आकर ये बसे हुए हैं। इनके कुल में 'काशी' गोत्र भी है। काशी से जो लोग जाकर वहाँ बसे और अपनी मौलिकता को रक्षित रखा वे 'काशी' गोत्र•के कहलाए और दूसरे किराती जो लाशा से आए उन्होंने अपना गोत्र 'लाशा' गोत्र रखा। अन्वेषकों के अन्वेषण की यह अच्छी सामग्री है।

किरात-जाति में लिम्बू या यक्खथुम्बू, राय या खम्बू और घेल उपजातियाँ सम्मिलित हैं। ये उपजातियाँ आपस में विवाह करती हैं। संतान की गणना पिता की जाति में ही होती है। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में सम्मिलित भी हो सकता है। कुछ रुपये तीन बार लेने और देने से तथा स्वीकारोक्ति से जाति-परिवर्तन हो जाता है। यक्ख और खम्बू जाति के मनुष्य लिम्बू लोगों की अपेक्षा आपस में अधिक मिलते-जुलते हैं एवं जाति-परिवर्तन किया करते हैं। किरात लोग बौद्ध वज्रयान शाखा के अनुयायी हैं। उनकी बोली एकाक्षरी है और खाम प्रदेश से मिलती है।

यक्ख, खम्बू, राय और लिम्बू उपजातिवाले अपने लिए 'सूबा' उपाधि का प्रयोग करते हैं। खम्बू, यक्ख लोग 'जिमदार', तथा 'राय' उपाधियाँ अपने नामों के आगे लगाते हैं। पक्खम्भू, लिम्बू, चंगसोंग, सूबा और दास उपाधियों को भी लिम्बू लोग अपने नामों के आगें प्रयुक्त करते हैं। तीनों जातियों के लोग कहते हैं कि ये लोग काशी (बनारस) से आए हैं। लिम्बू और राय लोगों का धर्म हिंदू तथा बौद्ध धर्मों का संमिश्रण है। जन्म, व्याह एवं मृत्यु-संस्कार के समय सुविधानुसार लामा या ब्राह्मण बुला लिए जाते हैं। इस मामले में स्थानीय रीतियों का

विशेष प्रभाव पड़ा करता है। किरात-जाति बौद्ध वज्रयान[1] की अनुयायी है। वृक्ष, शिला, भूत-प्रेत आदि की भी उपासना करती है। इनकी भाषा एकाक्षरा एवं तिब्बती प्रदेश की भाषा से विशेष अन्तर नहीं रखती है।

किरात लोग नेपाल के निवासी थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। पुराण तथा गाथाओं के अनुसार यह प्रगट होता है कि किरात-देश मध्यदेश से सम्बन्धित था। मनुस्मृति में किरात और लिच्छवी को समान स्थान दिया गया है। वंशावली द्वारा प्रगट होता है कि किरात लोगों को लिच्छवियों ने विजय किया था। कुछ लोग कहते हैं कि किरात लोग द्रविड़ जाति के हैं; परंतु यह धारणा मिथ्या है। किरात लोगों का अधिक साम्य मंगोल लोगों से है। किरात लोगों का रंग गोरा, नाक छोटी और चपटी, कान की हड्डी लम्बी और दाढ़ी में बाल कम होते हैं।

लिम्बू

लिम्बू-जाति दस उपजातियों में विभक्त है। उनमें पाँच 'काशी' गोत्र के और पाँच 'लाशा' गोत्र के हैं। लिम्बू लोग ६२ कुलों में विभक्त भी हैं। काशी-गोत्रवाली उपजातियों के नाम इस प्रकार हैं :—(१) पथर, (२) चेथर, (३) हथेरिया, (४) पेंगोरुप और (५) चैबिसा तथा लाशा-गोत्रवालों के नाम हैं (१) मियाखोला, (२) चरखोला, (३) माईखोला, (४) फेदप और (५) तम्बर खोला।

कहा जाता है कि 'काशी' गोत्र के लोग काशी से और 'लाशा' गोत्र के लोग लाशा (तिब्बत) से आकर बसे हैं। लिम्बू लोगों में वर्ण-व्यवस्था नहीं है। सब बराबर के समझे जाते हैं। लिम्बू

लोग पहले तिब्बत के प्राचीन 'याम' धर्म को माननेवाले थे; किंतु इस समय ये बौद्ध तथा हिंदू-धर्म के समिन्वित धर्म को मानते हैं ।

लिम्बू अपने गोत्रवाले की कन्या से ही व्याह कर सकता है । कन्या किसी जाति की हो सकती है ।

यदि लिम्बू-जाति का कोई युवक अपने माता-पिता से छिपाकर किसी युवती से व्याह करना चाहता है तो वह किसी मेला, बाजार या अन्य किसी सार्वजनिक स्थान पर उससे मिलेगा और दोनों दो ओर खड़े हो जायँगे । दोनों गाना गाएँगे और कविता पढ़ेंगे । यदि वर कन्या को पराजित कर देगा तो वह कन्या का हाथ पकड़कर खींच ले जायगा । हार जाने पर युवक भाग जाता है; किंतु विजय प्राप्त करने पर वह बिना किसी प्रकार के वैवाहिक रीति से ही कन्या को अपने घर ले जाता है । इस प्रकार यह उसका व्याह ही समझा जाता है ।

यदि वर एवं वधू में पहले से ही प्रेम रहता है तो वर किसी सोते के पास अथवा जलाशय के पास जाकर गाता है और कन्या की सखियों को कुछ रुपये घूस देकर अपनी विजय घोषित करा लेता है ।

इन लोगों में व्याह अधिकतया प्रेमालाप द्वारा ही ठीक कर लिया जाता है । यदि ऐसा नहीं होता तो माता-पिता सूचित किए जाते हैं । वधू के घर में प्रवेश करने के लिए वर पहले अपने किसी निकट-सम्बंधी द्वारा बधू के पिता के पास मरा सूअर भेजता है । इसे लिम्बू-भाषा में 'फुदंग' कहते हैं । जब व्याह होता है तो वर यदि धनी हुआ तो एक भैंसा या एक सूअर

मारकर और मृत-पशु के मस्तक पर एक रुपया टीका के समान रखकर देता है।

साधारण नागरिकों में तो शायद ही माता-पिता व्याह की बात जानते हैं। जब विजेता के घर से वधू लौटकर आती है तो उस समय विवाह का पता चलता है। विवाह के समय मित्र एवं सम्बंधी लोग एक दौरी चावल और एक बोतल मुरवा शराब लेकर आते हैं।

मैदान में या घर के आँगन में वर ढोल बजाता है और वधू नाचती है। बाहरी लोग भी इस नृत्य में भाग लेते हैं।

विजुआ (पुरोहित) मंत्र पढ़ता है। वर-वधू परस्पर एक दूसरे की हथेली पर हथेली रख कर खड़े हो जाते हैं। वर के एक हाथ में मुर्गा और वधू के एक हाथ में मुर्गी रहती है। वे उन्हें विजुआ को दे देते हैं। जब विवाह-संस्कार समाप्त होता है तो एक पक्षी काट दिया जाता है। उसका रक्त केला के पत्ते में रोपा जाता है। दूसरे पत्ते पर सिंदूर या लाल रंग रखा जाता है। वर रंग में उँगली डालकर विजुआ के ललाट पर लगाता है और वधू की नासिकाका अग्रभाग एवं वधू का स्पर्श करता है। वर कहता है—'आज से तुम मेरी स्त्री हो, बहू! तुम आज से मेरी स्त्री हो।' यह कहकर वह सिंदूर वधू के भौं पर लगा देता है। अनंतर मरा हुआ खग फेंक दिया जाता है।

प्रातःकाल विजुआ अपने किसी मित्र की आत्मा को जगाता है और कहता है—'तुम लोग जब तक जीवित रहो पति-पत्नी की भाँति दुनिया में रहो।

•दावत में भुना मांस और मुरवा शराब दी जाती है। अन्त में भात परोसते हैं। वधू वर के हाथ से छूटकर अपने पिता के घर आती है।

दो-तीन दिनों के पश्चात् 'परमी'; अर्थात् ब्याह का बिचवई आता है। वह माता-पिता से ब्याह का हाल कहता है। अब तक अविभावक ब्याह को वैधानिक नहीं मानते। उनकी कन्या को विजेता उठा ले गया था, यह सुनते ही वे आग-बबूला हो जाते हैं। परमी अपने साथ एक बोतल अर्क, दौरी भरा हुआ पूरा सूअर और एक रुपया लाता है। अविभावक मारने के लिए उठता है और गुस्से में चिल्लाता है। उस समय परमी पुनः एक रुपया निकालकर देता है। अंत में गुस्सा शांत होता है। परमी कन्या का मूल्य रुपयों से या वस्तुओं से चुकाता है। जब कन्या का पिता विवाह स्वीकार कर लेता है तो गाँव के सूबा तथा चौधरी को सौगात भेजी जाती है। चौधरी १२ होते हैं। इस सौगात को 'तुरईमुग' अर्थात् क्रोध-सन्तोष कहते हैं। अविभावक कहता है कि हमारी कन्या खो गई, अब वह नहीं मिलेगी, अतः कोई जाकर खोज लाए। इसपर परमी जाता है और खोजकर कन्या को लाता है। कहना न होगा कि कन्या घर ही में रहती है।

स्त्री को भगा ले जाने का दण्ड पहले खुखड़ी से काटकर वध करना था; परंतु अब पति कुछ रुपया या सामान लेकर अपराधी को छोड़ देता है।

लिम्बू लोगों का शव या तो रात्रिपर्यन्त रखा रहता है या तुरंत गाड़ दिया जाता है। पुरोहित जिसे 'फेदंगमा'

कहते हैं, एक रुपया लेकर भूमि को देवता या देवी से खरीदता है। गाड़ देने के पश्चात् कुछ फिदंगमा रुपये को रख लेते हैं और कुछ यह कहते हुए फेंक देते हैं कि इस रुपये से भूमि को खरीदा था। कब्र में शव पूरी लम्बाई में रखा जाता है। शव के पैर का अँगूठा आकाश की ओर और मुख पूर्व की ओर रहता है। दोनों हाथों की उँगलियाँ पंजों से मिली छाती पर रहती हैं। शव के सिर के नीचे एक रुपया या एक पैसा रख दिया जाता है। उसे कब्र में रखने के पश्चात् उसपर हरी पत्तियाँ डाल दी जाती हैं। अमीर लोग मृतचैल (कफन) में शव को लपेट कर गाड़ते हैं तथा कब्र में सब प्रकार के उपलब्ध अन्न रख देते हैं। मिट्टी डालकर कब्र के ऊपर पत्थर लगा दिया जाता है।

यदि मरा व्यक्ति किसी मार्ग या सड़क के किनारे गाड़ा जाता है तो कब्र के ऊपर विश्राम-स्थल बनाकर एक वृक्ष छाया के लिए लगा दिया जाता है। गाड़ने के पश्चात् मृत व्यक्ति के घर लोग जाकर खाना खाते हैं। पुरुष के लिए चार दिन और स्त्री के लिए तीन दिन सूतक मनाया जाता है और मांस, मिरचा, तेल, नमक और दाल खाना वर्जित रहता है। पुत्र नौ दिन सूतक मनाता है। बिना नमक का सादा भात खाता है। सूतक के पश्चात् एक सूअर काटा जाता है। उस दिन फेदंगमा तथा मित्र भोजन करने आते हैं और कहते हैं कि सूतक के दिन समाप्त हो गए, अब आज से मांस, नमक मिर्चा आदि खाया जा सकता है। फेदंगमा जोर से पुनः चिल्लाकर मृत व्यक्ति की भूतात्मा से कहता है—'वहाँ जाओ, जहाँ तुम्हारे माता-पिता गए हैं।' मृत्यु के एक या दो माह तक व्याह नहीं होता, बालों में फूल

नहीं खोंसा जाता और हँसी-खुशी नहीं मनाई जाती। सूतक की अवस्था में सिर में एक श्वेत कपड़े का टुकड़ा बाँध लेते हैं।

राय

लिम्बू और राय अपने को एक ही मानते हैं। दोनों के रीति-रिवाज भी लगभग एक ही हैं। पहले लिम्बू और राय गोबध करते थे और उसे खाते भी थे। गाय ही नहीं, सब तरह के मांस खाते थे। नेपाल के राजा तथा नेपालियों की भावना को इससे अत्यन्त ठेस लगी। उन्हें मना किया गया कि अपनी आदत त्यागकर बंद करें। परंतु लिम्बू और राय लोग नहीं माने। फल यह हुआ कि गुरखों ने उनपर आक्रमण किया। पर्याप्त युद्ध के पश्चात् लिम्बू और राय पराजित हुए और गोबध बंद हो गया। अब राय और लिम्बू लोग गाय को मारना पाप समझते हैं। लिम्बू और राय दोनों विष्णु को भगवान् मानते हैं। महादेव और देवी की पूजा करते हैं। रायों की ७२ उपजातियाँ हैं।

खम्बू लोग अपनी कन्याओं का व्याह बालिग हो जाने पर करते हैं। विवाह के पहले 'यौन स्वतंत्रता' रहती है। इसकी शर्त यह होती है कि विवाह के पहले जिससे गर्भ रह जायगा, उससे व्याह करना होगा। व्याह की बातचीत वर की ओर से आरंभ की जाती है। दो चुगा या मुरबा शराब और एक टुकड़ा बल्लूर अगुआ अपने साथ ले जाता है। यदि व्याह पक्का हो गया तो पंद्रह दिनों के पश्चात् किसी शुभ दिन को वर अपने ससुराल आता है और अस्सी रुपये वधू का मूल्य (सियामबुदी) चुकाता है। उसी दिन रात को व्याह भी होता है। वर बधू के सीमंत में सिंदूर डालता है। सियामबुदी किश्त करके भी चुकाई जा सकती है।

गए थे सबकी सम्पत्ति हड़पकर उनके वंशजों को नेपाल से निर्वासित कर दिया। पंजनी के समय जिन अधिकारियों पर उसे सन्देह था सबको हटा दिया। रानी नाम के लिए अभिभावक रह गई। एक दिन राजा जब हाथी पर जा रहा था तो उसके साथी स्वामिभक्त नौकर भवानीसिंह की हत्या की गई। नेपाल में उस समय हत्याओं का खूब जोर था। रानी और जंगबहादुर में तनातनी बढ़ने लगी। रानी सुरेन्द्र और उपेन्द्र की हत्या करने की माँग और अपने पुत्र रणेन्द्र को राजा बनाने पर जोर देने लगी और जंगबहादुर एक-न-एक बहाना निकालकर समय टालता जाता था। जंगबहादुर समय बिताकर अपनी शक्ति बढ़ाना और अपना पैर जमाना चाहता था। अतः सुरेन्द्र और उपेन्द्र का जीवित रहना उसके लिए इस समय सब से अधिक उपयोगी था। एक समय ऐसा मालूम होने लगा कि रानी और जंगबहादुर में खुला युद्ध होना ही चाहता है; लेकिन नेपाल में जंगबहादुर का विरोध करनेवाला और रानी का साथ देनेवाला कोई बच ही नहीं गया था। सब मर चुके थे। मैदान खाली था।

जंगबहादुर ने रानी को एक पत्र लिखा कि यदि अब राजकुमारों की हत्या का प्रयत्न करोगी तो राज्य के विरुद्ध कार्य करोगी; क्योंकि राज्य इस प्रकार की हत्याओं को धर्म-विरुद्ध समझता है और मुझे बाध्य होकर आपके विरुद्ध कार्यवाही करनी होगी सुरेन्द्र ही राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्य का अधिकारी है और आपका लड़का किसी प्रकार राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता। कहना न होगा कि जंगबहादुर के मार्ग में रानी काँटा थी। वह चतुर थी, इसलिए षड्यन्त्र रच सकती थी।

उसके पुत्र को राजा बनाना रानी के हाथ में शक्ति को सौंपना था। अतः उसने फिर सोचा कि सुरेन्द्र यदि रानी के कारण राजा बनेगा तो उसके हाथों में खेलेगा, उसके इच्छानुसार ही कार्य करेगा और फलस्वरूप जो कुछ भी जैसा चाहेगा करा लेगा। इस भावना ने किसी दिन की उसकी सहायक रानी की सरलतापूर्वक उपेक्षा करने के लिए जंगबहादुर को बाध्य किया और वह अपना भविष्य ठीक करने लगा।

रानी जंगबहादुर का रूप देख चुकी थी। वह इस अपमान को विष की घूँट के समान पी गई। उसने वीरध्वज वैसनत को वंशीय प्रधानमंत्री बनाने की प्रतिज्ञा की। अतः निश्चय किया गया कि दोनों राजकुमारों के निवासस्थान पर जंगबहादुर और उसके भाइयों को सोने के लिए कहा जाय। अनंतर षड्यंत्रकारी लोग राजकुमारों को मार डालें और उनकी हत्या का अभियोग जंगबहादुर तथा उसके भाइयों पर लगाया जाय। जंगबहादुर बंदरखेल राज्यप्रासाद में बुलाया जाय और वहीं उसकी हत्या की जाय।

विजयराज के जिम्मे वह काम सौंपा गया था कि वह जंग-बहादुर को बंदरखेल राज्यप्रासाद में लेकर आएगा और बदले में उसे राज्यगुरु का स्थान दिया जायगा। विजयराज जब जंगबहादुर के यहाँ पहुँचा तो जंगबहादुर ने पूछा कि दरबार से क्या खबर लाए हो? विजय चौंक उठा। उसने समझा कि जंगबहादुर को सब बातें मालूम हो गईं और उसने सब कह दिया। जंग-बहादुर ने छः रेजिमेण्ट तैयार कर उन्हें बंदरखेल की ओर रवाना किया और षड्यंत्रकारियों को मार डाला।

श्री जंग बहादुर

वीरधुज विलम्ब होता देखकर स्वयं घोड़े पर जंगबहादुर के यहाँ चला । आधे मार्ग में जंगबहादुर के आदमियों से भेंट हुई । वह समझ गया कि भेद खुल गया है । फिर भी उसने जंगबहादुर से मिलने की इच्छा प्रगट की । जंगबहादुर के भाई कृष्ण ने उसका हथियार छीनकर उसे जंगबहादुर के सम्मुख उपथिस्त किया । वीरधुज ने जंगबहादुर से कहा कि रानी ने आपको कोट में सीधे बुलाया है । उत्तर में जंगबहादुर ने कहा कि रानी ने आपको प्रधानमंत्री बनाया है, अतः हमारी क्या आवश्यकता है ? अनन्तर वीरधुज वहीं मार डाला गया । उसकी बोटी-बोटी कर दी गई । जंगबहादुर ने बन्दरखेलप्रासाद को घेर लिया और २३ आदमी मार डाले गए तथा शेष को कैद कर लिया गया ।

जंगबहादुर ने राजा से मुलाकात करने के लिए कहा । रानी का आदमी हटा दिया गया । रानी की बात नहीं मानी गई । राजा स्वयं जंगबहादुर से मिला । रानी राजा को अकेले जंग-बहादुर से नहीं मिलने देना चाहती थी । राजा के साथ वह भी गई थी । यद्यपि उसका षड्यन्त्र असफल हो चुका था तब भी उसने हिम्मत नहीं हारी थी । जंगबहादुर ने उससे बात नहीं की । उसने केवल राजा को ही सम्बोधित कर बातें कीं और रानी के निर्वासन की माँग पेश की । रानी अपने राज्यप्रासाद में ही कैद कर ली गई । रानी के हाथों से अभिभावक का अधिकार छीन लिया गया और राजा तथा युवराज दोनों की सलाह से रानी पर यह अपराध लगाया गया कि उसके कारण राज्य पर संकट उप-स्थित हुआ है, उसी के कारण बहुत से लोगों की व्यर्थ हत्या हुई

और शासन में अव्यवस्था फैली। अतएव उसे आज्ञा दी जाती है कि वह नेपाल देश को शीघ्र त्यागकर काशी वास करें।

रानी ने अपने पुत्र रणेन्द्र और वीरेन्द्र को साथ ले जाने पर जोर दिया। राजा पर भी उसने दबाव डाला कि वह भी साथ चलें। अन्त में राजा ने घोषणा की कि वह भी अपनी रानी के साथ काशी जाना चाहता है, जिससे वह गंगा-स्नान कर अपने पूर्व पापों को धो सके। सुरेन्द्र अपने पिता के स्थान पर राज्य का अभिभावक नियुक्त किया गया और सन् १८४६ ई० में २३ नवम्बर को राजा, रानी, रणेन्द्र और वीरेन्द्र ने काशी के लिए प्रस्थान किया। छः रेजिमेण्ट उन्हें सीमा तक पहुँचाने के लिये आईं। जंगबहादुर का षड्यन्त्र सफल हुआ। सुरेन्द्र उसके हाथ की कठपुतली बन गया। सुरेन्द्र वास्तव में राजा नहीं; बल्कि जंगबहादुर का दास था। उसके लिये इतना ही बहुत था कि जंगबहादुर दयापूर्वक उसे जीता हुआ रहने दे। इस प्रकार राणा-वंश के सब लोगों के हाथों में राज्य की मुख्य-मुख्य जगहें आ गईं।

इधर काशी में रानी लक्ष्मीदेवी का निवास-स्थान विविध षड्यन्त्रों का केन्द्र बन गया। नेपाल से बहुत से सन्देश लौटने के लिये आए; किन्तु रानी को सभी पर सन्देह होता था। पुरानी सेना पर उसका कोई प्रभाव और दबाव नहीं रह गया था तथा परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि नई सेना तैयार की जा सके। जंगबहादुर के गुप्तचर रानी के यहाँ उपस्थित रहा करते थे और नित्य की खबर जंगबहादुर के यहाँ पहुँचती रहती थी। जंगबहादुर ने अंग्रेजों को लिख भेजा कि अगर सिखों

आया था। वाङ् के कन्नौज पहुँचने के प्रथम ही हर्षवर्द्धन की मृत्यु हो गई। तिरहुत के सामन्त अर्जुन ने वाङ् को रोक लिया। अर्जुन ने किस प्रकार कठोर यातना वाङ् को दी थी, इसका विषादपूर्ण वर्णन वाङ्-इतिहास में किया गया है। अर्जुन पर चीन, तिब्बत तथा नेपाल की संयुक्त सेना ने आक्रमण किया और अर्जुन को वन्दी बनाकर चीन ले गई। लगभग ७५० सन् में नेपाल की राजनीति ने पुनः एक दूसरा अध्याय खोला। लगभग १०० वर्ष तक नेपाल में समृद्धि का दिन फिर लौटा। इस काल में गुप्त और ठकुरी वंशवालों का लोप हो गया एवं लिच्छवी लोगों ने पुनः शक्ति अपने हाथों में ले ली। लिच्छवियों ने नेपाल की समृद्धि की तथा सैनिक शक्ति इतनी पूर्ण हो गई कि काश्मीर के प्रसिद्ध राजा जयापीढ़ को हराया था, जिसका वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है। राजा जयापीढ़ ने नेपाल पर आक्रमण किया था कि उसे विजयकर उसपर अपना आधिपत्य स्थापित करें। नेपाल के तत्कालीन राजा अर्मदी ने विजयापीढ़ को पराजित कर श्यामगण्डक के तटपर वंदी बनाकर रख दिया था। नेपाल के एक मन्त्री ने कारागार से राजा द्वारा गाई गई मधुर रागिणी सुनी। मंत्री गान पर इतना मुग्ध हुआ कि प्राणों की बाजी लगाकर राजा को कारागार से मुक्त करा दिया। सन् ८७८ के लगभग लिच्छवियों का पतन हो गया और राघवदेव ने नेपाल की घाटी पर आधिपत्य स्थापित किया। राघवदेव ठकुरी वंश के थे और नेपाल-संवत् प्रचलित किया। वज्रयान सम्प्रदाय का सर्वप्रथम प्रभाव बंगाल के संसर्ग द्वारा इसी समय नेपाल में होने लगा। जाति-पाँति-रहित बौद्ध समाज में भी

वर्ग, श्रेणी एवं जाति का अस्तित्व धीरे-धीरे जड़ जमाने लगा। इस समय से लेकर नान्यदेव के आक्रमण-काल तक का समय अभी अन्धकारपूर्ण है।

काल्पनिक राजा धर्मदत्त के लिए कहा जाता है कि कांची से आकर उन्होंने नेपाल में राज्य किया था। अरिदेव मल्ल ने चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में नेपाल में राज्य किया था। उसके पुत्र राजा अभयमल्ल ने अपने दोनों पुत्रों जयदेवमल्ल तथा आनन्दमल्ल को नेपाल-राज्य विभाजित कर दिया था। जयदेव-मल्ल के भाग में काठमाण्डू तथा पाटन आया और आनन्दमल्ल के भाग में, जिसे कुछ लोग अनन्तमल्ल भी कहते हैं, भक्तपुर या नगर (अथवा भाटगाँव) तथा अन्य नगर आए।

मुकन्ददेव ने खस और मगर जातियों के साथ नेपाल का विजय किया। मुसलमानों की बढ़ती शक्ति से घबड़ाकर तिरहुत के राजा हरिसिंहदेव नेपाल में भागकर आए और नेपाल पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। नेपाल में उसी समय सन् १३४९ में बंगाल के शमशुद्दीन ने भी आक्रमण किया। डा० रेगमी ने काठमाण्डू के एक शिलालेख का हवाला देते हुए मत प्रकट किया है कि मुसलमानों ने काठमाण्डू को ध्वस्त किया था तथा भगवान् पशुपतिनाथ की मूर्ति भी तोड़ी थी। मुसलमान नेपाल में ठहर नहीं सके। वे लूट-पाटकर लौट आए और हरीसिंह भी तिरहुत लौट आए। नेपाल में हरीसिंह ने अपना वंशज अवश्य छोड़ा; किंतु कहना न होगा कि केन्द्रीय सत्ता की दुर्बलता के कारण अराजकता का ही राज्य रहा।

सन् १३८४ ई० में चीन के सम्राट् हेग-ऊ-ने ने तत्कालीन

नेपाल के राजा मतिसिंह के यहाँ राजदूत अपनी मुद्रा के साथ भेजा और उसे नेपाल का राजा स्वीकार किया। बदले में मतिसिंह ने स्वर्णमूर्ति और धार्मिक पुस्तकें आदि भेजीं। इस प्रकार के प्रतिनिधि-मण्डलों का आदान-प्रदान १३९० ई० और १४९९ ई० में हुआ।

नेपाल का पुनः एक प्रतिनिधि-मण्डल सन् १४०९ ई० में चीन गया। उसके उत्तर में १४१३ ई० में मेग-लो चीन से नेपाल आए। नेपाल के राजा ने मेग-लो के प्रतिनिधि-मण्डल के आगमन के पश्चात् सन् १४१४ ई० और १४१८ ई० में चीन के सम्राट् को सौगात (Gift) भेजा। इस प्रतिनिधि-मण्डल के पश्चात् पुनः चीन में नेपाल की ओर से आगामी तीन शताब्दियों तक कोई प्रतिनिधि-मण्डल न भेजा गया और न आया। सन् १७९५ ई० के युद्ध के पश्चात् पुनः प्रतिनिधि-मण्डल चीन भेजा गया था।

चीन की गणना से मालूम होता है कि हरिसिंह के वंश का अन्तिम राजा श्यामसिंह १३८७ ई० से १४१८ ई० तक नेपाल में राज्य करता था। इसी काल में जयस्थितिमल्ल काठमाण्डू तथा पाटन में था। उसने जगतसिंह की कन्या रजल्लादेवी से व्याह किया था। उसकी माता का नाम नायकदेवी था। जयास्थितिमल्ल ने इस प्रकार मल्ल-कर्णाटक वंश का सुन्दर मिलन स्थापित किया।

जयस्थितिमल्ल तथा उसके पुत्र ज्योतिदेव के प्रति हिन्दू-जाति सर्वदा ऋणी रहेगी। उन्होंने नेपाल में हिन्दू-धर्म को स्थापित किया और फलस्वरूप बौद्ध धर्म शनैः-शनैः क्षीण होने

लगा। समाज का संघटन भी नए सिरे से किया गया। इस समय नेपाल के सामाजिक जीवन में हिन्दू-धर्म ने प्रवेश किया तथा न्याय एवं उचित शासन की व्यवस्था की गई।

जयस्थितिमल्ल के तीन पुत्र थे; किंतु सन् १४१३ ई० में कनिष्ट पुत्र ज्योतिमल्ल ने पूर्ण सत्ता अपने हाथों में ले ली। यद्यपि वह हिंदू-धर्मावलम्बी था, तथापि प्रजा के समाजिक एवं राजनीतिक मामलों में सहिष्णुता एवं निष्पक्षता का व्यवहार किया करता था। फलस्वरूप उसके समय में भूचाल के कारण बौद्धों के पवित्र स्थान स्वयम्भूनाथ के नष्टप्राय हो जाने पर उसने उसका जीर्णोद्धार कराया था।

यक्षमल्ल अपने पिता ज्योतिमल्ल की मृत्यु के पश्चात् राज्य-सिंहासन पर १४२७ ई० में बैठा। उसने अपना राज्य-विस्तार तिरहुत, गोरखा, तिब्बत में शिगेत्से तथा उपत्यकाओं तक में किया। कहा जाता है कि बुद्धगया तक उसने विजय किया था; किंतु यह असत्य मालूम होता है। हाँ, यह ठीक है कि बुद्धगया में थोड़ी भूमि नेपाल-राज्य को मिली थी, जहाँ संभवतः नेपाली बौद्ध यात्री ठहरा करते थे अथवा जो उनके उपयोग में आती थी।

यक्षमल्ल ने ५३ वर्षों तक राज्य किया। उसने सन् १४८० ई० में नेपाल-राज्य को अपने तीन पुत्रों में विभाजित कर दिया। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र रायमल्ल को भक्तपुर, मध्यम पुत्र रणमल्ल को बाणेया एवं कनिष्ठ पुत्र रत्नमल्ल को काठमाण्डू और साथ ही अपनी कन्या को ललितपत्तन दिया। देश का विभाजन सदा हानिकर होता है। यक्षमल्ल ने जो कीर्ति प्राप्त की थी, उसे

इनमें विधवा-विवाह होता है। यदि विधवा युवती हुई तो उसे आधा और प्रौढ़ा हुई तो उसे चौथाई सियामबुदी मिलती है।

इनमें परपुरुष-गमन के आधार पर तलाक होता है। स्त्री को पूरा रुपया, जो व्याह के समय मिलता है, देना पड़ता है। बाद में उसे अधिकार मिल जाता है कि वह इच्छानुसार अपनी शादी कर ले।

इनके 'यरुभंग' गृह-देवता हैं और उन्हें सूअर की बलि तथा मुरवा शराब चढ़ाई जाती है। देवी को भैंसा, बकरा, कबूतर आदि की बलि प्रायः दी जाती है। 'सिद्ध' इनके दूसरे देवता हैं, जिन्हें दूब तथा दूध चढ़ता है।

मृत व्यक्ति दफनाया अथवा फूँका जाता है, यह घरवालों की इच्छा पर है। कभी-कभी लाश को नदी में फें कभी देते हैं। सादा श्राद्ध भी किया जाता है। पुरोहित किसी बाहरी जाति के आदमी को नहीं बनाते। स्वयं अपने में से बना लेते हैं।

सुनवार और सुनयार

सुनवार और सुनयार सुनकोशी-नदी के पश्चिम और पूर्व में बसे हैं। उनका निवास-स्थान नेपाल-उपत्यका के उत्तर में, गुरुंग और राय जाति की बस्ती के मध्य में तथा तिब्बत के दक्षिण में है।

सुनवार की तीन उपजातियाँ हैं—(१)जेठा, (२) मैला और (३) खंचा। इनका अर्थ ज्येष्ठ, मझला तथा छोटा भाई होता है। जेठा दस जातियों में बँटे हैं, जिन्हें 'दस थारे' कहते हैं। ये लोग बौद्ध हैं।

मैला लोग सुनकोसी-नदी के पूर्वीय तट पर रहते हैं। ये हिंदू हैं; किंतु यज्ञोपवीत नहीं पहनते। उपाध्याय-ब्राह्मण लोग जन्म और मरण के संस्कार कराते हैं।

खंचा दक्षिण-पूर्व में रहते हैं। इनकी रीति-रवाज गुरुंग, मगर और राय से मिलती है।

मुरमी

मुरमी लोगों का कहना है कि महेश्वर अर्थात् शिव की ये संतान हैं। ऐसी गाथा प्रसिद्ध है कि एक बार ब्रह्मा, विष्णु और महेश जंगल में आखेट के लिए गए थे और परिश्रम करने पर भी कोई शिकार न मिला। गौरीगाय उन्हें दिखाई दी। विष्णु ने बाण से उसे मार दिया। गाय की अँतड़ियाँ साफ करने के लिए शिव एक जलाशय पर गए और ब्रह्मा तथा विष्णु मांस बनाने लगे। मांस पक जाने पर तीन भाग किया गया। महेश अँतड़ी साफ कर नहीं लौटे थे। विष्णु ने कहा कि गौ अभक्ष्य है, अतः हम उसे खायँ कैसे? ब्रह्मा की समझ में भी बात आ गई। विष्णु और ब्रह्मा ने अपना भाग कहीं छिपाकर रख दिया। जब शिव आए तो उन लोगों ने कहा कि भूख लगने के कारण वे अपने हिस्से खा गए और यह उनका भाग रखा है। महेश ने उसे खाया। अनंतर विष्णु और ब्रह्मा ने अपने भागों को निकालकर दिखाया और महेश से कहा कि तुमने अधर्म किया है। इस पर महेश को क्रोध चढ़ आया और अँतड़ी से विष्णु तथा ब्रह्मा दोनों को मारा।

मुरमी लोग भी पहले गाय का मांस खाते थे। किंतु नेपाल-राज्य में गोबध बंद हो जाने के कारण वे अब भी मरे बैल का

मांस खाते हैं। मुरमी दो विभागों में विभक्त हैं—वर्थमंग और अथरजात। वर्थमंगवाले अपने को महेश का सीधा वंशज मानते हैं और अथरजातवालों से अपने को उच्च बताते हैं। अथरजातवाले गोथर, नरवा और संग्री कुलों में विभक्त हैं।

वर्थमंग जातिवाले केवल नरवा जातिवालों से व्याह-सम्बन्ध करते हैं। यदि नरवा-कुल कम-से-कम तीन पीढ़ियों से शुद्ध रहा हो, वे उनके साथ हर प्रकार का भोजन कर सकते हैं। वर्थमंग लोग गोथर और संग्री जाति के साथ दाल-भात को छोड़कर हर प्रकार का भोजन कर सकते हैं। वर्थमंग बारह कुलों में विभक्त हैं।

वर्थमंग और अथरजात में कोई गोत्र नहीं है। गोथर-जाति के लोग मुरमी तथा ब्राह्मण या क्षत्रिय या ठाकुर की संतान हैं। नरवा जाति के लोग मुरमी और नेवार की संतान हैं तथा संग्री जातिवाले मुरमी तथा मगर, गुरुंग, लिम्बू, राय और सुनवार की संतान हैं।

सर्प

इवरेस्ट-शिखर के समीप एक सर्प-जाति रहती है। इस जाति के लोग यात्रियों की सामग्री ढोते हैं। इवरेस्ट की चढ़ाई के समय इनका उपयोग किया जाता है। इवरेस्ट-पर्वत को ये लोग 'विभीषण-पर्वत' कहते हैं। इवरेस्ट के पूर्व 'कुम्भकर्ण-पर्वत' है। अतः यहाँ पर कोई 'रावण' नाम का भी पर्वत अवश्य होना चाहिये, क्योंकि जब दो भाइयों के नाम से पर्वत हैं तो तीसरे का नाम छूट जाना खटकता है।

स्यापी

हेलम्बू-क्षेत्र में एक मिश्रित जाति रहती है, जिसे स्यापी कहते हैं। इस जाति के लोग तिब्बती लोगों से अधिक मिलते हैं। इस जाति की नारियाँ गठित तथा सुन्दर होती हैं।

इतिहास

नेपाल के इतिहास की सामग्री अत्यन्त स्वल्प है। बौद्ध साहित्य, वंशावली, पार्ग, मिग गाथाएँ, शिलालेख, पत्र तथा वेण्डल, लेवी, कर्क पेट्रिक, राइट आदि लेखकों द्वारा कुछ सामग्री प्राप्त होती है। किंतु उनपर पूर्ण-रूपेण विश्वास नहीं किया जा सकता। भगवान् बुद्ध के जन्म से पहले का नेपाली इतिहास पूर्णतया अन्धकार में है। इसी प्रकार ८०० से १६०० सन् तक का काल भी अंधकार-युग कहा जायगा। राणाओं ने कुछ अंग्रेज तथा भारतीय विद्वानों को एकांगी इतिहास लिखने के लिए काफी आर्थिक सहायता दी है। इस प्रकार के विद्वानों ने नेपाली इतिहास की यथेष्ट लीपा-पोती की है, जिसे सतर्क दृष्टि से पढ़ना चाहिए।

नेपाल के प्रथम निवासियों का वर्णन किरात-जाति के रूप में आता है। किरात-वंश ने कितने दिनों तक नेपाल में शासन किया, कहना कठिन है। महाभारत के वर्णन द्वारा ही सूत्र मिलता है कि युद्ध में किरात-नरेश ने अद्भुत वीरता प्रदर्शित की थी और अश्वमेध-यज्ञ किया था। बौद्ध काल में नेपाल में किरात लोगों ने सर्वप्रथम बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी।

वर्तमान नेपाल का इतिहास भगवान् बुद्ध के शुभ जन्मदिवस से आरंभ होता है। आज से २५१० वर्ष पूर्व भगवान् ने लुम्बिनी में जन्म-ग्रहण किया था। २४६७ वर्ष पूर्व भगवान् का पवित्र दर्शन नेपाल की उपत्यका ने किया था। भगवान् बुद्ध

के पश्चात् जैन-ऋषि भद्रबाहु ने २३०७ वर्ष पूर्व अपनी अमृत-वाणी सुनाते हुए यहाँ पर महाप्रस्थान किया था।

भगवान् बुद्ध के चरणों का अनुसरण करते हुए देवानां-प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक २१९७ वर्ष पूर्व नेपाल में आए थे। यह भगवान् बुद्ध के पवित्र संदेश की स्मृति पुनः हरी करने एवं भगवान् द्वारा पवित्र किए गए नेपाल-उपत्यका के दर्शन द्वारा अपने को कृतकृत्य करने के लिए आए थे। अशोक के बनवाए पंच-स्तूप पत्तन में एवं एक कीर्तिपुर में भगवान् के प्रति सम्राट् की अनुपम श्रद्धा-भक्ति के परिचायक रूप में आज भी वर्तमान् हैं।

नेपाल की उपत्यका में अशोक की पुत्री चारुमती ने अपने पति देवपाली के साथ बसकर भगवान् बुद्ध के संदेश को अमर बनाने का जो श्लाघनीय प्रयत्न किया था, वह भारतीय रमणियों के त्याग एवं निष्ठा का ज्वलंत उदाहरण है।

काठमाण्डू के समीपवर्ती स्थानों के शिला-लेखों से प्रगट होता है कि लिच्छवियों का निकट-सम्बन्ध नेपाल से रहा है। इनमें वर्षदेव, मानदेव, रानी राज्यवती, महीदेव, शिवदेव, नरेन्द्रदेव, भीमदेव, अंशुवर्मन आदि राजाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शिवदेव द्वितीय ने अपना विवाह मगध-सम्राट् आदित्यसेन की पौत्री से किया था।

प्रसिद्ध है कि महाराज विक्रमादित्य ने भी नेपाल की यात्रा की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि नेपाल में विक्रम संवत् का प्रचार उसी यात्रा के पश्चात् हुआ। 'बत्तीस पुतली' की कहानी का प्रचार वहाँ विशेष रूप में है। विक्रमादित्य के समय में जहाँ

लुम्बिनी
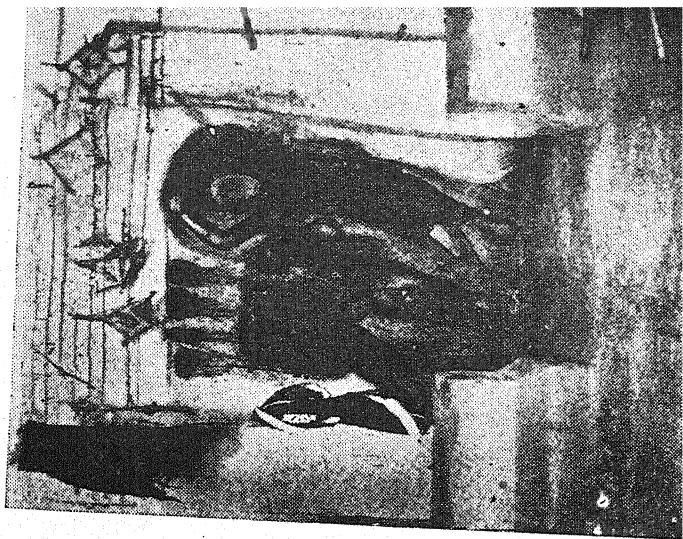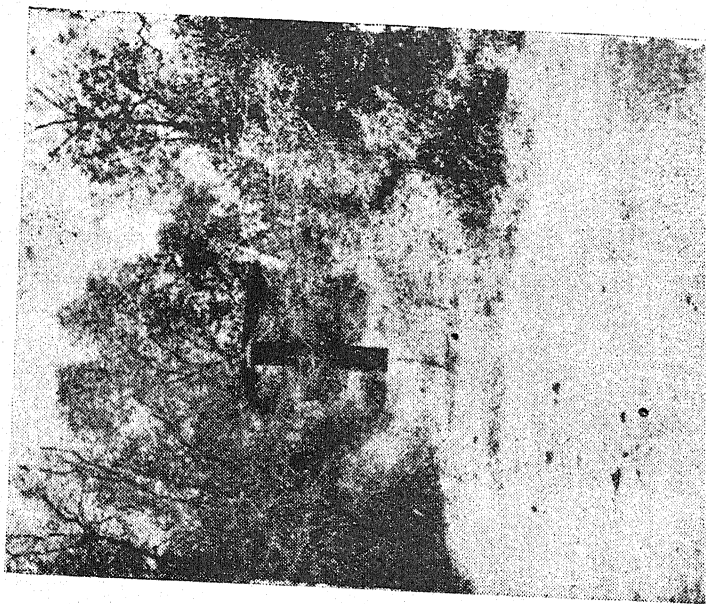
पर बैठकर न्याय होता था, वह ऊँचा चबूतरा भी आज तक मौजूद है।

ब्राह्मण भी नेपाल में आए और उन्हें पशुपतिनाथ के पूजा का भार सौंपा गया, जो आज तक उसी प्रकार चला आ रहा है।

सन् १०९७ ई० में दक्षिणी भारत का राजा न्यायदेव नेपाल का राजा हुआ और अपनी राजधानी सिमराँव के नाम पर अपना राज्य-वंश चलाया। न्यायदेव के साथ कर्णाटक के, शताब्दि के अन्त में, दो मल्ल सावन्तों ने चम्पागाँव की नींव डाली और चौदहवीं-शताब्दि के मध्य में मल्ल लोग काठमाण्डू और पाटन दोनों स्थानों में दिखाई देते हैं और इसी समय भक्तनगर अथवा भाटगाँव की भी आनन्दमल्ल ने स्थापना की थी।

किरात-वंश का पतन संवत् १२ के लगभग वैशाली से नेपाल में प्रवेश करनेवाले लिच्छवियों द्वारा हुआ था। लिच्छवियों का प्रथम शासक जयदेव हुआ था। वैशाली के पतन के पश्चात् जब पाटलिपुत्र के आधीन वैशाली हो गया, उस समय प्रतीत होता है कि लिच्छवी लोग वैशाली त्यागकर नेपाल में अपनी स्वतंन्त्रता-रक्षार्थ प्रवेश किए थे और वहाँ की पिछड़ी जाति किरातों को परास्तकर उन्होंने स्वयं नेपाल का राज्यसूत्र अपने हाथों में ले लिया था।

जयदेव के पौत्र ने सन् ३४ में लिच्छवी-संवत् चलाया। यही संवत् लिच्छवी शिलालेखों में मिलता है। प्रभाकरवर्द्धन इस वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा हुआ था। उसके राज्यकाल में नेपाल की पर्वत-माल लाँघकर राज्य-सीमा गंगा की तराई तक पहुँच गई थी। समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भवाले शिला-लेख में

नेपाल को सीमान्त एवं स्वतंन्त्र देश कहा गया है। नेपाल में गणतन्त्र की परम्परा को लिच्छवियों ने तोड़कर राज्यतन्त्र स्थापित किया था। वह परम्परा सन् ५९५ ई० तक चलती रही। मालूम होता है कि अंशुवर्मा ने गणतन्त्र की प्रणाली पुनः वहाँ स्थापित की थी, जो सन् ५९५ से ६४४ तक स्थिर रही। इस गणतन्त्र की प्रशंसा चीनी यात्री थुआनच्वांग ने मुक्तकंठ से की है। अंशुवर्मा क्षत्रिय कुल का था, जिसे नेपाली वंशकार ने 'ठकुरी' नाम दिया है। अंशुवर्मा के पश्चात् विष्णुगुप्त ने गणतन्त्र के स्थान पर पुनः राज्यतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया तो तिब्बत और चीनी दोनों देशों का संयुक्त सामना करना पड़ा था। आक्रमण का कारण यह था कि राजा उदयदेव ने लासा में आश्रय लिया था। उदयदेव को राज्य दिलाने के लिए ही चीनी तथा तिब्बत की सम्मिलित सेना ने नेपाल पर आक्रमण किया था। विष्णुगुप्त के पराजय के पश्चात् राजा उदयदेव सिंहासन पर बैठे। गणतंत्र शासन का लोप हो गया; किन्तु ५० वर्ष के राज्यकाल में नेपाली संस्कृति एवं कला का तिब्बत एवं चीन में खूब प्रचार हुआ। नेपाल से विद्वानों की एक श्रृंखला तिब्बत में जाने लगी। भोटियों को सुसंस्कृत किया गया। उनकी भाषा मांजी थी। उनकी अपनी कोई लिपि नहीं थी। अतएव नेपाली लिपि को उन लोगों ने अपनाया। कहा जाता है कि उदयदेव की कन्या भृकुटी ने छाङ्गान्यो से विवाह किया था। उदयदेव की मृत्यु के अनन्तर नरेन्द्रदेव राजा हुआ। चीनी वाङ् इतिहासकारों के अनुसार चीनी सम्राट् का एक प्रतिनिधि-मण्डल राजा हर्षवर्द्धन से भेंट करने के लिए वाङ् के नेतृत्व में

उसने उसी हाथ से मिटा दी। गोरखा लोग राज्य की दुर्बलता से सिर उठाने लगे। केंद्रीय शक्ति का विकेंद्रिय-करण हो गया। आगे चलकर ललितपत्तन काठमाण्डू में सम्मिलित हो गया।

यत्तमल्ल ने धार्मिक सत्ता भी अपने हाथ में ले ली और अपने-आपको धर्म का एक अंग मान बैठा। राज्य की शासन-व्यवस्था कुछ ठाकुरों के हाथों में थी। उसने बिना हिचक सब को विष देकर मार डाला। उपत्यका के बाहर नयकोट के ठाकुर अपने को शक्तिशाली समझते थे। उन्होंने राजा यत्तमल्ल की बिना आज्ञा देवी राजेश्वरी पर रंग चढ़ा दिया। अतः उसने नयकोट पर युद्ध की घोषणा करा दी। १४९१ ई० में राजा ने ठाकुरों को परास्त किया। उसने उस अवसर पर पशुपतिनाथ का मन्दिर विजय के उपलक्ष्य में पुष्प एवं फलों से भरवा दिया था। उसके समय में तिब्बत तथा भूटान ने कुछ झगड़ा किया; किंतु उसमें कोई महत्व की बात न हुई। यत्तमल्ल ने पहले-पहल नेपाल में मुसलमानों को बसने, यात्रा एवं व्यापार करने की आज्ञा दी थी।

यत्तमल्ल का उत्तराधिकारी अमरमल्ल पुरातत्व-वेत्ता तथा कलाकार था। उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों का कोई विशेष महत्व नहीं मालूम होता। हुमायूँ के राज्यकाल में नेपाल का राजा महेन्द्र दिल्ली आया। उसने बादशाह को श्वेत हंस और कुछ बाज दिए। बादशाह ने बदले में महेन्द्र को चाँदी की मुहर बनाने का अधिकार दिया। मोहर नेपाल का अभी तक सिक्का है। उसने काठमाण्डू में तंलेजू का मंदिर निर्माण कराया और नगर के भवनों तथा क्षेत्र को विस्तारित किया। उसने नागरिकों

को पहले-पहल नगर में ऊँचे मकान बनवाने का अधिकार दिया।

महेन्द्र के पुत्र सदाशिव के राज्यकाल में बुद्धगया के पूर्ण अनुरूप महाबोध का मंदिर ललितपत्तन में निर्माण किया गया। मालूम होता है कि जिस प्रकार जापानियों ने जापान में सार-नाथ की नकल पर मृगदाव बनाया है उसी प्रकार सदाशिव ललितपत्तन में बोधगया बनवाना चाहता था। बुद्ध-धर्मावलम्बी जिवराज बुद्धगया आया था। उसी ने महाबुद्ध का मंदिर बनवाया।

सदाशिव आलसी था। राज्यकार्य में निपुण भी नहीं था। अपने घोड़ों को दुःख देता था। उपत्यका में घोड़े मर जाया करते थे। उसका आचरण इतना भ्रष्ट था कि कोई सुन्दर स्त्री बचने न पाती थी। फल यह हुआ कि विद्रोह की अग्नि फैल गई। उसे मारकर राज्य-प्रासाद से बाहर निकाल दिया। वह भागकर भक्तपुर अपने वंशजों की शरण में आया। वहाँ वह कारागार का जीवन व्यतीत करता रहा और एक दिन समाचार मिला कि राजा मर गया।

सन् १५८५ ई० में शिवसिंह काठमाण्डू का राजा निर्वाचित किया गया। उसने सन् १६१४ ई० तक राज्य किया। उसकी धर्मपत्नी गंगारानी अत्यन्त दयालु, शिष्ट, सच्चरित्र एवं धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री थी। पशुपति, चंगनारायण तथा स्वयम्भूनाथ के मंदिरों का उसने जीर्णोद्धार कराया था। कहा जाता है कि रानी की मृत्यु पर पशुपतिनाथ के मंदिर से इतनी जोरों से शोकपूर्ण ध्वनि हुई कि सुननेवाले बहिरे हो गए।

लक्ष्मीनरसिंह अपने पिता के पश्चात् राजा हुआ। उसी के समय नगर का नाम काठमांडू पड़ा। उसने एक ही वृक्ष की लकड़ी से भवन बनवाया था। वह भवन अब तक विद्यमान् है। इस प्रकार 'काष्ठ-मण्डप' से ही 'काठमाण्डू' नाम पड़ा है। भीममल्ल राज्य का काजी था। वह बड़ा व्यापारी था। केवल काठमाण्डू में उसकी बत्तीस दूकानें थीं। उसने तिब्बत से भी सम्बन्ध स्थापित किया। उसने लाशा में मरनेवाले नेपालियों की जायदाद की व्यवस्था का भी अधिकार राज्य से प्राप्त कर लिया। लाशा-राज्य पर प्रभाव डालकर कुटीदर्रा का अधिकार नेपाल-राज्य को दिला दिया। लाशा से लौटने पर उसने सारे राज्य में अपना हाथ फैलाना चाहा। स्वयं राजा बनने की इच्छा प्रगट की। परिणामस्वरूप राजा लक्ष्मीनरसिंह ने उसे मरवा डाला। उसकी स्त्री सती होते समय श्राप दे गई कि दरबार में कभी नियम एवं उचित न्याय नहीं होगा। राजा को अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ और उसके भाग्य ने उसे दण्ड दिया कि वह १८ वर्षों तक पागल होकर जीवित रहा। उसके पागलपन के साथ कहा जाता है कि रत्नमल्ल ने देव-जागृत करने की जो विद्या प्राप्त की थी, वह नष्ट हो गई।

प्रतापमल्ल सन् १६३९ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए। उसने ६१ वर्ष तक राज्य किया था। उसमें नैतिक बल तथा साहस दोनों ही था। अकबर के समान वह जिज्ञासु भी था। हनुमानठोका में दरबार की बाहरी दीवालपर १५ भाषाओं में खुदा उसका शिला-लेख मैंने स्वयं देखा है। प्रतापमल्ल ने ही यह परम्परा स्थापित की कि बूढ़ानीलकण्ठ का दर्शन कोई राजा नहीं कर सकता,

क्योंकि राजा स्वयं विष्णु का अंश है। सन् १६४० ई० में लाशा का अधिकार स्वयंभूनाथ के मंदिर के संबंध में स्वीकार किया गया और तिब्बतियों द्वारा स्वयम्भू-स्तूप के तोरण, शिखर एवं कलश पर हेमरंजित ताम्रपत्र बदला गया। किसी अपराध के लिए जिसके प्रायश्चित्त की व्यवस्था शास्त्रों में नहीं थी, वह पशुपति के मंदिर में जाकर तीन मास तक बैठा पूजन तथा प्रायश्चित करता रहा। उसने रत्नों एवं स्वर्णादि से तुलादान भी किया था।

प्रतापमल्ल विद्वान्, बुद्धिमान् एवं शीलवान् राजा था। उसने अपने जीवनकाल में ही राज्य पुत्रों को दिया था। उसके चार पुत्र थे। प्रत्येक पुत्र को एक वर्ष राज्य करने को दिया था। तीन पुत्रों ने तो एक-एक वर्ष राज्य किया; किन्तु चतुर्थ पुत्र चक्रवर्ती केवल एक दिन राज्य कर कालकवलित हो गया। इसी पुत्र की स्मृति में तूड़ीखेल के दक्षिण ओर रानीपोखरी नामक सरोवर बनाया गया है। यह सरोवर काठमाण्डू का एक श्रेष्ठ एवं दर्शनीय स्थान हो सकता है; किन्तु इस समय वह उपेक्षित अवस्था में है।

भास्करमल्ल ने विजयादशमी को निश्चित तिथि पर न मनाकर दूसरे मास में मनाना चाहा। लोगों ने मना किया। भास्कर मल्ल ने किसी की बात न सुनी। उस समय उपत्यका में प्लेग फैल गया। राजा ने देवताओं को प्रसन्न करना चाहा और लोगों को एक दिन का पूरा भोजन दान किया गया; लेकिन परिणाम कुछ न हुआ। निराश होकर वह अपनी राजधानी काठमाण्डू की ओर चला। लगभग १ मील के फासले पर राजा का देहान्त हो गया।

राजा—श्रीपृथ्वीनारायण शाह

भास्कर के पश्चात् उसकी रानियों ने, दूर के सम्बन्धी, जगज्जय को राजा निर्वाचित किया। राजा को निर्वाचित कर रानियाँ तुरन्त सती हो गईं और जगज्जयमल्ल ने महीपतीन्द्र नाम से राज्यशासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। उसका देहांत सन् १९३२ ई० में हो गया।

जगज्जय के पश्चात् उसका पुत्र जयप्रकाश राजा हुआ। इसी राजा के समय में एक साधु उपत्यका में आया और राजा को सावधान किया कि उसके राज्य को पृथ्वीनारायण शाह द्वारा भय है। पृथ्वीनारायण गोरखा के राजपूत राजा थे। जयप्रकाश ने ३७ वर्षों तक राज्य किया। ललितपत्तन के राजा विष्णुप्रकाश सन्तानहीन थे, अतएव उसकी मृत्यु के पश्चात् जयप्रकाश का भाई राज्यप्रकाश ललितपत्तन का राज्य हुआ। दरबार के षड़यन्त्र के कारण कुछ दिनों तक जयप्रकाश राज्य से दूर रहा और उसका भाई नरेन्द्रप्रकाश राजा था। किन्तु जयप्रकाश ने तुरन्त प्रतीकार किया और नरेन्द्रप्रकाश ने भागकर भक्तगाँव में शरण ली, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

किन्तु राज्य का अधिकारीवर्ग जयप्रकाश के विरुद्ध था। इस बार उसकी स्त्री दयावती स्वयं षड्यन्त्र में सम्मिलित थी। जयप्रकाश काठमाण्डू छोड़कर भागा और उसका अठारह मास का लड़का राजा घोषित किया गया। कुछ दिनों बाद जयप्रकाश पुनः लौटा। अधिकारी पराजित हुए। रानी ने काजी को फाँसी दिलवा दी कि राजा प्रसन्न होगा; परन्तु जयप्रकाश ने रानी को राज्यप्रासाद में ही कैद कर रखा और वहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

जयप्रकाश राज्य की शक्ति को केन्द्रस्थ कर पृथ्वीनारायण शाह को रोकना चाहता था। उसने नयकोट लेने का प्रयत्न किया; किंतु असफल रहा। उसने १७५३ ई० में पुनः प्रयत्न किया। इस बार काशीराम थापा ने षड्यंत्रकर नगर को गोरखों के हवाले करना चाहा; परन्तु पता लगते ही जयप्रकाश ने काशीराम को दरबार में बुलाया और उसके बेकसूर कहने पर भी उसे मरवा डाला।

पृथ्वीनारायणशाह थापा की हत्या से अत्यन्त क्रोधित हो उठा और आक्रमण कर नयकोट नगर ले लिया।

ललितपत्तत में जयप्रकाश का भाई राज्यप्रकाश राजा था। पत्तन के छः प्रधानों ने मिलकर उसे अन्धा कर दिया। इसपर जयप्रकाश ने उन प्रधानों को पकड़कर बेइज्जती के साथ नगर में हाथ फैलाकर भिक्षा माँगने को कहा। उनकी स्त्रियों ने भी उनका साथ नहीं छोड़ा। जयप्रकाश ने उन्हें भी चुडैल की तरह कपड़े पहनाकर अपने पतियों के साथ अपमानपूर्वक काठमाण्डू की गलियों में भिक्षा माँगने की आज्ञा दी। इस अपमान से त्रस्त होकर प्रधान लोग गोरखों से मिल गए और षड्यन्त्र करने लगे।

पृथ्वीनारायण ने काठमाण्डू के समीपवर्ती कीर्तिनगर पर आक्रमण किया। जयप्रकाश ने उसे पराजित कर दिया और भाग्य से पृथ्वीनारायण की जान बची। भक्तगाँव के राजा रणजीतमल्ल ने काठमाण्डू के कुछ नागरिकों को उत्तम वस्त्र पहनने के अपराध में पकड़ लिया। जयप्रकाश ने इसका विरोध किया और नागरिक छोड़ दिए गए। राजा ने देवपातन में आए

भक्तगाँव के कुछ यात्रियों को पकड़वा लिया, जो पशुपति का दर्शन करने आए थे। उनसे पर्याप्त द्रव्य लेकर छोड़ा और मन्दिरों से भी बहुत-सा रुपया लेकर उस फौज को दिया जो कीर्तिपुर के युद्ध में गोरखों को परास्त किए थी।

भक्तपुर के राजा ने द्वेषवश जयप्रकाश पर पृथ्वीनारायण शाह को आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया। पृथ्वीनारायण ने गोरखों की सेना के साथ नयाकोट ले लिया और कीर्तिपुर पर भी आक्रमण किया। कीर्तिपुर इस समय ललितपत्तन के राजा के आधीन था। किन्तु ललितपत्तन से किसी प्रकार का विरोध-प्रदर्शन नहीं किया गया। जयप्रकाश देश के खतरे को समझता था। उसने आक्रमणकारी सेना का सामना कर गोरखों को पराजित किया। पृथ्वीनारायण शाह मरते-मरते बच गए। उनका भाई स्वरूपरत्न बुरी तरह घायल हुआ।

कीर्तिपुर के निवासियों ने अपना एक प्रतिनिधि-मण्डल जयप्रकाश के पास भेजकर कीर्तिपुर का राजा बनने के लिए निवेदन किया। किंतु जयप्रकाश ने प्रतिनिधि-मण्डल का अपमान किया। उसके सब सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। उसके नेता दनुवन्त को स्त्री-वेश में नगर की गलियों में घुमाया।

पृथ्वीनारायण शाह लगन का व्यक्ति था। वह हारकर हतोत्साह नहीं हुआ। उसने उपत्यका के सब दर्रों से सामान का आना बन्द कर दिया। उपत्यका दुनिया से अलग हो गई। जो लोग चोरबाजारी करते पाए जाते थे, उन्हें फाँसी देकर उनका शरीर मार्ग में लटका दिया जाता था। पृथ्वीनारायण ने उपत्यका में जयप्रकाश के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया।

राजा के विरुद्ध जन-रव प्रबल होता गया। इसी समय राजा ने पशुपति के धन-संग्रह पर भी हाथ लगा दिया, जिससे ब्राह्मण और धार्मिक जनता भी राजा के विरुद्ध हो गई। उधर पृथ्वी-नारायण अपनी तैयारी में संलग्न था और इधर राजा जय-प्रकाश कीर्तिपुर की विजय से फूलकर निष्क्रिय-सा हो गया था।

सन् १७६७ में पृथ्वीनारायण शाह ने पुनः कीर्तिपुर पर घेरा डाल दिया। छः मास तक कीर्तिपुर के निवासियों ने वीरता-पूर्वक सामना किया; परन्तु अन्त में उन्हें झुकना पड़ा। जय-प्रकाश यद्यपि कीर्तिपुर से चार मील की ही दूरी पर था; परन्तु न तो वह कीर्तिपुर की सहायता करने आया और न तो उसने पृथ्वीनारायण की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का कोई प्रयत्न ही किया। कीर्तिपुरवाले कुछ दिनों तक आन्तरिक दुर्ग में रहकर युद्ध चलाते रहे; ताकि पृथ्वीनारायण से सन्धि की उदार शर्तें प्राप्त कर सकें। अन्त में पृथ्वीनारायण ने उदार व्यवहार का विश्वास भी दिलाया; लेकिन दुर्ग के पतन होते ही उसने आज्ञा दी कि नवजात शिशुओं को छोड़कर सब पुरुषों के ओठ और कान काट लिए जायँ। विजेता की आज्ञा का पालन कठोरतापूर्वक किया गया और एक मन कटा हुआ नाक और ओठ पृथ्वीनारा-यण को भेंट किया गया।

अब पृथ्वीनारायण शाह ने ललितपत्तन पर भी आक्रमण कर घोषणा की कि यदि नगर विजय-स्वीकार न करेगा तो कीर्ति-पुर के पुरषों के समान कान और ओठ के साथ ही दाहिना हाथ भी काट लिया जायगा। ललितपत्तनवालों का उत्साह ढीला पड़ गया; किन्तु इसी समय कप्तान किन लाश की सेना के आक्रमण

की बात सुनाई पड़ी। पत्तन का घेरा उठा लिया गया और रामकृष्ण अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना को रोकने के लिए भेजा गया। ४८६८ में २५ अगस्त (१७६७ ईस्वी) को अंग्रेजी सेना को नेपालियों ने पराजितकर विजय प्राप्त की।

२९ सितम्बर सन् १७६७ ई० को इन्द्रयात्रा का उत्सव था। जयप्रकाश ने सब सेना यात्रोत्सव में बुला ली थी। काठमाण्डू नगर खाली देखकर पृथ्वीनारायण शाह ने आक्रमण कर दिया। खाली नगर पर बिना रक्त-पात के ही अधिकार हो गया और जयप्रकाश ने, ललितपत्तन के राजा तेजनरसिंह को साथ लेकर, भक्तगाँव में शरण ली। पृथ्वीनारायण ने विजय प्राप्तकर इन्द्रयात्रा के लिए आज्ञा दे दी।

पृथ्वीनारायण ने पत्तन के सरदारों को विश्वास दिलाया कि उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जायगी और उनके साथ सज्जनोचित व्यवहार किया जायगा। किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् पत्तन के उन सभी सरदारों को मरवा डाला गया जो उसका स्वागत करने के लिए आए थे।

काठमाण्डू, ललितपत्तन तथा भक्तपुर के तीनों राजाओं ने अपनी शक्ति संघटित की। पृथ्वीनारायण जयप्रकाश की वीरता को नहीं भूला था। वह कोई सुगम मार्ग की खोज में था। भक्तपुर के राजा रणजीतमल्ल के सात जारज पुत्रों को उसने मिलाया। उन लोगों ने भक्तगाँव का शस्त्रालय तथा मेगजीन शत्रु के हवाले कर दिया। पश्चिमी द्वार पर कोई विरोध भी नहीं हुआ और पृथ्वीनारायण की सेना ने नगर में प्रवेश किया। जयप्रकाश बहादुरी के साथ युद्ध करता हुआ सांघातिक चोट से

घायल हुआ। जयप्रकाश के घायल होने पर रणजीतमल्ल का हाथ-पैर फूल गया। वह कुछ न कर सका। उसने तिब्बती भाड़े के सैनिकों को रखा था। क्रोध में आकर उसने सबको उनकी बैरकों में जीवित ही फुँकवा दिया; क्योंकि उनकी स्वामिभक्ति पर उसे किंचिन्मात्र भी विश्वास नहीं रह गया था।

पृथ्वीनारायण ने रणजीतमल्ल से राज्य पर कायम रहने के लिए कहा; किंतु रणजीत खूब जानता था कि पृथ्वीनारायण किस पानी का आदमी था। अतः उसने यही इच्छा प्रकट की कि उसे काशी जाने दिया जाय। राजा जब काशी के मार्ग में चन्द्रगिरि पर पहुँचा तो उपत्यका की ओर देखकर अपने सातों पुत्रों को श्राप दिया। अनन्तर पृथ्वीनारायण ने उसके सातों पुत्रों को बुलाया और उनकी देश-द्रोही नीति एवं कायरता के लिए उन्हें गाली दी और नाक कटवाकर उनकी सब सम्पत्ति जब्त कर ली।

पृथ्वीनारायण शाह ने जयप्रकाश से उसकी इच्छा पूछी। पराजित राजा ने कहा कि वह पशुपति के घाट पर जाकर मरना चाहता है। पृथ्वीनारायण ने पहले तो आज्ञा दे दी; किन्तु उसे कुछ रहस्य मालूम हुआ। अतः उसने पुनः पुछवाया कि क्या अपने आराम के लिए जयप्रकाश कुछ लेना चाहता है। जयप्रकाश ने उत्तर दिया कि जूता और छाता। इसपर पृथ्वीनारायण समझ गया कि जयप्रकाश ने अभी आशा नहीं त्यागी है। छाता का अर्थ था छत्र और जूता का अर्थ था कि यदि सम्भव हुआ तो इसी जन्म में लौटना चाहता है, अन्यथा पुनर्जन्म धारणकर बदला लेगा। पृथ्वीनारायण ने दोनों बातें स्वीकार कर सन्देशा कहला भेजा कि दोनों चीजें भेजी जाती हैं; किन्तु

इनका उपयोग उसके तथा उसके पुत्र के जीवन-काल तक में न किया जायगा। मृत्युमुख-प्राप्त जयप्रकाश ने शर्त मंजूर कर ली और पशुपति के घाट पर बागमती में पैर डाले हुए एक पत्थर पर अपनी अन्तिम श्वास तोड़ दी। अनंतर पत्तन के दुर्बल राजा को पृथ्वीनारायण ने कैद कर दिया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। जयप्रकाश की माता के गले से कीमती हार पृथ्वीनारायण ने उसके प्रति दया दिखाने के बदले में उतरवा ली। पृथ्वीनारायण ने युरोपियन मिशनरियों को नेपाल से निकलवा दिया और श्वेतागों के लिए नेपाल के सब द्वार बन्द कर दिए। तिब्बत-सरकार पर भी जोर दिया कि श्वेतागों को निकाल बाहर करे। फल यह हुआ कि तिब्बत भी विदेशियों के लिए वर्जित स्थान हो गया। पृथ्वीनारायण अंग्रेजों से बहुत सतर्क रहा करते थे और इनकी नीति अब तक नेपाल में किसी-न-किसी रूप में बरती जाती है। सन् १७७१ ई० में राजा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र प्रतापसिंह शाह सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने दक्षिण-पश्चिम की ओर राज्य कुछ बढ़ाया। सन् १७७५ ई० में उसकी भी मृत्यु हो गई और बालक रणबहादुर शाह राजा हुआ। अल्प-यस्क (नाबालगी) काल में प्रतापसिंह का भाई बहादुरशाह संरक्षक के रूप में राज्य-व्यवस्था करने लगा।

बहादुर शाह ने सन् १७८८ ई० में मोरंग के सामन्त को शिकम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। तिब्बत की सरकार ने कुटीदर्रा के पास नेपाल को कुछ भूमि दी और वार्षिक कर देने की भी प्रतिज्ञा की। सन् १७९१ ई० में नेपाल ने चीन पर हमला कर दिया और शिकम तथा भूटान ले लिया। दमल दामो-

दर पानरे तथा वाम शाह ने आक्रमण का आयोजन किया था। चम्बी घाटी पर खतरा उत्पन्न हो जाने के कारण चीन को यह आवश्यक हो गया था कि इस सम्बन्ध में कुछ करे। नेपालियों ने सीधे तिब्बत पर भी हमला कर दिया। १८००० गोरखे सैनिकों ने आक्रमणकर लामा के राज्य-प्रासाद पर अधिकार कर लिया।

चीन-सम्राट् का आसन विचलित हो गया। चीन से सेना-पति कीन-लेग और फू-केग-यान के नेतृत्व में उस समय भेजे गए चीन-सम्राट् के दूत के साथ नेपालियों ने अभद्रता का व्यवहार किया और लामा के राज्य-प्रासाद से लूटे धन को वापस करने से इन्कार कर दिया। चीन की शक्ति का अब तक अनुमान नेपालियों को न था। फलतः युद्ध में नेपाली फौज पीछे हटने लगी। लड़ाई के मैदान में कहीं पैर न जम सका। खरता और हथिया दर्रों में पीछे हटते समय करीब दो हजार नेपाली सैनिक जीते-जी ठण्ढक से ठण्ढे हो गए। चीन की फौज और नेपालियों से वेत्रवती पर युद्ध हुआ। चीन की फौज जब नयकोट के पास पहुँच गई, जहाँ से काठमाण्डू केवल एक दिन का मार्ग था तो दोनों राज्यों में सन्धि हो गई।

गढ़वाल तथा कमायूँ को जीतकर सन् १७९४ ई० में उन्हें नेपाल में मिलाया गया। शिमला भी नेपाल के अन्तर्गत था। इस प्रकार काश्मीर से शिकम तक नेपाल-राज्य का विस्तार हो गया था। रामकृष्ण ने गोरखा-राज्य के विस्तार में बहुत ही महत्व-पूर्ण भाग लिया था। मीची नदी तक राज्य-विस्तार करने के पश्चात् उसका स्वर्गवास हो गया।

नेपालियों ने काँगड़ा पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा ने
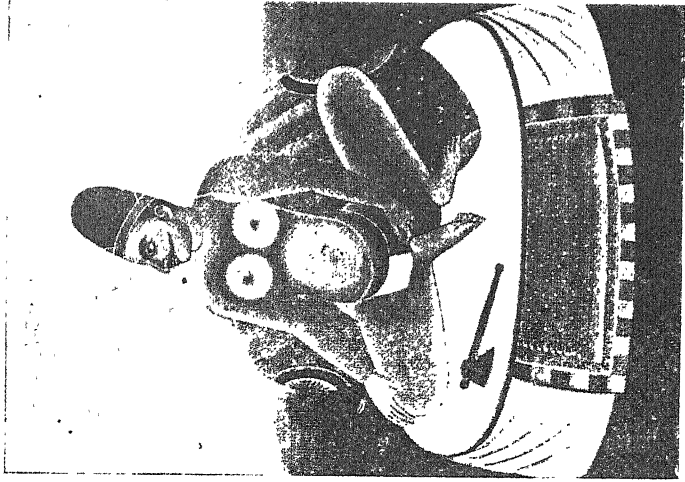
श्री दामोदर पाण्डेय (पानरे)

राजा श्री रण बहादुर शाह

समय बिताने और रणजीतसिंह से सहायता प्राप्त करने के निमित्त एक लाख रुपया वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा कर संधि कर ली। अपने ज्येष्ठ पुत्र को नेपाली सेना में रख दिया तथा कन्या का ब्याह नेपाल के राजा से कर दिया।

रणबहादुरशाह ने सन् १७९५ में बालिग घोषित कर राज्य-सूत्र अपने हाथों में लिया और चाचा बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। ब्राह्मण उसके चरित्र से दुखी हो गए। उसने एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया जो हिन्दू-शास्त्र के विरुद्ध था। रानी बीमार पड़ी। ब्राह्मणों को उसने बहुत दान किया। जैसे-जैसे उससे कहा गया उस तरह उसने धार्मिक कृत्य दान-पुण्य आदि किया। रानी को माता की बीमारी हो गई थी। उसका मुख बिगड़ गया। उसने अपने बिगड़े हुए रूप को देखकर ग्लानि के कारण आत्महत्या कर ली। राणा बहादुर क्रोधित हो उठा। उसने दान का सब धन ब्राह्मणों से वापस माँगा। वह यहाँ तक क्रोधान्ध हो उठा कि पागलों की तरह देवमूर्तियाँ पीस कर चूर्ण कर डालीं। फलस्वरूप जनता बिगड़ गई। अन्त में राजा निर्गुणानन्द स्वामी का नाम धारणकर काशीवास के लिए चल दिया। अपनी ब्राह्मणी स्त्री द्वारा उत्पन्न पुत्र गीर्वाण वीरविक्रम शाह को राजा ने अपना उत्तराधिकारी बनाया। अन्तिम समय में उसका विचार फिर बदल चला था और स्वयं राजा बना रहना चाहता था। परन्तु जनता ने उसके पुत्र को ही राजा बनाना स्वीकार किया। राजा की धर्मपत्नी त्रिपुरासुन्दरी राजा के साथ-साथ काशी आई। दामोदर पान्डे ने राज्य का भार उठाया और प्रधानमन्त्री हुए। उनके पश्चात् नेपाल में

धानमन्त्रियों की परम्परा स्थापित हुई।

राणा बहादुरशाह निर्गुणानन्द के नाम से काशी में आए; लेकिन एक स्त्री के फेर में पड़ गये। उनकी तपस्या और त्याग ढोंगमात्र रह गया। इन्होंने रानी के सब आभूषणों पर पहले हाथ साफ किया और उसके पश्चात् अंग्रेजों से रुपया उधार लेना आरम्भ किया। ईस्टइण्डियाकम्पनी मौका देख रही थी। उसने समय का लाभ उठाया। निश्चय हुआ कि एक रेसिडेंट नेपाल में रहेगा। कप्तान नाक्स नेपाल भेजे गए। नेपालियों को यह बहुत बुरा लगा। नाक्स ११ साल तक वहाँ रहने के पश्चात् भारतवर्ष लौट आए। त्रिपुरासुन्दरी ने अवसर अच्छा देखकर दामोदर पानरे से बातचीत आरंभ की और अविभावक रानी की हैसियत से वह नेपाल की ओर चली। सेना की एक टुकड़ी रानी को रोकने लिए भेजी गई; किन्तु सेना मिल गई। रानी ने जब काठमाण्डू में प्रवेश किया तो जनता ने स्वागत किया और दामोदर पानरे स्वयं रानी को लेने के लिए आए।

दामोदर पानरे तथा उसके पुत्र ने अंग्रेजों को निकालने के लिए बड़ा ही सुन्दर प्रयत्न किया था। भारतवर्ष में अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर नेपाली चिन्तित हो उठे थे। उन्हें अंग्रेजों से खतरा दिखाई देता था। महाराष्ट्रों, अवध के नवाबों, राणा उदयपुर तथा इन्दौर आदि राजाओं को एकसूत्र में लाकर अंग्रेजों को बाहर निकालने का षड्यन्त्र किया जा रहा था। नेपाल स्वयं इस आजादी की लड़ाई में आगे रहेगा, यह भी निश्चित था। उसने नेता बनना स्वीकार कर

लिया। रणजीतसिंह से भी बातचीत हो रही थी। किन्तु पंजाब में रणजीत सिंह ने कुछ उत्साह न दिखाया। भारतवर्ष के राजाओं की फूट ने इस व्यवस्था को सफल न होने दिया।

प्राप्य कागजातों से पता लगा है कि रामजंग पानरे ने इस दिशा में बहुत कार्य किया था। ईरान, वर्मा एवं पेशावा तक बातचीत चलाई गई थी। नेपाल में युद्ध की तैयारी भी आरम्भ कर दी गई थी और सैनिकों की भरती जारी हो गई थी। लेकिन भारतवर्ष के भाग्य में कुछ और ही बदा था।

दामोदर पानेर तथा उसके पुत्र को कहा जाता है कि भीमसेन थापा ने मरवा डाला और वह स्वयं प्रधानमंत्री हुआ। भीमसेन राणा बहादुरशाह के साथ काशी में रह चुका था। भीमसेन थापा नेपाल का अत्यन्त दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसकी गणना महाराष्ट्रियों के नीतिज्ञ नाना फड़नवीस तथा पंजाब के रणजीत-सिंह के साथ की जा सकती है। इस समय का नेपाल भीमसेन थापा की ही कीर्ति का स्मारक है। उसने नेपाल में संगठन का काम किया और नेपाल को एक ठोस राज्य के रूप में परिणत कर दिया। सन् १८०९ तक नेपाल-राज्य सिकम से सतलज तक विस्तृत हो चुका था।

पृथ्वीपाल पालपा का राजा था। भीमसेन थापा ने उसे आमन्त्रित किया कि राणा बहादुरशाह की बहिन के साथ उसका व्याह किया जायगा। राजा काठमाण्डू में आया; परन्तु अपने सब साथियों के साथ मार डाला गया और अमरसिंह थापा ने उसके राज्य पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। विजय के पश्चात् विजय प्राप्त करते हुए सन् १८०४ ई० तक

समस्त नेपाल गोरखा-राजा के आधीन हो गया। अमरसिंह काश्मीर की ओर बढ़ना चाहता था; किन्तु काँगड़ा घाटी में रणजीत सिंह की सेना से सामना हुआ और बाढ़ रुक गई।

काठमाण्डू में राणा बहादुर लौट आया था। उसने ब्राह्मणों को कष्ट देना आरम्भ कर दिया। राजा के विजात भाई शेर-बहादुर ने राज्य-प्रासाद ही में राजा को मार डाला। भीमसेन ने दासी-रानी को राजा के साथ सती होने के लिए बाध्य किया। त्रिपुरासुन्दरी आगामी २८ वर्षों तक अभिभावक रानी की तरह राज्य करती रही।

भीमसेन नेपाल-राज्य की सीमा बढ़ाता जाता था। उसने नेपाल की तराई के २०० गावों को सात वर्षों में अंग्रेजों की अमलदारी से लेकर अपने राज्य में मिला लिया। अंग्रेज कुछ कर न सके। अन्त में एक कमीशन बैठाया गया, जिसमें नेपाली और अंग्रेज दोनों थे। कहा जाता है कि कमीशन ने अंग्रेजों के पक्ष में फैसला दिया; परन्तु भीमसेन के विजित प्रदेश को नहीं लौटाया।

भीमसेन थापा ने सन् १८१३ ई० में चीन-सम्राट् से बातचीत आरम्भ की कि अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकालना चाहिए; क्योंकि म्लेच्छों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण समस्त एशिया को खतरा है। कहा जाता है कि अमरसिंह थापा ने भीमसेन की इस नीति का विरोध किया। उसने यहाँ तक कहा कि भीमसेन अंग्रेजों के विरुद्ध होनेवाले षड्यन्त्र का मुखिया है और अंग्रेजों की शक्ति को नहीं समझता। मालूम होता है कि भीमसेन काशी में जब राणा बहादुर के साथ था, उस समय उसे अंग्रेजों की

रीति तथा उन्हें समझने का अच्छा अवसर मिला था। यदि वह अंग्रेजों की बढ़ती शक्ति से चिन्तित था तो यह उसकी दूरदर्शिता ही कही जायगी। भीमसेन अपनी नीति पर चलता रहा। युद्ध की तैयारी जोरों से होने लगी और सेना का नवीन ढंग से संघटन किया जाने लगा। लार्ड मोइरा ने २५ दिनों की चुनौती दी कि गोरखपुर की तराई से नेपाली लोग अंग्रेजी इलाकों को छोड़ दें। नेपालियों ने इलाका नहीं छोड़ा। सन् १८१४ ई० में अंग्रेजों ने इलाके में प्रवेश कर उनपर अधिकार कर लिया।

२९ मई तथा अन्य दिवसों पर नेपालियों ने अंग्रेजों तथा उनके कर्मचारियों को मारना आरम्भ किया। अंग्रेजों ने पुनः समझौते का प्रयत्न किया; किन्तु नेपालियों ने अस्वीकार कर दिया। अंग्रेज अपनी सेना एकत्र करने लगे और पहली नवम्बर को सीमा पर सेना एकत्र होने की आज्ञा जारी कर दी गई।

अवध के नवाब ने दो करोड़ रुपये की सहायता नेपाल के विरुद्ध अंग्रेजों को दी। सेना तथा अन्य सामान क्या दिया, यह तो नहीं कहा जा सकता; किन्तु इतना अवश्य हुआ कि हिन्दुस्तान का रुपया हिन्दुस्तानियों का गला काटने के लिए उपयोग में लाया जाने लगा। अंग्रेजों ने आक्रमण किया; किन्तु भीमसेन थापा की शिक्षित सेना के सम्मुख वे ठहर न सके। लार्ड मोइरा ने स्वयं आक्रमण की रण-योजना बनाई थी। अंग्रेजी सेना ने बड़े ही रण-निपुण चार सेनापतियों के अधीन लगभग चार सौ मील के क्षेत्र में आक्रमण किया था।

मेजर जनरल जिलेस्पी ने, जो नेपालियन के एक साथी को हरा चुका था, देहरादून के कलोंग दुर्ग पर छः हजार सिपाहियों

के साथ हमला किया। कलोंग में उस समय केवल ६०० सैनिक थे; किन्तु उन लोगों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। जनरल जिलेस्पी स्वयं दुर्ग के फाटक पर मारा गया। अंग्रेजी सेना हार-कर देहरादून से हट आई। कलोंग के युद्ध में ५२० नेपाली सिपाही भी मारे गए, जिन्होंने बड़ी वीरता दिखाकर राज्य की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखी और शेष ८० सिपाहियों ने अंग्रेजों की अपार सेना के होते हुए भी उनकी आधीनता स्वीकार न की। कलोंग का यह युद्ध नेपालियों की वीरता के इतिहास की अमर कहानी है। गढ़ के रक्षक बलभद्र ने २४० सैनिकों के साथ दुर्ग की रक्षा की और जिलेस्पी दुर्ग पर चढ़ते समय मारा गया। जिलेस्पी के स्थान पर मेजर जनरल मारटिन डेल सेनापति हुआ। उसने ४००० फौज और मँगाकर आक्रमण किया। एक मास तक गढ़ घिरा था। पानी समाप्त होने पर गढ़ के शेष ७० वीर सैनिक लगभग १० हजार सैनिकों को चीरते हुए निकल गए। इन सिपाहियों ने आगे चलकर अफगानिस्तान की चढ़ाई के समय नौशेरा के युद्ध में वीरता की परम सीमा दिखाई थी। देहरादून-मंसूरी सड़क से लगभग आध मील पूर्व दिशा में रिप्सा नदी के मध्य एक टापू पर मेजर जनरल जिलेप्सी एवं बलभद्र की दो समाधियाँ साथ बनी हैं। दक्षिण समाधि के पूर्वीय ओर अंग्रेजों ने निम्नलिखित शिला-लेख लगवाया है, जिसका हिन्दी-अनुवाद निम्नलिखित होगा:—

यह अंकित है
बलि के आदर स्वरूप
निमित्त अपने साहसी शत्रु

बलभद्र
दुर्ग के सेनापति
एवं उनके वीर गुरखे
अनंतर जो कि
जब सेवा में थे
रणजीत सिंह के
अपनी पंक्ति में मारे गए
अंतिम व्यक्ति तक
अफगानिस्तान के तोपखानों द्वारा।

शत्रु द्वारा निर्मित इस शिला-लेख से स्पष्ट प्रगट होता है कि नेपाली जनता एवं सैनिकों का आचरण एवं जीवन-स्तर कितना ऊँचा था और वे किस प्रकार अपने देश के लिए स्वेच्छा-पूर्वक आत्मोत्सर्ग करने में गौरव का अनुभव करते थे। वीरवर बलभद्र एवं उनके साथियों की वीरता हल्दीघाटी और थर्मापोली के महान वीरों की अपेक्षा किसी प्रकार कम न थी। रणजीतसिंह ने अफगानिस्तान पर जब आक्रमण किया था तो १८२३ ई० की खैबर की चढ़ाई के समय उक्त वीर नेपाली रणजीतसिंह की सेना में थे। नौशेरा के विकट युद्ध में अफगान सैनिकों के सम्मुख सिखों के पैर उखड़ गए। सिख फौज भाग खड़ी हुई; परन्तु ७० नेपाली वीर पर्वत के सदृश अफगानियों की बाढ़ रोके हुए उस समय तक खड़े रहे जब तक कि उनमें एक-एक व्यक्ति वीर-गति को प्राप्त न हुआ।

मृत जिलेस्पी के स्थान पर मेजर जनरल मारटिन डेल सेनापति हुआ। उसने २७ दिसम्बर को जैतक पर आक्रमण करने

की योजना बनाई। किंतु उसे भी सफलता न मिली और अपने उच्च अधिकारियों को उसने लिख भेजा कि सफलता उसके वश की चीज नहीं रह गई है।

सतलज नदी के वाम तट पर जनरल आक्टर लोनी अपनी शिक्षित एवं पटु सेना के साथ आक्रमणशील था। नेपाल का श्रेष्ठ सेनापति अमरसिंह थापा उसके सम्मुख जम गया। अमरसिंह की रण-चातुरी ने अंग्रेजों को विचलित कर दिया। घनघोर युद्ध के पश्चात् १५ मई को मौलाना में विराम-सन्धि की बात हुई। अंग्रेजों ने गढ़वाल, कमायूँ और शिमला का राज्य माँगा। भीमसेन थापा ने संधि की शर्त स्वीकार नहीं की। जनरल गार्डनर की फौज विघटित हो गई। किंतु जनरल गार्डनर ने २५ अप्रैल सन् १८१५ ई० में पुनः अल्मोडा पर आक्रमण किया।

लार्ड मोइरा इस बात पर तुल गया था कि वह नेपाल की शक्ति को अवश्य तोड़कर पराजित करेगा। सन् १८१६ ई० में सारन से जनरल अक्टर लोनी के सेनापतित्व में पुनः आक्रमण की योजना बनाई गई। जनरल मारले अंग्रेजी सेना के साथ सीधे काठमाण्डू पहुँचना चाहता था। वह चुरिया-घास तक पहुँच भी गया। वहाँ गोरखों की सेना से उसका सामना हुआ। वह सम्मुख युद्ध नहीं करना चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि हाथों-हाथ की लड़ाई में उसे मुँह की खानी पड़ेगी। अतएव अंग्रेजों ने अपनी फूट और चतुराई पुरानी की नीति से काम लिया। वह बकरियों के चरने के मार्ग से पर्वत के दूसरी ओर अर्थात् नेपाली सेना के पीछे पहुँचना चाहता था या नेपाली सेना को चुरिया पर छोड़कर आगे निकल जाना चाहता था।

भेदियों ने मार्ग बतला दिया। अंग्रेजी सेना के कर्नल केली ने हरिहरपुर का सैनिक स्थान छीन लिया। इसपर नेपालियों ने शीशगढ़ी और मकवनपुर में मोर्चा लेने की तैयारी कर दी। मकवनपुर के समीप सेना पहुँचते ही सन्धि हो गई और ४ मार्च सन् १८१६ ई० को दरबार की मुहर लगाकर सन्धिपत्र जनरल आक्टर लोनी को दिया गया। नेपाल में अंग्रेज रेसिडेण्ट रहने का भी निश्चय हुआ और एडवर्ड गार्डनर पहला रेसिडेण्ट नियुक्त हुआ। उसके पश्चात् ब्रियान एच. होगसन नेपाल का रेसिडेण्ट बनाया गया।

भीमसेन थापा ने नेपाल को अंग्रेजों के चंगुल से बचा लिया। वह जानता था कि लार्ड बेलजली द्वारा चलाई गई सहायकसन्धि-प्रथा ने भारतीय राजाओं का सर्वनाश कर दिया। उनकी सैनिक शक्ति टूट गई थी। एक के पश्चात् दूसरा भारतीय राज्य अंग्रेजों के झण्डे के नीचे आता गया। टीपू सुलतान और भीमसेन थापा दो ही व्यक्ति भारतवर्ष में थे, जिन्होंने अंग्रेजों की नीति को खूब समझा था। टीपू यदि नेपाल में होता तो शायद पराजित न होगा। उसके पराजय का कारण मैसूर का मैदान था। निजाम हैदराबाद और मराठे सभी उसके विरुद्ध लड़े थे। भीमसेन के विरुद्ध अवध के नवाब ने धन से तो अंग्रेजों की सहायता की थी; परन्तु किसी हिन्दुस्तानी राजा की सेना ने नेपाल के विरुद्ध तलवार नहीं उठाई थी। भीमसेन ने अत्यन्त दूरदर्शिता एवं नीतिमत्ता से नेपाल की रक्षा की थी, जिसके लिए नेपाली जनता को सदा उसका कृतज्ञ रहना चाहिए।

भीमसेन ने अंग्रेज-दूत का रहना काठमाण्डू में पसन्द न

किया। किन्तु वह परिस्थिति से बाध्य था। नेपाल-राज्यप्रासाद के रहनेवालों एवं सामन्तों का षड़यन्त्र यदि उसे व्यग्र न करता तो संभवतः वह नेपाल को कुछ और ही बना देता। सन्धि के पश्चात् भी वह अंग्रेजों को अपना शत्रु समझता था। अंग्रेजदूत की उपस्थिति ने काठमाण्डू के षड़यन्त्रकारियों को शक्ति-प्रदान की। अंग्रेज अपनी कार्यसिद्धि के लिए नेपाल की शक्ति को दुर्बल करने के निमित्त सदा एक दल को दूसरे दल से लड़ाने का प्रयत्न करते रहे, जैसा कि अब से अगले समय का इतिहास बतलाएगा।

नेपाल में इस समय भीमसेन थापा एवं मातवरसिंह जैसे दो राजनीतिज्ञों एवं वीरपुरुषों के नेतृत्व में बहुत कुछ करना चाहता था। एशिया को एक कर यूरोपीय शक्ति के विरुद्ध उसे खड़ा करने की भावना पहले-पहल भीमसेन थापा के दिमाग में आई थी। इसी वृहत्तर एशिया के नारा को तेजो ने फाँसी पर चढ़ते समय एवं अपने समस्त जीवन में लगाया था और उसी स्वप्न को सत्य करने का प्रयत्न पं० जवाहरलाल नेहरू कर रहे हैं। नेपाली इन अंग्रेजों के विरुद्ध ठोस दल बनाने के लिए सिक्खों के यहाँ, हैदराबाद, मैसूर, भूटान, वर्मा और चीन तक पहुँच रहे थे। भीमसेन थापा ने अपने भतीजे मातवरसिंह को महाराजा रण-जीत के यहाँ भेजा था। उन दिनों सिखों पर अंग्रेजों की कोप-दृष्टि थी और अफगानिस्तान पहुँचने के लिए सिख मार्ग के रोड़े थे। सिख सशंकित थे और अंग्रेजों से उनका भीतरी संघर्ष चल रहा था। सन् १८०९–१८१० में रणजीतसिंह सतलज नदी के पूर्वीय तट के देशों में अंग्रेजों के हस्तक्षेप को बुरा समझते थे और अंग्रेजों को सावधान किया था कि वे अपनी कार्यवाही उक्त

श्री मातवर सिंह

प्रदेश में रोक दें। रणजीतसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए मराठों से सहायता माँगी थी। रणजीतसिंह को कहीं से सहायता न मिल सकी और अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी नीति न चला सके।

सन् १८३१ में अंग्रेजों ने सिन्ध में हाथ बढ़ाना आरंभ किया। रणजीतसिंह को चिन्ता उत्पन्न हुई, क्योंकि उनका राज्य दक्षिण-पश्चिम तथा पूर्व में अंग्रेजों द्वारा घिरता जा रहा था। अहमद्-शाह अबदाली जिसने तृतीय पानीपत के युद्ध में मराठों को पराजित किया था, उसका पौत्र शाहशुजा अफगान की गद्दी गँवा-कर रणजीतसिंह का शरणागत हुआ था। अनन्तर अंग्रेजों के आश्रय में लुधियाना में रहता था। सन् १८३३ ई० में अंग्रेजों की सहायता से उसने बहावलपुर एवं सिन्ध के मार्ग द्वारा अफ-गानिस्तान पर आक्रमण किया; किन्तु कन्धार से पराजित होकर उसे लौटना पड़ा। सिन्ध के अमीर ने अंग्रेजों की नीति से परे-शान होकर रणजीतसिंह से सहायता माँगी। रणजीतसिंह सिन्ध की सहायता की तैयारी करने लगा। उनका युवक पौत्र नोनिहालसिंह आक्रमण का नेतृत्व करने के लिए चुना गया। अंग्रेजों को इस नीति का पता लगते ही अंग्रेजी फौज सिन्ध में पहुँच गई। अंग्रेजों ने रणजीतसिंह से कहला भेजा कि सिन्ध में हस्तक्षेप करने का अर्थ युद्ध होगा। सिख-सरदारों ने आक्र-मण करने के लिए रणजीतसिंह पर जोर दिया; किन्तु रणजीत-सिंह का साहस न हुआ। यहीं तक नहीं, रणजीतसिंह ने मात-वरसिंह को भी अंग्रेजों के हवाले कर दिया और अंग्रेजों ने उसे शिमला ले जाकर कैद कर दिया।

अंग्रेजों की नीति इस समय थी कि पश्चिमी भारत को पूर्ण-रूपेण अपने हाथों में कर मध्य-एशिया तक भारतीय बृटिश-साम्राज्य फैला दिया जाय। बंगाल के समान शाहशुजा को मीरजा-फर के तुल्य अफगानिस्तान का बादशाह बनाकर, काबुल को केन्द्र मानकर, मध्य-एशिया में साम्राज्य फैलाया जाय। किन्तु यह उस समय तक सम्भव नहीं था, जब तक कि सिखों का खात्मा नहीं होता या रणजीतसिंह भी इस योजना के सफल सहायक नहीं हो जाते। सन् १८३८ में मैकनाटन रणजीतसिंह के पास अपनी योजना के साथ गया; क्योंकि वही उसका कल्पनाकार था। शाहशुजा ने रणजीतसिंह से अपनी गद्दी पाने के लिए सन्धि की थी; परन्तु रणजीतसिंह इस डर से कि अंग्रेज न जाने क्या रुख अख्तियार करेंगे, कोई सहायता शाहशुजा को न दे सका। मैकनाटन ने रणजीतसिंह से इस बार खुलकर कह दिया कि रणजीतसिंह चाहे इस योजना में शरीक हों या नहीं, अफगानिस्तान पर अंग्रेजी सेना आक्रमण करेगी और शाहशुजा अंग्रेजी सेना के साथ काबुल में प्रवेश करेगा। इस पर रणजीतसिंह कोई रास्ता न देखकर योजना में अपनी सम्मति दे दी। अंग्रेजों की भारतीय सेना शाहशुजा के साथ बोलन-दर्रा पार करती कन्धार और गजनी जीतती हुई काबुल में प्रवेश कर गई। जून सन् १८३९ में रणजीतसिंह का स्वर्गवास हो गया। अगस्त सन् १८३९ में अंग्रेजों ने शाहशुजा को काबुल के सिंहासन पर बैठा दिया और काबुल का अमीर दोस्तमुहम्मद भाग गया।

रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र खड़गसिंह गद्दी पर बैठा। नौनिहालसिंह अपने पिता से अधिक चतुर एवं

वीर था। दोस्तमुहम्मद तथा उसके साथी नेपाल में विद्रोह की तैयारी करने लगे। नौनिहालसिंह उन्हें सहायता देने लगा। नेपाल से भी उसने अपना सम्वन्ध स्थापित किया। किन्तु नेपाल से सीधा सम्बन्ध स्थापित होने में अंग्रेजों के अधीनस्थ भारतीय प्रदेशों के कारण व्यवधान उपस्थित होता, अतएव हिमालय द्वारा सिख तथा नेपाल-राज्य से सम्पर्क स्थापित करने की योजना बनाई गई। जोरावरसिंह ने लद्दाख के पूरव बढ़ना आरम्भ किया। उसने स्काई जीत लिया।

भारतीय राजनीति ने फिर पलटा खाया। ५ नवम्बर सन् १८४० को राजा खड़गसिंह का देहान्त हो गया। उनकी अंत्येष्टि क्रिया कर लौटते समय एक छत के गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। छत का गिरना रहस्य से खाली नहीं था। इसके पीछे अंग्रेजों का एक गम्भीर षड्यन्त्र था। नाना-फड़नवीस, भीमसेन थापा, नौनिहालसिंह एवं टीपू सुलतान चार विभूतियों ने अंग्रेजों की रीति को समझा था। उन्होंने अपने जीवन में सब कुछ करने की कोशिश की; किन्तु अन्तिम तीनों ही अंग्रेजों के षड्यन्त्रों के शिकार हुए और उन षड्यन्त्रों के साधन हिंदुस्तानी ही थे।

खड़गसिंह की मृत्यु के पश्चात् शेरसिंह सिखों का राजा हुआ। उसने नौनिहालसिंह की नीति पर ही कार्य करना आरम्भ किया। दोस्तमुहम्मद ने आत्मसमर्पण कर दिया था। मेकनाटन ने शाहशुजा की ओर से पेशावर आदि की तरफ आँख उठाई। उस समय केवल सिख लोग ही भारतवर्ष में शेष रह गये थे, जो नाम के लिए स्वतन्त्र थे तथा उनकी सेना में कुछ शक्ति रह

गई थी। सिख लोगों ने गुलाबसिंह को काश्मीर भेजा कि वे वहाँ की स्थिति सँभालेंगे; परंतु वह भी अंग्रेजों से मिल गए और काश्मीर स्वयं हथिया लिया। सिख लोग अनिश्चित परि-स्थिति के कारण परेशान हो गए थे। भारतवर्ष में उनकी सहा-यता देनेवाला नेपाल के अतिरिक्त और कोई दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। जोरावरसिंह ने मई एवं जून सन् १८४१ में सिन्ध तथा सतलज की घाटियों को जीतकर मानसरोवर पर अपनी छावनी डाल दी। इस प्रकार उनका सीधा सम्पर्क नेपाल से स्थापित हो गया था; किंतु इस समय का नेपाल अपने आन्तरिक षड्यन्त्रों से गिर रहा था। सिखों ने निश्चय किया कि पेशावर राजा गुलाबसिंह को दे दिया जाय; किन्तु अंग्रेजों ने शेरसिंह पर जोर दिया कि गुलाबसिंह को पेशावर न दिया जाय और तिब्बतियों को गारकोप फेर दिया जाए। अंग्रेज पेशावर स्वयं चाहते थे और चीन से भी सन् १८४० में भारतीय सेना की सहायता द्वारा हांगकांग का बन्दरगाह छीन लिया। अंग्रेज देख रहे थे कि सिख लोगों का नेपाल से अच्छा सम्बन्ध है। यदि चीन की ओर बढ़े तो सम्भव था कि सिखों का निकट सम्पर्क रूस तथा चीन से भी हो जाता। अंग्रेज इस सम्भावना से दूर रहना चाहते थे कि कहीं भारत में विदेशी शक्तियों का किसी राज्य से सम्बन्ध न हो जाय और अंग्रेजों को संघटित विदेशी शत्रु का सामना करना पड़े। यही कारण था कि सिखों पर विशेष जोर दिया जा रहा था कि वे तिब्बत से लौट आएँ। तिब्बत से लौटने का अर्थ नेपाल, चीन एवं रूस से स्वतः सम्बन्ध-विच्छेद होना था। शेरसिंह की आज्ञा पहुँचने

के पूर्व ही लाशा की चीनी सेना ने जोरावरसिंह को घेर लिया। पूस मास में सिख सिपाही शीत से परेशान हो गए। बन्दूक के कुन्दों को जलाकर प्राण-रक्षा करने लगे। जोरावरसिंह युद्ध में मारा गया। मानसरोवर के मार्ग में अपनी मातृभूमि से बहुत दूर इस एकान्त राष्ट्र-सेवी वीर की समाधि तालकोट से तीन मील दूर तरेपो ग्राम में स्थित है। खेद है कि सन् १८१४-१८१६ में पंजाब-नेपाल की सीमा जो मिली थी, वह सदियों के लिए भारतीय स्वतंत्रता के साथ सन् १८४१ में अलग हो गई। भीमसेन थापा एवं मातवरसिंह नेपाल में राणाशाही षड्यन्त्र के शिकार हुए थे; किंतु वह दिन दूर नहीं है जब नेपाली युवक अपने शताब्दियों पूर्व हुए इन दो जन-नायक नेताओं के प्रदर्शित पथ पर चलता हुआ, उनके साथ किए गए अत्याचार, अन्याय एवं अमानुषिक नृशंसता का बदला लेकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करेगा कि इतिहास कभी-कभी अपने को दुहराता है।

लार्ड हेस्टिंग्स् जब भारतीय समस्या की उलझन में पड़ा था, उस समय भीमसेन ने पुनः चीनसम्राट् से सम्बन्ध स्थापित किया। जब-जब अंग्रेज तथा किसी भारतीय राजा में युद्ध छिड़ता तो समय का लाभ उठाकर भीमसेन अंग्रेजों से कुछ-न-कुछ भूखण्ड प्राप्त करने की चेष्टा करता था। वह चुपचाप दो-चार गाँव सिपाही भेजकर दबा लेता था।

मराठों की लड़ाई के समय भीमसेन ने पुनः सिर उठाया। गण्डक और राप्ती के मध्य की तराई का भूखण्ड उसने अँग्रेजों से माँगा। अँग्रेज इस समय युद्ध मोल लेना नहीं चाहते थे,

अतएव दो लाख वार्षिक कर देने पर नेपाल को गण्डक और ताप्ती के मध्य का समस्त तराई-खण्ड दे दिया गया। थापा ने बृटिश-दूतावास को कालापानी बना दिया। कोई वहाँ पहुँच नहीं सकता था। दूतावास का सम्बन्ध बाहरी दुनिया से बिल्कुल टूट गया था। भीमसेन ने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। जनरल आक्टर लोनी ने गवर्नर जनरल को सावधान कर दिया था कि नेपाली सैनिक कम्पनी के सैनिकों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और बहादुर हैं। अत: नेपाल से युद्ध करना ठीक न होगा; प्रत्युत नेपाल से मित्रताकर उसकी सैनिक शक्ति का उपयोग करना ही उचित होगा। किन्तु भीमसेन के रहते यह सब असम्भव था। अतएव अंग्रेजों की नीति नेपाल को दुर्बल बनाने और भीमसेन-रूप काँटे को दूर करने की हुई।

रानी त्रिपुरासुन्दरी के देहान्त के कारण वहाँ विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई। एक ओर जब भीमसेन की कार्य-प्रणाली को स्वतन्त्रता मिली तो दूसरी ओर राज्यप्रासाद का षड्यन्त्र जोर पकड़ गया और अन्त में जाकर उसके पतन का कारण हुआ।

राजेन्द्रविक्रम की प्रथम रानी दामोदर पानरे के दल की समर्थक थी और दूसरी रानी भीमसेन थापा की पक्षपातिनी थी। राज्यप्रासाद दो दलों में विभाजित हो गया था। सन् १८३३ ई० में राजा बालिग हो गया और राज्यसत्ता को स्वयं अपने हाथों में लेना चाहा। राजा की बड़ी रानी ने थापा के विरुद्ध ब्राह्मणों को उभाड़ना आरम्भ किया। थापा के विरुद्ध महाराज का भी कान भरना आरम्भ किया गया; किन्तु महाराज थापा को निकालने के पक्ष में नहीं हुए।

पंजनी के समय जब राज्य के सभी कर्मचारियों को पुनः नियुक्त किया जाता है, राजा राजेन्द्रविक्रम की सूची में प्रधान-मन्त्री के स्थानपर थापा का नाम नहीं लिखा गया। थापा चुप होकर बैठ गए और समझ गए कि हवा का रुख बदल रहा है। किन्तु महाराज ने नेपाल की भलाई की दृष्टि से व्यक्तिगत द्वेष-भावना दूरकर भीमसेन थापा को पुनः प्रधानमन्त्रित्व के लिए आमन्त्रित किया।

इसी समय भारतवर्ष पर रूस के आक्रमण की अफवाह उड़ी। भीमसेन ने मौका हाथ से जाने न दिया। पंजाब के रणजीत-सिंह से बातचीत आरम्भ की। यह सोचा जाने लगा कि किस प्रकार अंग्रेजों को बाहर निकाला जाय। थापा ने नेपाल की सेना का पुनःसंगठन आरम्भ कर दिया। उसने समझ लिया था कि अंग्रेजों की शक्ति भारतवर्ष में प्रबल होती जा रही है, अतएव नेपाल को सामरिक दृष्टि से पूर्ण बनाना उसकी नीति का मुख्य अंग हो गया था। उसने यह भी समझ रखा था कि नेपाल के सामन्तों, राज्यवंशों आदि के षड्यन्त्रों के कारण बृटिशदूत का नेपाल में रहना अनिवार्य हो गया है; क्योंकि उनकी एक आवाज भी अंग्रेजों को बाहर निकालने के लिए नहीं उठ रही थी। कोई-न-कोई दल अंग्रेजों की सहायता के लिए उनका मुखापेक्षी रहा ही करता था। अन्त में बृटेन और नेपाल के बीच व्यापारिक सन्धि हुई। अंग्रेजों ने सोचा कि थापा का दिमाग कुछ ठण्ढा पड़ा होगा और सम्बन्ध शायद सुधर जाय। लेकिन थापा बड़े जीवट का आदमी था। परिस्थितियाँ उसे बाध्य कर रही थीं। उसके सहायकों की बड़ी कमी हो रही थी। उलटे

शक्ति-संपन्न एवं स्वार्थलोलुपों की संख्या बढ़ रही थी।

बड़ी रानी और ब्राह्मणों के प्रचार के फेर में राजा डगमगा रहा था। षड्यन्त्रकारियों ने भीमसेन के छोटे भाई रणवीरसिंह को मिला लिया। रणवीरसिंह सेनापति होना चाहता था। भीमसेन ने अपनी सम्मति नहीं दी। रणवीर ने राजा पर जोर दिया कि भीमसेन को प्रधानमन्त्रित्व से हटा दिया जाय।

भीमसेन की सहायता के लिए उसका भतीजा मातवरसिंह तैयार हो गया। वह सेना को बहुत ही प्रिय था। समस्त सेना उसके साथ थी। राजा का साहस न हुआ कि मातवरसिंह के विरुद्ध कुछ कर सके। अब पानरे वंशवालों ने नयी चाल चली। उन लोगों ने राजा के सम्मुख यह माँग पेश की कि उनकी पैतृक सम्पत्ति वापस की जाय तथा उन्हें वही मान-प्रतिष्ठा प्राप्त हो जो पहले प्राप्त थी। थापा ने अंग्रेजों के साथ हुई व्यापारिक संधि का कभी उपयोग ही नहीं किया। सन्धि केवल कागजी कारवाई मात्र रह गई। अंग्रेज परेशानी में पड़ गए। मातवरसिंह कोहटाने के लिए आवश्यक सुझाव रखा गया था कि मातवरसिंह इंग्लैण्ड की यात्रा करें। थापा मातवरसिंह को स्वतंत्र राज्य के प्रतिनिधि-रूप में भेजना चाहता था। परन्तु अंग्रेजों ने शर्त रखी कि मातवरसिंह व्यक्तिगत रूप से यात्रा करें तथा उन्हें इङ्गलैण्ड के राजा विलियम चतुर्थ से सीधे बात करने का अधिकार न होगा। थापा को यह शर्त मंजूर न हुई और मातवरसिंह की यात्रा का सुझाव समाप्त हो गया।

मातवरसिंह को जनता के सम्मुख नीचा दिखाने के लिए पानरे लोगों ने हल्ला उड़ाया कि मातवरसिंह का अनुचित

श्री भीमसेन थापा

सम्बन्ध उसके भाई की विधवा पत्नी से है। यह अफवाह भी झूठ साबित हुई। परन्तु षड्यन्त्र दिनों-दिन इतना गम्भीर होता गया कि थापा जानता हुआ भी पानरे लोगों की दुष्टता का उन्हें दंड न दे सका।

पानरे लोगों ने चीन भेजे जानेवाले प्रतिनिधि-मंडल में स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की। थापा ने विरोध किया। फल यह हुआ कि चौतरिया लोगों में से लोग प्रतिनिधि-मण्डल में भेजे गए। ब्राह्मणदल ने भी ज़ोर मारा और रघुनाथ पण्डित प्रधान न्यायपति मुकर्रर कर दिया गया। मातवरसिंह गोरखा-क्षेत्र का प्रधान शासक था। राजा ने उसे हटाकर दामोदर पानरे के एक लड़के को शासक बनाया। राजा ने रणजंग पानरे की सम्पत्ति वापस कर दी तथा उसका सम्मान पूर्ववत् कर दिया। पहली रानी का छोटा लड़का २४ जुलाई सन् १८३७ ई० में अचानक मर गया। पानेर लोगों ने अफवाह फैलाना आरम्भ किया कि थापा स्वयं रानी को विष देना चाहता था। रणजंग पानेर ने राजा को उभाड़ा। राजा ने भीमसेन को कैद कर लिया। कुछ दिन पश्चात् मातवरसिंह भी कैद कर लिया गया।

रणजंग ने उस वैद्य को सताना आरम्भ किया जिसने मृत राजकुमार की औषधि की थी। उसे सताकर कहलवाया गया कि भीमसेन ने राजकुमार को विष दिया था। वैद्य इस गवाही के पश्चात् सम्भवतः इतना सताया गया कि वह मर गया; ताकि सच्ची बात प्रगट न हो। साथ ही; दूसरे वैद्यों को भी फुसलाया गया कि भीमसेन के विरुद्ध गवाही दें; किन्तु सफलता न मिली। रणजंग ने चार वर्ष पश्चात् स्वीकार किया कि भीमसेन के विरुद्ध

लगाया गया अपराध बिल्कुल मिथ्या था। भीमसेन का पतन करने के लिए ही नानाप्रकार की झूठी अफवाहें गढ़ी और फैलाई गई थीं।

इस समय चौतरिया लोग भी पीछे न रहे। राजा पर उन्होंने भी प्रभाव डाला और रणजंग हटा दिया गया। रघुनाथ पण्डित प्रधानमन्त्री बना। प्रधानमन्त्री बनते ही रघुनाथ पण्डित ने भीमसेन थापा तथा मातवरसिंह को मुक्त कर दिया। रणजंग ने सेनापति बनना पसन्द किया और प्रधानमन्त्रित्व को त्याग दिया। भीमसेन अपने कष्टों के कारण पुनः लोकप्रिय हो गया। उसने राज्य-कार्य से अलग रहकर शान्त जीवन व्यतीत करना पसन्द किया। मातवरसिंह लाहौर में रणजीतसिंह के पास चला गया। रणजंग ने राजा से काशी जाने की प्रार्थना की। किन्तु बड़ी रानी के जोर देने पर राजा ने प्रार्थना अस्वीकार कर दी। सन् १८३९ ई० में रणजंग पुनः थापा-दल के विरोधी दल का नायक बन गया।

रणजंग पुनः शक्तिशाली हो गया। शक्ति आते ही उसने भीमसेन थापा को कैद कर लिया और उसे नर्क सदृश एक अत्यन्त अंधकारपूर्ण गन्दी कोठरी में बन्द किया गया, जहाँ चौबीस घण्टे रात रहा करती थी। किन्तु उसे मारने का साहस रणजंग को न हुआ, क्योंकि जनता के बिगड़ जाने का भय था। फिर भी एक खुखड़ी उसके पास इसलिए छोड़ दी गई थी कि वह आत्महत्या कर ले।

नेपाल के इतिहास में ही नहीं; हिन्दूजाति के इतिहास में अत्यन्त लज्जापूर्ण घटना उस दिन घटी जब भीमसेन थापा की

स्त्री को काठमाण्डू की गलियों और सड़कों पर नंगी चलने की आज्ञा रणजंग ने दी। वह जबर्दस्ती नंगी घुमाई गई। जब इस घटना की खबर थापा को मिली तो नेपाल-राज्य के निर्माता अनुपम वीर और स्वदेश-भक्त ने, जिसकी एकमात्र इच्छा नेपाल को विकसित करने और अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकालने की थी, अपनी खुखड़ी से अपनी गर्दन पर वार कर दिया। किन्तु वह मर न सका और नौ दिनों तक मृत्यु और जीवन के संघर्ष में पड़ा रहा। उसकी औषधि का भी कोई प्रबंध न हुआ। उसके पास बैठकर कोई यह भी पूँछने-वाला न था कि वह चाहता क्या है? यह कितने आश्चर्य की बात थी कि वीर कहलानेवाली काठमाण्डू की जनता ने किस प्रकार एक हिन्दूनारी को नग्न घूमती हुई गलियों में देखना सहन किया। मेरी समझ में यह बात आज तक न आई कि नेपाल में क्या कोई एक भी व्यक्ति ऐसा न था जो उस नंगी हिन्दूनारी की वहीं हत्याकर हिंदूजाति के कलंक को बचा लेता? क्या नेपाली उस समय इतने अधिक नपुंसक हो गए थे? यह निश्चित है कि उसी के प्रायश्चित्त स्वरूप आज नेपाली जनता राणाशाही का अत्याचार एक शती से सह रही है; क्योंकि उसने एक होते हुए भी उस अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई थी। उस समय वह कर्त्तव्यच्युत हो गई थी। उसने अपना वीरोचित साहस त्याग दिया था। उसमें प्रतिरोध की शक्ति नहीं रह गई थी।

भीमसेन के जीवन के अध्यायों में सब से करुण-दृश्य उस अंतिम समय का है जब उस श्रेष्ठ वीर नेपाली का शव हिंदूधर्म

के अनुसार दाह-क्रिया तक के लिए नहीं दिया गया। उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। शहर में चील और पक्षियों के खाने को उसके शरीर की बोटियाँ फेंक दी गईं और अन्त में जो अस्थियाँ शेष रह गईं वे नदी के किनारे फेंक दी गईं, जहाँ कुत्तों तथा गृद्धों ने महोत्सव मनाया। अपने देश के इस वीर पुरुष के प्रति नेपालियों ने जिस प्रकार कायरता और निर्लज्जता का परिचय दिया था उसे स्मरणकर मानवता को आज तक लज्जित होना पड़ता है और उस समय मृत्यु की आँखें भी भर आई होंगी। दुनिया के इतिहास में इतना राक्षसी कार्य शायद ही कहीं पढ़ने को मिलेगा।

राजा बृटिश-दूतावास में गया। वहाँ से आने पर थापा-जाति के लिए राज्य का कोई भी पद सात पीढ़ी तक के लिए बंद कर दिया गया। थापा लोगों का समस्त राजकीय सम्मान छीन लिया गया। दी गई जागीर भी जब्त कर ली गईं। निःसन्देह इस दिन अंग्रेज अपने शत्रु के इस निधन से जितने अधिक प्रसन्न हुए होंगे उतनी प्रसन्नता संभवतः रणजंग को भी प्राप्त न हुई होगी। नेपाल की ओर से उनके मार्ग का काँटा खतम हो चुका था। अब अंग्रेजों के लिए मार्ग साफ़ था। उनका कोई कट्टर शत्रु अब नहीं रह गया था; बल्कि उनकी सहायता के लिए ही वहाँ का कोई-न-कोई दल इच्छुक था। थापा की मृत्यु के साथ ही नेपाल की स्वाधीनता भी समाप्त हो गई। उसकी स्वाधीनता अब अंग्रेजों की दया पर निर्भर रह गई। नेपाल का स्थान अफगानिस्तान से बहुत ही नीचा होकर भारतवर्ष की किसी रियासत के समान हो गया। केवल नाम के लिए नेपाल

स्वतंत्र रह गया; किन्तु उसकी स्वतंत्रता वस्तुतः अंग्रेजों द्वारा छिन गई। इसमें संदेह नहीं कि यदि भीमसेन थापा षड्यन्त्रों का शिकार न हुआ होता तो कम-से-कम अफगानिस्तान के बफर राज्य के समान पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग नेपाल अवश्य करता।

नेपाल को यदि अंग्रेज चाहते तो स्वयं अपने राज्य में मिला लेते; क्योंकि घरेलू षड्यन्त्रों से नेपाल की जन शक्ति क्षीण हो रही थी। उनका संघटन विघटित हो रहा था। अंग्रेज सेनानियों ने देखा कि भारतीय सिपाही की अपेक्षा नेपाली सिपाही अधिक परिश्रमी और सादे होते हैं और उनके साथ हिन्दूधर्म का नाना प्रकार का टिटिम्मा नहीं रहता है। अतः नेपाल को अन्धकार में रखकर उसकी सामारिक शक्ति का उपयोग अंग्रेजों ने आज तक खूब किया। थापा के बाद नेपाल की हिम्मत कभी न हुई कि अंग्रेजों के विरुद्ध जाता। अतएव यह ध्रुव है कि अंग्रेजों ने ही नेपाल की राज्य-व्यवस्था एवं उन वीरों का नाश उन्हीं नेपालियों द्वारा कराया जो एक ही हाड़-मांस के थे। आज तक नेपाल ने भीमसेन-जैसा एक भी व्यक्ति फिर पैदा नहीं कर पाया जिसमें स्वतन्त्रता की भावना होती और अंग्रेजों को अपना शत्रु समझता।

भीमसेन थापा के पश्चात् आज तक जितने प्रधानमन्त्री नेपाल में हुए सब ने अंग्रेजों को प्रसन्न करने की पूरी चेष्टा की है। अंग्रेजी पदवियों को पाने में नेपाली अपना सम्मान समझते हैं और उनकी सहायता करने में अभिमान का अनुभव करते रहे हैं। इसका फल यह हुआ कि नेपाल धीरे-धीरे मानसिक

पराधीनता की बेड़ी से जकड़ गया। उसकी सेना अंग्रेजों के इशारों पर नाचने लगी। जब आवश्यकता पड़ी तो नेपाली सेना ने बड़े प्रेम और उत्साह से भारतीयों तक के विरुद्ध तलवार उठाई। इसके विरुद्ध अफगानिस्तान की सेना का प्रयोग अंग्रेज न कर सके। अफगानिस्तान ने भारतीयों के दलन में हिस्सा नहीं बँटाया। किंतु नेपाल ने ऐसा किया और उसका परिणाम यह हुआ कि नेपाल अपनी सब प्रकार की स्वतन्त्रता को खो बैठा। राणा जंगबहादुर ने नेपाल में अपने वंश के लिए धन-संचय और शक्ति-संचय किया। अंग्रेजों के भरोसे पर उन्होंने सब कुछ किया; लेकिन जब उसकी कीमत चुकानी पड़ी तो नेपाल की स्वतन्त्रता को खो बैठे।

बड़ी रानी तथा रणजंग ने छोटी रानी को बदनाम करने तथा उनकी हत्या करने का प्रयत्न किया। बड़ी रानी तत्कालीन बृटिश-दूत होगसन को बर्खास्त कराने की बात सोचने लगी। इसी से प्रतीत होता है कि बृटिश-दूत का स्थान नेपाल की राजनीति में कितना महत्वपूर्ण हो गया था। उसे राज्यप्रासाद से सम्बन्धित कर बदनाम करने की चेष्टा की गई। इसके पश्चात् कुछ गोरखे सैनिक रामनगर राज्य में घुस गए और ९१ गाँवों को नेपाल में मिला लिया। दूत ने सेना की वापसी, हरजाना और क्षमा-याचना के लिए जोर दिया। रानी और रणजंग ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे विलम्ब करने लगे। सैनिक-विद्रोह की तैयारी की गई और फलस्वरूप अफवाह फैलाई गई कि अंग्रेजों की आज्ञा से सैनिकों की तनख्वाह घटा दी गई है। दूत एक दिन रात में राज्यप्रासाद में रोक लिया गया और विद्रोह आरम्भ हो गया।

सैनिक बृटिश-दूतावास पर आक्रमण करने गए। लेकिन राजा की आज्ञा दूतावास के लोगों को मार डालने की नहीं थी। सैनिक राज्यप्रासाद में आए। रानी घबड़ाई। राजाज्ञा नहीं मिल सकी। दूसरे दिन रानी राजधानी त्यागकर भागी। प्रधानमंत्री तथा अन्य पाँच मन्त्रियों के निवासस्थान घेर लिए गए। महाराज नेपाल ने स्वयं आकर सैनिकों को शान्त किया। सैनिकों ने आक्रमण करने के लिए बृटिश-दूतावास के आदमियों को मार डालने की माँग की।

लार्ड आकलैंड ने युद्ध का पैगाम भेजा। रानी ने बाध्य होकर रामनगर से अपनी सेना हटा ली और फिर अंग्रेजों और नेपालियों का सम्बन्ध बराबरी का नहीं; बल्कि राजा और उसके जमीन्दार जैसा हो गया। सेना में यह बात फैल गई कि अंग्रेजों की बात टालना अब नेपाल की शक्ति के बाहर की बात है।

नवम्बर में रणजंग प्रधानमन्त्रित्व से हटा दिया गया। रानी काशी जाने के लिए तैयार हो गई। महाराजा उसे लौटाने अथवा उसके साथ स्वयं भी काशी जाने पर तुल गए। लार्ड आकलैण्ड ने पासपार्ट देने से इन्कार कर दिया। बाध्य होकर रानी लौट आई। रानी अपने पति को सिंहासन त्यागने के लिए जोर देने लगी। उसकी इच्छा थी कि उसका पुत्र राजा हो और वह नाबालिग लड़के की अभिभाविका बनकर शासन करे। रानी नेपालियों की अंग्रेजों की वशवर्तिनी नीति को नापसन्द करती थी। राजा ने वही माना। रानी पुनः काशी की ओर चल पड़ी और तराई में ६ अक्टूबर सन् १८४१ ई० को मर गई। उसकी मृत्यु के साथ ही अंग्रेजों की नीति को समझनेवालों का

तथा उनके शत्रु का भी नेपाल में अंत हो गया। रानी ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर, बड़ोदा, अफगानिस्तान और रणजीत सिंह के पुत्र दलीपसिंह से सम्पर्क स्थापितकर अंग्रेजी राज्य उलटने की बात रात-दिन सोचा करती थी।

रानी की मृत्यु होते ही अंग्रेजों की बन आई और वहाँ गुलामी एवं जीहजूरी की नीति आरम्भ हो गई। अफगान-युद्ध बरमा-युद्ध में राजा ने गुरखा-फौज की मदद देने के लिए लिखा। लार्ड आकलैण्ड ने अस्वीकृत कर दिया। इसका मुख्य कारण संभवतः यह था कि अंग्रेज नेपाली लोगों को नवीन सैन्य विद्या तथा बाहरी दुनिया से दूर अन्धकार में रखना चाहते थे।

मृत रानी के बड़े पुत्र और छोटी रानी से झगड़ा आरम्भ हो गया। रानी अपने पुत्र को राजा बनाना चाहती थी। राजकुमार पानरे लोगों का पक्षपाती था और रानी थापा लोगों को चाहती थी। बड़ी रानी की मृत्यु से छोटी रानी अब बड़ी रानी हो गई थी और उसने राजकुमार को सनकी बतलाया। लार्ड एलेनबरा इस समय गवर्नरजनरल थे। होगसन से उनकी पटरी नहीं खाई और उसे बुला लिया। मामला फिर ठीक हो गया और होगसन अपने पूर्वस्थान पर आ गया। महाराजा और युवराज में नहीं बनती थी। इस अनबन के समय रानी ने मातवरसिंह को बुलाकर प्रधानमन्त्री सन् १८४२ ई० में बना दिया।

मातवरसिंह शिमला में रहता था। उसे सरकारी पेन्शन मिलती थी। वह आने में हिचकता था। मातवरसिंह की हिचक दूर करने के लिए रानी ने पानेर लोगों के मुखियों को मरवा दिया। लेकिन मातवरसिंह वास्तविक उत्तराधिकारी का अधिकार

मारकर उसके लड़के का समर्थन न कर सका। क्योंकि मातवरसिंह थापा के साथ रह चुका था, अतः उसे उचित-अनुचित, समय और परिस्थिति का पूरा ज्ञान था।

रानी के प्रियपात्र गगनसिंह ने रानी को सलाह दी कि मातवरसिंह को हटाना आवश्यक है। राजा से कहा गया कि मातवरसिंह राजा को हटाकर सुरेन्द्र को राजा बनाना चाहता है तथा सुरेन्द्र के पश्चात् वह स्वयं राजा बन बैठेगा। राणा जंगबहादुर इसके लिए उपयुक्त व्यक्ति समझा गया। वह मातवरसिंह का भतीजा लगता था।

मातवरसिंह १७ मई सन् १८४५ ई० को राज्यप्रासाद में बुलाया गया। जंगबहादुर के हाथ में भरी हुई बन्दूक स्वयं राजा ने देकर उसे पर्दे की आड़ में खड़ा कर दिया। मातवरसिंह ज्यों ही रानी की ड्योढ़ी पर पहुँचा, जंगबहादुर ने पर्दे की आड़ से उसकी हत्या उस बन्दूक से कर दी। उसका शरीर एक खिड़की से बाहर फेंक दिया गया। अन्त में दयावश राजा ने पशुपति के पास उसका दाह-संस्कार करने की आज्ञा दे दी।

मातवरसिंह की हत्या के पश्चात् रानी गगनसिंह को और राजा फतेहजंग को प्रधानमन्त्री बनाना चाहता था। जंगबहादुर और अभिमनसिंह भी प्रधानमंत्री बनना चाहते थे। समझौता इस प्रकार हुआ कि चारों जनरल बना दिए गए और नाम के लिए फतहजंग प्रधानमंत्री हुआ। जंगबहादुर युवराज का समर्थक था। अभिमनसिंह तथा फतेहजंग राजा के समर्थक थे।

पंजाब ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया और पहला सिख-युद्ध सन् १८४५ ई० में आरम्भ हुआ। लाहौर ने काठमाण्डू

से सहायता माँगी। राज्यप्रासाद की बैठक में फतेहजंग, अभिमन और दलभंजन इस पक्ष में थे कि अंग्रेजों के विरुद्ध सिखों की सहायता की जाय। किन्तु जंगबहादुर और गगनसिंह सहायता के पक्ष में नहीं थे; क्योंकि वे अंग्रेजों के पक्षपाती थे। राजा और रानी ने मध्य का मार्ग अपनाया। सन्देश भेजा गया कि यदि सिख दिल्ली ले लेंगे तो नेपाल उनकी सहायता करने के लिए उद्यत होगा।

जंगबहादुर शक्ति अपने हाथ में लेने की ताक में था। वह अंग्रेजों की सहायता चाहता था, इसलिए अंग्रेजों के विरोधी सभी कार्यों का वह विरोध करता था। राज्यप्रासाद में अपना पैर जमाने के लिए वह रानी के दल में सम्मिलित हो गया। अतः रानी के दो समर्थक; अर्थात् गगनसिंह और जंगबहादुर थे।

राजा ने १२ सितम्बर सन् १८४६ ई० में युवराज सुरेन्द्र तथा राजकुमार उपेन्द्र को बुलवाया और उनसे साफ कह दिया कि वंश की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने के लिए वे रानी के प्रेमी गगनसिंह की हत्या करें। उपेन्द्र ने फतेहजंग के पास जाकर सब बातें कहीं और उसने अभिमनसिंह तथा दलभंजनसिंह से सलाह ली। गगनसिंह जिस समय भगवान् की प्रार्थना कर रहा था उस समय जंगबहादुर ने, जो उसका साथी बनता था, उसकी हत्या की। अनंतर रानी स्वयं गगन के घर गई और उसकी तीनों स्त्रियों को सती होने से रोका। राज्य के सभी अधिकारियों को उसने बुलाया।

जंगबहादुर ने अपनी सेना के साथ कोट को घेर लिया। रानी को पहले तो संदेह हुआ; किन्तु रानी को विश्वास दिलाकर
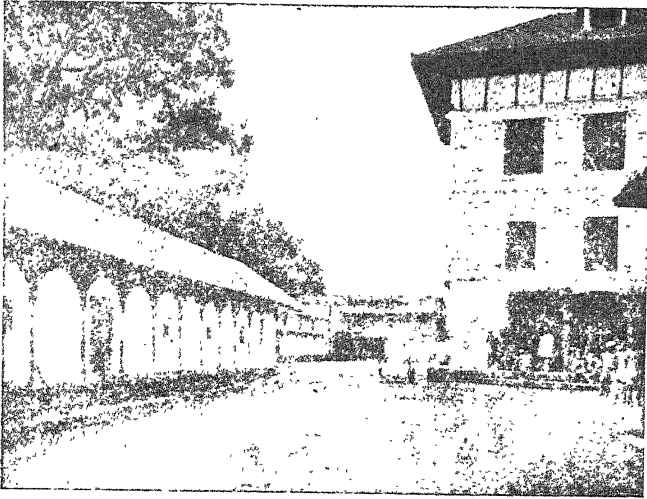
हत्याकाण्ड का स्थान

जंगबहादुर ने आज्ञा ले ली कि किसी दूसरे जनरल की सेना कोट के समीप न आने पाएगी। जंगबहादुर अपने भाइयों के साथ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर आया था। सरदारों के एकत्र होने पर रानी ने पानरे-दल के वीर किशोर को गगनसिंह की हत्या के लिए दोषी बताया। जंगबहादुर रानी का कृपापात्र इस समय हो गया था, अतएव उसपर रानी का कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। अभिमनसिंह को उसने आज्ञा दी कि वीर किशोर को गिरफ्तार कर ले। वीर किशोर गिरफ्तार कर लिया गया। रानी ने वीर किशोर को अपराध स्वीकार करने के लिए कहा। उसने इस सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार का ज्ञान होना अस्वीकार किया। रानी ने अभिमन को आज्ञा दी कि वीर किशोर की गर्दन उड़ा दे। वीर किशोर ने राजा की ओर देखा। राजेन्द्र ने हत्या की स्वीकृति नहीं दी और कहा कि मुकद्दमा उचिति रीति से चलकर निर्णय होगा। अभिमनसिंह राजा की बात लक्ष्मी-देवी से कह ही रहा था कि राजा राजेन्द्र यह कहते हुए दरबार छोड़कर चला गया कि उसे फतेहजंग से सलाह करनी है। फतेहजंग को कोट में भेजकर राजा बृटिश दूतावास में गया; परन्तु राजदूत ने कहला दिया कि यूरोपियन लोग इतना दिन चढ़े लोगों से भेंट नहीं किया करते। राजा हताश हो कर कोट की ओर लौटा; परन्तु कोट की नाली से बाहर खून की धारा निकलती हुई देखकर फतेहजंग के घर में उसने शरण ली। ऐसा प्रतीत होता है कि इस हत्याकाण्ड के पीछे दूतावास का हाथ था। दूतावास जंगबहादुर को साधन बनाकर नेपाल के सभी श्रेष्ठ व्यक्तियों को खतम करा देना चाहता था जिससे अंग्रेजों के

मार्ग में किसी प्रकार का काँटा न रह जाय।

जंगबहादुर ने फतेहबहादुर के सम्मुख दो सुझाव रखे—(१) रानी गिरफ्तार कर ली जाय या (२) वीर किशोर की हत्या की जाय। फतेहजंग ने रानी को गिरफ्तार करने की सम्मति दी। रानी खिड़की से पागलों की भाँति चिल्ला उठी कि हत्याकारी का नाम उसे बताया जाय। फतेहजंग ने कहा कि इतना शीघ्र किसी प्रकार का निर्णय देना कठिन होगा और इसमें कुछ समय लगेगा। रानी ने सौगन्ध खाई कि जब तक हत्यारे का नाम नहीं मालूम होगा कोई कोट से बाहर नहीं जा सकता। रानी क्रोध में स्वयं नीचे उतरकर वीर किशोर को अपने हाथों से मारना चाहती थी; परन्तु फतेहजंग तथा जंग-बहादुर ने बीच-बिचाव कर दिया। रानी पुनः दूसरी मंजिल की खिड़की पर चली गई।

जंगबहादुर को मालूम हुआ कि अभिमनसिंह की फौज कोट की ओर आ रही है और फतेहजंग तथा अभिमन ने किसी बात का निश्चय कर लिया है। जंगबहादुर ने रानी के पास जाकर कहा कि यदि अभिमन राज्य की फौज से मिल जायगा तो राज्य की शक्ति समाप्त हो जायगी और फिर कुछ करते न बनेगा।

जनरल अभिमनसिंह ज्यों ही बाहर जाने लगा कि प्रहरी ने रोक दिया। उसने कहा कि रानी ने जंगबहादुर के द्वारा आज्ञा दी है कि कोई बाहर नहीं जा सकता। अभिमन ने बल-पूर्वक बाहर जाना चाहा कि उसकी छाती में संगीन भोंक दी गई। अभिमन ने मरते समय चिल्लाकर कहा कि जंगबहादुर

ने गगनसिंह की हत्या की है। फतेहजंग का लड़का खड्गविक्रम स्थिति को समझ गया और उसने अपने साथियों से कहा कि अभिमन ने जो कहा है वह बिल्कुल ठीक है तथा उन्हें अपने जीवन की बलि जितनी अधिक कीमत पर देनी हो, देनी चाहिए। जंगबहादुर के भाई कृष्णबहादुर ने खड्गविक्रम से चुप होने के लिए कहा। खड्गबहादुर ने कृष्णबहादुर पर आक्रमण किया। कृष्ण का अँगूठा कट गया। जंगबहादुर का दूसरा भाई वामबहादुर बचाने को आया; परन्तु उसके सिर में गहरा घाव लगा। जंगबहादुर के तीसरे भाई धीरशमशेर ने, जो अच्छा तलवार चलानेवाला था, आकर खड्गबहादुर पर हमला किया और खड्ग का शरीर दो टुकड़े होकर गिर पड़ा।

फतेहबहादुर दलभंजनसिंह के साथ रानी के पास जाकर गगनसिंह के हत्यारे; अर्थात् जंगबहादुर का नाम कहना चाहता था। जंगबहादुर ने मना किया। दोनों सीढ़ियाँ चढ़ते गए। जंगबहादुर ने रहस्य खुलने के भय से उन्हें मारने का हुक्म दिया। जंगबहादुर के सिपाहियों ने गोली छोड़ी और दोनों सीढ़ी पर ही ढेर हो गए।

कोट में उस समय नेपाल के लगभग ५०० सरदार और सामन्त एकत्र थे। जंगबहादुर की सेना की एक कम्पनी कोट में आई और आते ही उसने निहत्थों की हत्या शुरू कर दी। यह हत्याकाण्ड संसार के इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखता। जलियानवालाबाग इसके सामने इस दृष्टि से नगण्य-सा कहा जा सकता है कि यहाँ लोगों को बुलाकर, षड्यंत्र रचकर, देश को अंग्रेजों के हाथ बेंचकर, देश के श्रेष्ठ वीरों, नीतिज्ञों एवं

सेनापतियों की हत्या इसलिए की गई थी कि हत्यारा स्वयं नेपाल-राज्य के सुखों, वैभवों एवं लाभों का उपयोग करे।

जिस समय नेपाल के सपूतों का खून बह रहा था, वे अपनी अंतिम आहें तोड़ रहे थे, रानी लक्ष्मीदेवी ने जंगबहादुर को प्रधानमंत्री तथा प्रधानसेनापति बनाकर आज्ञा दी कि युवराज सुरेन्द्रविक्रम को बुलाकर कोट का हत्याकाण्ड दिखाया जाय।

रानी रणेन्द्र को राज्य दिलाना चाहती थी। उसी के लिए षड्यन्त्र रचा गया था। जंगबहादुर रानी की दुर्बलता को जानता था और सुरेन्द्र तथा उपेन्द्र को बचाकर परिस्थिति की कुंजी अपने हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। सुरेन्द्र एवं उपेन्द्र की रक्षा के लिए उसने एक टुकड़ी सेना रख दी और रानी से कह दिया कि सुरेन्द्र को लाने के लिए आदमी भेजा गया है। सभी सामन्तों एवं सरदारों की हत्या के पश्चात् और प्रधानमन्त्रित्व मिल जाने-पर वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि रानी की उपेक्षा कर देना उसके लिए कोई कठिन बात नहीं रह गई थी।

प्रातःकाल होते ही जंगबहादुर रानी के साथ राजेन्द्रविक्रम के पास गया और प्रधानमन्त्री की हैसियत से राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ। राजा ने पूछा कि किसकी आज्ञा से हत्याकांड हुआ? जंगबहादुर ने तुरन्त उत्तर दिया कि रानी की आज्ञा से, जिसे राजा ने राज्य का अधिकार देकर अभिभावक नियुक्त किया था।

राजा ने जंगबहादुर को प्रधानमंत्री नहीं घोषित किया। अनन्तर जंगबहादुर ने स्वयं परेड-मैदान में सेना एकत्रकर अपने-अपको सेनापति एवं प्रधानमन्त्री घोषित किया। जितने लोग मारे

से फिर युद्ध छिड़ेगा तो वह आठ या छः रेजिमेण्टों से अंग्रेजों की सहायता करेगा। जंगवहादुर ने पहले युद्ध में भी अंग्रेजों की सहायता करने की आवाज उठाई थी; जब कि रानी लक्ष्मी-बाई सिखों को सहायता देने का विचार कर रही थी।

पंजाव के रणजीतसिंह की स्त्री महारानी चन्द्रकुँअर प्रथम सिख-युद्ध के पश्चात् चुनार के दुर्ग में नजरबन्द थीं। सन् १८४९ ई० के वसंतऋतु में वह वेष बदलकर नेपाल में भाग गईं। जंग-बहादुर ने उन्हें काठमाण्डू में रहने के लिए स्थान दिया। अंग्रेज कुछ नहीं बोले; क्योंकि काठमाण्डू से भाग निकलना उनके लिए असम्भव था तथा वहाँ रहकर वह किसी प्रकार का षड्यन्त्र सिखों के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं कर सकती थीं।

जंगबहादुर अपने स्वामी; अर्थात् अंग्रेजों के राजा का दर्शन करना चाहता था। क्योंकि विना उस दर्शन के उसके जीवन की मुराद न पूरी होती और न नेपाल की दासता ही ठोस होती। पहले समय में भीमसेन ने मातवरसिंह को इंग्लैण्ड भेजना इस लिए अस्वीकार किया था कि उसे स्वतन्त्र राजाओं के समान सम्मान न मिलता। जंगबहादुर ने अंग्रेजों की सहायता से राज्य तथा शक्ति को प्राप्त किया था, अतएव उसके सम्मुख नेपाल की उन्नति एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं; प्रत्युत अपनी उन्नति, अपने सुख एवं अपने मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न था। इंग्लैण्ड जाकर वह नेपाल की गरीब जनता तथा अपने विरोधियों पर यह धाक जमाना चाहता था कि उसकी पीठ पर बृटिश साम्राज्य की शक्ति है। उस समय की स्थिति में उसके विरुद्ध आवाज उठाने का अर्थ भावी नाश था। जंगबहादुर ने अपने इस निर्णय से नेपाल में

दासता की मनोवृत्ति और गुलामों की झूठी शान की बान उत्पन्न कर दी। सारा नेपाल अंग्रेजों का मुखापेक्षी बन गया। बृटिश-लिगेशन वास्तव में नेपाल का राज्य करता था। केवल नाम के लिए नेपाल की झूठी और थोथी स्वतन्त्रता रह गई। जङ्गबहादुर ने राजा को नेपाल बुलाया; परन्तु राजा रानी के साथ ही नेपाल जाने के लिए उद्यत हुआ। जङ्गबहादुर ने राजा की यह शर्त अस्वीकार कर दी और उसने पत्र में लिखा कि यदि वह नेपाल नहीं लौटेगा तो सुरेन्द्रविक्रम नेपाल के राजा घोषित कर दिए जायँगे।

दो आदमी जङ्गबहादुर को मारने के लिए काशी से नेपाल भेजे गए। उनके पास राजाज्ञा भी थी कि जङ्गबहादुर को मार डाला जाय और कोई मारनेवालों के कामों में अड़ंगा न लगाए। परन्तु दोनों ही पकड़ लिए गए और उनके पास से उक्त राजाज्ञा भी मिली।

जङ्गबहादुर ने दूसरे दिन सेना को एकत्र किया और उक्त पत्र पढ़कर सुनाया गया। राजेन्द्र सिंहासनच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर सुरेन्द्र के राज्याधिकारी होने की घोषणा हुई। राजेन्द्र के पास पत्र लिखकर भेज दिया गया कि वह सिंहासनच्युत कर दिए गए हैं और उनपर भीमसेन थापा की हत्या का भी दोष लगाया गया है।

रानी ने अब नेपाल पर आक्रमण करने की व्यवस्था सोची। सेना की एक छोटी टुकड़ी ने तराई पर हमला किया। अलाऊ में सनकसिंह ने चार रेजिमेंटों के साथ राजा की सेना पर आक्रमण किया। राजा राजेन्द्र जब हाथी पर भागने का प्रयत्न कर

रहा था तो उसी समय वह कैद कर लिया गया।

राजेन्द्र बन्द पालकी में काठमाण्डू लाया गया और भक्तपुर (या नगर) के पुराने दरबार में नजरबन्द कर दिया गया। राजा का षड्यन्त्र वहाँ भी चलता रहा। जंगबहादुर ने राजा को वहाँ से निकालकर काठमाण्डू के पुराने किले में अपने विश्वासपात्र अधिकारियों की संरक्षता में कैद कर दिया। राजा जब बाहर निकलता था तो उसे सभी सम्मान राजा के समान दिया जाता था। फल यह हुआ कि काठमाण्डू में राजेन्द्र और सुरेन्द्र दो राजाओं की उपस्थिति के कारण किसी की शक्ति नहीं जम पाई। दोनों ही कैद में थे। दोनों पर खुफिया लगी रहती थी। दोनों से कोई भेंट नहीं कर पाता था।

सन् १८५० ई० में जंगबहादुर ने इंग्लैण्ड की यात्रा की। बामबहादुर प्रधानमन्त्री, बदरी नरसिंह सेनापति, कृष्णबहादुर मुल्की हकूमतकार और रणोदीप पूर्वी तथा पश्चिमी नेपाल का शासनकर्त्ता बनाया गया। इस प्रकार जंगबहादुर ने अपने भाइयों को ही सब मुख्य स्थान दिए; क्योंकि उसका विश्वास अन्य किसी व्यक्ति पर न था। उसी परम्परा का अब तक राणावंश पालन करता चला आ रहा है और आज भी सभी स्थानों पर राणा लोग ही नियुक्त किए जाते हैं। पुरी, द्वारका, रामेश्वर एवं काशी होता हुआ वह पुनः लौट आया।

बामबहादुर और बदरीनरसिंह ने जंगबहादुर को मारने के लिए षड्यन्त्र किया। निश्चय हुआ कि राजा सुरेन्द्र को मारकर उपेन्द्र राजा बनेगा। जंगबहादुर जब बसन्तपुर-दरबार जायगा उस समय मार डाला जायगा और राजा उपेन्द्र बाम-

बहादुर को प्रधानमन्त्री तथा बदरीनरसिंह को सेनापति, जयबहादुर तथा काजी करवीर खत्री को कमांडिंग जनरल बनाएगा। वामबहादुर ने षड्यन्त्र की यह बात स्वयं जंगबहादुर से कह दी और कर्नल जगत शमशेर ने जयबहादुर को, रणमेहर अधिकारी ने बदरीनरसिंह को और रणोदी ने उपेन्द्र को गिरफ्तार किया। कोर्ट में सब कैदी उपस्थित किए गए और वहाँ से इलाहाबाद के लिए निर्वासित कर दिए गए। अंग्रेजों ने उनकी जिम्मेदारी ली। १८५३ ई० में जयबहादुर का देहान्त हो गया और उपेन्द्र तथा बदरीनरसिंह पुनः नेपाल बुला लिए गए। जंगबहादुर ने सन् १८५३ ई० में गुप्तप्रसद की बहिन से व्याह किया। अपने ज्येष्ठ पुत्र जगतजंग का विवाह राजा की ज्येष्ठ कन्या से और दूसरे पुत्र जीतजंग का व्याह राजा की दूसरी कन्या से किया।

तिब्बत और नेपाल से सन् १८५४ ई० में युद्ध-घोषणा हुई। जनरल धीरशमशेर के सेनापतित्व में पहली टुकड़ी कुटीदर्रे के लिए रवाना की गई। वामबहादुर ने दूसरी टुकड़ी के साथ किराग पर कब्जा कर लिया। जगतशमशेर ने झंग पर अधिकार किया। कुछ ही दिनों के पश्चात् तिब्बतियों ने गुरखों को पराजितकर कुठी, झंग और किराग ले लिए। धीरशमशेर ने कुठी पुनः जीतकर १० मील तक तिब्बत में प्रवेशकर सुनागुम्पा पर अधिकार किया। नेपालियों में तथा उनकी सेना में वह शक्ति तथा जीवन नहीं रह गया था जो भीमसेन थापा के समय में था। नेपाली सेना रुपये की सेना रह गई थी; क्योंकि जंगबहादुर ने नेपाल की राजनीति को व्यक्तिगत वस्तु बना डाला था। जनता का सीधा सम्बन्ध कुछ भी राज्य से न रह गया था। अन्त

में २४ मार्च सन् १८५६ ई० को थापथाती में सन्धि हो गई ।

चार मास के पश्चात् जंगबहादुर ने प्रधानमंत्रित्व से इस्तीफा दे दिया और वामबहादुर प्रधानमंत्री हुआ। कास्की और लामगंज का इलाका प्रधानमन्त्रियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई। नियम बनाया गया कि जो प्रधानमंत्री होगा, उसे वहाँ की आमदनी मिलेगी और उत्तराधिकार प्रधानमंत्रित्व के हिसाब से चलेगा। अंग्रेजों ने जंगबहादुर के अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया और वामबहादुर को प्रधान-मंत्री समझने लगे। जंगबहादुर परेशान हो गया। उसके भाग्य से सन् १८५७ ई० में वामबहादुर का देहान्त हो गया और वह पुनः प्रधानमंत्री बन गया।

भारतीय राज-विद्रोह आरम्भ हुआ। नानासाहब, बहादुर-शाह, तात्या टोपे तथा अन्य लोग अंग्रेजों को भारत से निकालने पर तुल गए। मेरठ से आग भड़ककर सारे हिन्दुस्तान में फैल गई। एक राजभक्त पराधीन राजा के समान जंगबहादुर ने अंग्रेजों को नेपाल-राज्य से पूरी सहायता देने के लिए लिखा।

तीन हजार गुरखा-सेना लखनऊ में अंग्रेजों की सहायता के लिए रवाना की गई। गुरखा-फौज अपने हिन्दुस्तानी भाइयों को काटकर अंगेजी हकूमत की उखड़ती हुई जड़ को मजबूत करने लगी। अवध, आजमगढ़, जौनपुर, चन्दा और सोनपुरमें देश-भक्त सेना का नाश जङ्गबहादुर ने आरम्भ कर दिया।

लार्ड कैनिंग ने पुनः आज्ञा दी और नेपाली सेना तथा नेपाल से आई हुई सेना ने गोरखपुर विजय किया। जङ्गबहादुर ने स्वयं लखनऊ के आलमबाग और बेगमकोठी में देशभक्तों को

गोलियों का शिकार बनाया। छतरमंजिल, मोतीमहल और अन्त में कैसरबाग से। देशभक्तों को हटाकर अंग्रेजी झण्डा गाड़ा गया। मूसाबाग में खून की नदी बहाकर अंग्रेजी हुकूमत की नींव खूब जमा दी गई। २३ मार्च १८५७ ई० में लार्डकैनिंग की सेवा में जङ्गबहादुर उपस्थित हुआ और भारत के देशभक्तों का खून करने के बदले में तराई का वह भाग, सन् १८१५ ई० में जो अंग्रेजों ने ले लिया था, पुनः नेपाल को वापस कर दिया गया। अवध तथा अन्य स्थानों में खूब दौलत लूटी गई, जिससे राणा लोगों का प्रासाद धन से भर गया। अवध के नवाब के लड़के और बेगम हजरतमहल नेपाल में भागकर गईं और उन्हें थापथाली के समीप रहने के लिए स्थान दिया गया।

नानासाहब को सन्-१८५७ ई० में १६ जुलाई को अंग्रेजों के दबाव के कारण बिठूर से हटना पड़ा। तात्या टोपे कालपी की ओर चले गए और नानासाहब अपनी १३ वर्षीया धर्मपत्नी काशीबाई और बाजीराव की स्त्री के साथ नेपाल की ओर चल पड़े। नानासाहब माधोराव भाउभट्ट के द्वितीय पुत्र थे। बाजीराव पूना के अन्तिम पेशवा थे और अंग्रेजों द्वारा परास्त होने पर बिठूर में रहते थे। अंग्रेजों की ओर से उन्हें पेंशन मिलती थी। उन्होंने नानासाहब को दत्तकपुत्र बनाया था। बाजीराव की मृत्यु सन् १८५१ ई० में हो गई। नानासाहब ने अजीमुल्ला खाँ को बिलायत भेजा कि उसे भी पिता की पेंशन मिलनी चाहिए; परन्तु कम्पनी ने माँग अस्वीकार कर दी।

काशीबाई रामचंद्र सखाराम कर्मकर की कन्या थी। उसका घर का नाम सुन्दरबाई तथा काशीबाई और कृष्णबाई भी था।

काकूबाई भी उसे लोग कहते थे। भागने के समय नानासाहब के साथ उनका भाई बालाराव, बाबा गोडबोले, जन्नूसिंह और परशुराम जगमल, नौकर आदि थे। नेपाल की तराई में जंगबहादुर ने उनसे मिलने के लिए जनरल केदार नरसिंह को भेजा। वे लोग देवनदरी में, जिसे देवनगढ़ गाँव भी कहते हैं, त्रिवेणीघाट के समीप ठहराए गए। नानासाहब की स्थिति इस समय अत्यन्त दयनीय थी। जंगबहादुर अंग्रेजों की मदद कर रहा था और उसी की सहायता की उसे अपेक्षा थी। काशीबाई तथा अन्य स्त्रियों को वह भारतवर्ष में कहीं रख नहीं सकते थे; क्योंकि अंग्रेजों के पंजे में सारा भारतवर्ष आ गया था। जङ्गबहादुर ने नानासाहब को शरण देने से अस्वीकार कर दिया; परन्तु स्त्रियों को नेपाल में रखने तथा उनकी रक्षा करने की जिम्मेदारी ली। नानासाहब जङ्गबहादुर का सुझाव मानने के लिए बाध्य थे। अतएव नानासाहब और तात्याटोपे छोटा अतीत वेष धारणकर जङ्गलों में चले गए।

नानासाहब के पास पेशवा के समस्त जवाहिरात थे। उनमें पेशवा के पहनने का नौलखा हार भी था। जङ्गबहादुर स्त्रियों को इसलिये रखना चाहता था कि पेशवा की समस्त सम्पत्ति उसे मिल जाय। जङ्गबहादुर ने धनगरा और दहरिया नामक दो गाँवों की जमीन्दारी काशीबाई को देकर नौलखा हार ले लिया। संसार का यह अनुपम रत्न अभी नेपाल में मौजूद है। प्रधानमंत्री के ताज का तीन इंच लम्बा पन्ना भी काशीबाई से जङ्गबहादुर ने लिया था। मुकुट के प्रायः सभी

रत्न काशीबाई से किसी-न-किसी प्रकार प्राप्त किए गए हैं।

पेशवा का प्रमुख रत्न-भाण्डार नानासाहब के पास था। बिठूर से भागने के पश्चात् वही उनकी एकमात्र सम्पत्ति थी। संसार-प्रसिद्ध नौलखा हार जङ्गबहादुर ने ९३००० रुपये में काशीबाई से लेने के लिए उसे बाध्य किया। रुपया नहीं दिया गया; बल्कि रुपयों के बदले में धनगरा और दहरिया नामक दो गाँव दिए गए, जिनकी वार्षिक बचत ६ और ७ हजार थी। इसके अतिरिक्त चार सौ रुपया मासिक पेंशन की तौर पर दिया जाता था। ३ इञ्च लम्बा पन्ना दूसरा रत्न था। वह वहाँ के प्रधानमन्त्री के मुकुट का प्रधान रत्न है। मणि के चारों ओर अन्य जितने रत्न जड़े हैं, वे सब नानासाहब के कोष-भाण्डार के ही हैं। महाराज दरभङ्गा के पास नानासाहब की एक अँगूठी है। उसपर ३/४ इञ्च लम्बा तथा १/२ इञ्च चौड़ा हीरा बीच में जड़ा है। सिद्धमानसिंह ने नानासाहब के जवाहिरातों का जो वर्णन उनके नेपाल में प्रवेश के समय दिया था, उसमें ४८ दाने की मोती की एक माला भी थी। मोतियों के बीच में २४ पन्ने लगे थे। एक आभूषण अण्डाकार था जिसकी लम्बाई ३ इंच और चौड़ाई २ इंच थी और इसके मध्य का हीरा ५/८ इञ्च लम्बा और १/२ इञ्च चौड़ा था। इसके चारों ओर हीरे जड़े थे। एक भुजबंद था जो २½ इञ्च लम्बा और २ इञ्च चौड़ा था, जिसके बीच में एक बहुत बड़ा हीरा और चारों ओर ३१ हीरे जड़े थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से जवाहिरात थे, जिनमें से बहुत से तो सिद्धमान-सिंह अथवा जङ्गबहादुर को इसलिए घूस की तरह पर दिए

गए थे कि काशीबाई की जान बचाई जाय।

जून सन् १८५९ ई० में सरदार सिद्धमानसिंह ने तराई के दंग और तारा स्थान से लिखा कि नाना के भाई बालाराव अपनी स्त्रियाँ जङ्गबहादुर के संरक्षण में रखना चाहते हैं। नानासाहब भी उस समय साथ ही थे। जङ्गबहादुर ने उत्तर दिया कि नानासाहब तथा बालाराव को स्थान नहीं दिया जा सकता तथा स्त्रियाँ नेपाल में रक्षा पा सकती हैं। इसी समय बालाराव का देहान्त हो गया। अक्टूबर सन् १८५९ ई० में नानासाहब और बालाराव की माता सिद्धमानसिंह के पास आईं और बोलीं कि वह जङ्गबहादुर से मुलाकात करना चाहती हैं। उनका कहना था कि स्त्रियों को बुखार आ रहा है, अतएव किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाना चाहती हैं। उन्होंने यह भी कहा कि नानासाहब का देवकारी में देहावसान हो गया। अपने पुत्र की क्रिया देवकारी में वह नहीं कर सकीं, अतएव सिद्धमानसिंह की उपस्थिति में करना चाहती हैं। उसने श्वेत वस्त्र, पुरोहित, श्राद्ध-पुस्तक आदि की सुविधा पाने की इच्छा भी प्रकट की। अपने जवाहिरात बदले में बेचना भी स्वीकार किया। कुल जवाहिरातों का दाम १० हजार रुपया यह कहकर लगाया गया कि महाजन इससे ज्यादा नहीं देगा। पहले तो माँ ने अस्वीकार किया; किन्तु बाद में उसे बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ा। खरीदनेवाला स्वयं जंगबहादुर था। जवाहिरात इतने अच्छे और कीमती थे कि उन्हें काठमाण्डू भेजने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया। अंग्रेज नानासाहब को पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। उन्हें मालूम

हो गया था कि नानासाहब तथा बालाजी नेपाल में हैं। जंग-बहादुर ने लिख भेजा कि उनका देहान्त हो चुका है और उनकी माँ ने उनकी अस्थि काशी में प्रवाह करने के लिए भेजी है।

नानासाहब की मृत्यु के सम्बन्ध में इंडियाआफिस में यह पहला कागज नेपाल के दूत कर्नल रामसे का ८ अक्टूबर सन् १८५९ ई० का है। उसने सरकार को लिखा था कि २४ सितम्बर सन् १८५९ ई० को जंगबहादुर ने सिद्धमानसिंह का पत्र पाया, जिसमें नानासाहब की मृत्यु का समाचार है। सिद्ध-मानसिंह को समाचार नानासाहब के कुटुम्ब की किसी स्त्री ने भेजा था। लार्ड कैनिंग को १७ मई सन् १८६० ई० को इंडिया-आफिस से पत्र मिला कि उन लोगों का ठीक पता लगाया जाय। कैनिंग ने नानासाहब और दिसम्बर सन् १८५९ ई० में अजीमुल्ला खाँ का बुटवल में हुए देहान्त के समाचार की पुष्टि चाही; परन्तु जंगबहादुर ने कोई उत्सुकता इस ओर न दिखाई। २२ जुलाई सन् १८६१ ई० को नेपाली बृटिश राजदूत रामसे ने लिखा कि यदि नानासाहब जीवित हैं तो उसका भेद केवल जंगबहादुर ही जानता है। अंग्रेजी सरकार के जोर देने पर जंगबहादुर ने यह शर्त रखी कि नेपाल में अंग्रेज खोज कर लें और यदि नानासाहब नहीं मिलेंगे तो अवध के उत्तरी तराई का समस्त देश, जो आरा नदी और भुगोरा ताल के बीच में पड़ता है, नेपाल को दे देना होगा। अंग्रेजों ने यह शर्त स्वीकार न की थी।

रामसे ने भारत-सरकार को इसी समय लिखा था कि बुट-वल में जंगबहादुर ने नानासाहब के किसी कुटुम्बी के हाथ कुछ

गाँव बेचे हैं। दिल्ली से एक जौहरी भी बुलाया गया था, जिसने नानासाहब तथा अवध की बेगम जीनत महल के जवाहिरातों का दाम लगाया था। नेपाल में जंगबहादुर ने आज्ञा निकाली थी कि कोई भी नानासाहब तथा बेगम के जवाहिरात नहीं खरीद सकता। फल यह हुआ कि जंगबहादुर ने परिस्थितियों से लाभ उठाकर पानी के मोल येनकेन प्रकारेण कुल जवाहिरातों को ले लिया और घोषित यह किया कि नानासाहब का कुटुम्ब इतनी गिरी दशा में है कि तीन सौ रुपये मासिक सहायता नेपाल-राज्य से की जाती है।

काठमाण्डू में इसी समय एक फकीर ने आकर कहा कि मुक्तिनाथ में दो प्रतिष्ठित व्यक्ति रहते थे। जब राजदूत रामसे यह पत्र लिख रहा था, उसी समय जंगबहादुर का पत्र मिला कि नानासाहब का कुटुम्ब लाहोर की रानी का मकान २० हजार रुपये में खरीदना चाहता है। एक फकीर ने फिर खबर दी कि बालाजी के देहान्त के पश्चात् वह स्वयं नानासाहब के डेरे में रह चुका है। उसने कहा कि बुटवल में जंगबहादुर ने जब सब पगड़ीवाले तथा बाघी को बुलाया तो नानासाहब नहीं गए और बोले कि जंगबहादुर ने उनका सब धन ले लिया है और अब उसे धोखे से मार डालना चाहता है। नानासाहब उस समय कुछ पगड़ीवालों के साथ पहाड़ पर चले गए। एक पंजाबी फकीर ने जो उत्तरी भारत से पर्वत के मार्ग से काठमाण्डू आया था, कहा कि उसने मुक्तिनाथ के मार्ग में नानासाहब और उनके साथियों को देखा तथा उनके साथ रहा है। नानासाहब से उसने बातचीत भी की है। वह स्थान लामजंग राज में कुंदी-

खोला गाँव में था। उनके साथ तीन-चार सौ आदमी थे और चारों ओर पहरा देनेवाले सन्तरी थे, जो अनजान व्यक्तियों को पास नहीं आने देते थे। इसी प्रकार तीसरे फकीर ने समाचार दिया था कि दून गाँव में एक मराठा राजा से वह मिला था। तीन-चार सौ सिपाही फकीरों के वेष में उसके साथ रहते थे। उस राजा का केश बढ़ा था। दिन का तीन-चौथाई भाग उसकी पूजा में व्यतीत होता था। उसके बरतन सोने और चाँदी के थे। वह बहुत दान भी करता था। कम्पनी का रुपया खूब बाँटता था। तीन तोपें भी उनके पास थीं। उसने यह भी बताया कि नानासाहब के सिपाहियों से उसकी बातचीत हुई थी, जिससे उसको मालूम हुआ कि नानासाहब को सहायता का वचन देकर जंगबहादुर ने नेपाल में बुलाया है। वहाँ आने पर उसने उसका सब धन लूट लिया और धोखा दिया। उनकी रानियों को उनसे छीनकर अलग कर दिया। उनका सम्बन्ध भारतीय राजाओं से चलता रहता है। इसके कुछ समय पश्चात् एक अन्य फकीर ने आकर कहा कि मुक्तिनाथ एवं कमायूँ के बीच में नाना तथा उनके सिपाहियों से उसकी भेंट हुई थी। नानासाहब पवित्र व्यक्ति हैं। वह भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति और बड़े दानी हैं। अंग्रेज-सरकार ने उन्हें पकड़ने के लिए एक लाख रुपये इनाम की घोषणा की है, अतएव वे लोग सावधानी से रहते हैं।

नानासाहब की मृत्यु के विषय में थारू लोग ही मुख्य गवाह माने जा सकते हैं, जहाँ उनकी मृत्यु हुई थी। थारू लोगों का कहना है कि एक व्यक्ति की लाश अवश्य फूँकी गई

थी । वह व्यक्ति बीमार भी था और यह भी कहा गया था कि लाश नानासाहब की थी । किन्तु दाह-क्रिया इतने साधारण ढंग से हुई थी कि लोगों को सन्देह उत्पन्न हो गया था । सम्भव हो सकता है कि नानासाहब की मृत्यु घोषित करने के लिए किसी व्यक्ति की लाश फूँक दी गई हो ।

रामसिंह और लालसिंह दो खुफियावालों को भारत-सरकार ने नानासाहब की खोज के लिए नेपाल भेजा । लालसिंह ने रिपोर्ट दी कि जंगबहादुर नानासाहब की स्त्री काशीबाई के यहाँ हर तीसरे तथा चौथे दिन जाता है और उसके साथ अपनी स्त्री जैसा व्यवहार करता है । इसलिए सभी विश्वास करते हैं कि नानासाहब की मृत्यु हो गई । जंगबहादुर ने बालाजी तथा नानासाहब की विधवाओं के आभूषण अपने पुत्र के विवाह के समय मँगनी माँगा था; परन्तु फिर लौटाया नहीं । उसने यह भी लिखा कि गणेश और बाबा जो रानी के पास नानासाहब की मृत्यु का समाचार लाए थे, अभी रहते हैं । जंगबहादुर ने रानी काशीबाई के यहाँ की पाँच नौकरानियों को अपने यहाँ मँगवाकर उसके यहाँ पुरानी नौकरानियाँ भेज दी हैं । रामसिंह ने लिखा था कि नाना की मृत्यु के पश्चात् गरीबों को भोजन कराया गया था । यदि नानासाहब मर न गए होते तो उनकी रानी तथा उनका जेवर दूसरा कैसे ले लेता ?

थापथाली के पास एक मकान में बागमती नदी के तट पर काशीबाई आदि रहती थीं । यह महल जंगबहादुर के महल के ठीक बगल में था । प्रति वर्ष काशीबाई एक बार ब्राह्मणों तथा साधुओं को भोजन कराती थीं और उस दिन परोसने के समय

स्वयं बाहर निकलती थीं। कहा जाता है कि इसी दिन नाना-साहब के साथियों से और यदि नानासाहब जीवित थे तो उनसे बातें करने का उन्हें मौका मिलता था। काठमाण्डू में आने के चार वर्षों के पश्चात् काशीबाई ने अपने पिता सखाराम को नेपाल बुलाया। सन् १८६६ ई० में श्री सखारामजी नेपाल गए। वहाँ उन्होंने काशीबाई के मस्तक पर सिन्दूर, कलाइयों में चूड़ियाँ तथा आँखों में काजल लगा देखा, जब कि बालागाव की विधवा का रूप बिल्कुल हिन्दू-विधवा के समान था। नानासाहब का मंत्री अजीमुल्ला खाँ भी सखारामजी के साथ नेपाल गया था। उसने लौटने पर चौकीदार गणेश से कहा था कि नानासाहब अभी जीवित हैं तथा जंगबहादुर की जान में नेपाल में हैं। नानासाहब के यहाँ नौकर नानासाहब की चारपाई लगाते हैं तथा उनकी चाँदी की कुर्सी की पूजा करते हैं। अवध की बेगम से, जो काशीबाई के पास ही महल में रहती थी, बराबर सुना जाता था कि नानासाहब रूस की मदद से नेपाल पर चढ़ाई करके पुनः राज्य प्राप्त करेंगे। सन् १८६४ ई० में खबर उड़ी कि दीवान गोरी आसाम के मोर्चे पर नानासाहब टोनासा पेनलोप की भूटानी फौज के साथ मौजूद थे। सन् १८७० ई० में बुटवल के गवर्नर ने, जिसके क्षेत्र में नानासाहब का मरना कहा जाता है, कहा था कि नानासाहब जीवित हैं और उसने उन्हें देखा है। सन् १८९५ ई० में मालूम हुआ कि ५ मार्च को शिवरात्रि के दिन नानासाहब प्रति वर्ष के समान काठमाण्डू में अतीतों के साथ आकर भोजन करेंगे और रानी का प्रबन्ध कर देने पर पश्चिम की ओर जायँगे। प्रयाग के कुम्भमेला में नानासाहब

अतीत के वेष में आते थे। सन् १८८५ ई० में गोरक्षा-सभा के सभापति ने कहा था कि नानासाहब ने कुम्भमेला में उनके साथ भोजन किया था। एक किस्सा और कहा जाता है कि जब उनकी अवस्था ६० और ७० वर्ष के बीच की थी तब पुलियापामी नामक एक व्यक्ति ने नानासाहब को मार दिया था। अन्तिम कहानी नानासाहब के सम्बन्ध में यह मालूम हुई कि राजकोट से ३० मील की दूरी पर एक व्यक्ति को पुलिस ने गिरफ्तार किया था जो अपने को नानासाहब कहता था और कहता था कि जंगबहादुर उसका रक्षक है। वह व्यक्ति आधा पागल मालूम होता था। नींद में वह अपने को पेशवा कहता था। पुलिस ने शिनाख्त के लिए कागजात मँगाए, जिनमें बहुत से निशान नाना के शरीर से मिलते थे। कलकत्ता को तार दिया गया; परन्तु वहाँ से खबर आई कि गिरफ्तार व्यक्ति तुरन्त रिहा कर दिया जाय। नानासाहब को पुलिस ने रास्ते के लड़कों से रक्षा करने के लिए पकड़ा था, जो उसे चिढ़ाते और तंग करते थे। नानासाहब का अन्त कैसे हुआ अब तक यह रहस्यमय है।

जंगबहादुर की मृत्यु के समय बड़ा भाई बदरीनरसिंह जीवित था; किन्तु उत्तराधिकार से वह वंचित था। अतएव पाँचवें भाई रणोदीपसिंह तीन सरकार हुए। जंगबहादुर की मृत्यु होते ही राज्यप्रासाद सैनिकों से घेर दिया गया। राजा से अपने नाम प्रधानमन्त्रित्व का अधिकार प्राप्त कर लेने के पश्चात् जंगबहादुर की मृत्यु का समाचार उसके पुत्रों तथा अन्य लोगों को दिया गया। जंगबहादुर का शव, दाहकर्म के लिए आवश्यक आज्ञा आदि धीरशमशेर के द्वारा पथरघट्टा पर भेज दिया

गया। रानी को सती होने की भी आज्ञा दे दी गई।

रणोदीपसिंह सन्तानहीन थे। अतएव उनका सब कारबार छोटे भाई के ऊपर निर्भर था। १८८० ई० में रणोदीप ने लगभग ४०० भृत्यों के साथ भारतवर्ष में तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया। राजा त्रिलोकविक्रम की जेठा महारानी षड्यन्त्र रच रही थी। रणोदीप की दूसरी रानी स्वयं रणोदीप के विरोधी षड्यन्त्र में सम्मिलित थी। जेठा महारानी जगतजंग की बहिन और जंगबहादुर की कन्या थी। रणोदीप के तीर्थयात्रा से लौटकर आते ही राजा सुरेन्द्र का देहान्त हो गया। राजा राजेन्द्र अपने पुत्र के स्थान पर स्वयं राजा होना चाहता था; परन्तु समस्या उसकी मृत्यु के कारण आप-से-आप हल हो गई और १८८१ ई० में ६ वर्षीय राजा पृथ्वीवीरविक्रम शाह राज्य-सिंहासन पर बैठाया गया।

जंगबहादुर के पुत्र जगतजंग ने कासकी और लामजंग इलाकों के लिए अधिकार प्रदर्शित किया। षड्यन्त्र होने लगा। निश्चय हुआ कि महाराज रणोदीप तथा धीरशमशेर की हत्या की जाय। जेठा महारानी भी षड्यन्त्र में सम्मिलित की गई कि सिंहासन पर उसकी कन्या को बैठाया जायगा। षड्यन्त्र था कि त्रैलोक्यविक्रम के भाई नरेन्द्र को राजा बनाया जायगा। राणा लोगों का कुल वंश जगतजंग के अलावा खत्म कर दिया जायगा। ६ जनवरी सन् १८८२ हत्या के लिए निश्चय किया गया; किन्तु गगनसिंह के पोते ने धीरशमशेर से कुल भेद खोल दिया। षड्यन्त्रकारी गिरफ्तार किए गए और राज्य के २१ सामन्त लोगों को मार डाला गया। राजा नरेन्द्र तथा बोम्बीर-

विक्रम चुनारगढ़ भेज दिए गए और जगतजंग, पद्मजंग एवं बोम्बीरविक्रम का नाम उत्तराधिकार से निकाल दिया गया। पद्मजंग को राजा की बहिन के कारण उत्तराधिकार का अधिकार पुनः प्राप्त हो गया। १८८५ ई० में अफगानिस्तान के साथ युद्ध होने की अफवाह उड़ी। रणोदीप ने लार्ड डफरिन को पूरा विश्वास दिलाया कि युद्ध में नेपाली अंग्रेजों की सहायता करेंगे। धीरशमशेर की मृत्यु हो गई और रणोदीप ने अपना सच्चा हितैषी खो दिया।

रणोदीप ने जगतजंग को नेपाल में प्रवेश की आज्ञा दे दी। वीरशमेशर अपने पिता धीरशमशेर के स्थान पर प्रधान सेनापति हुए। नरसिंह के पुत्र लोग जगतजंग के सहयोगी इस आशा में हो गए कि षड्यन्त्र सफल होने पर उन्हें भी उत्तराधिकार का अधिकार मिलेगा। वीर के सगे भाई खड्ग, देव, चन्द्र, भीम, फतेह, ललित, जीत और युद्ध ने समझ लिया कि जगत-जंग के रहने का अर्थ उनका नाश होगा। २२ नवम्बर १८८५ ई० को वीर तथा उनके भाई खड्गशमशेर, चन्द्रशमशेर एवं भीमशमशेर, अपने सन्ततिहीन चाचा को मारकर राज्य अपने हाथों में करने की तैयारी कर, रणोदीप के प्रासाद में गए।

रणोदीप छाती के बल तकिया पर सोए 'राम-राम' जप रहे थे। बाईं ओर महारानी तथा तीन अन्य स्त्रियाँ बैठी थीं। महिला बाबू वहीं थे। दो दासियाँ पैरों में तेल लगा रही थीं। चौतरिया बाबू ने दरवाजा खटखटया कि खड्ग शमशेर एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से मिलना चाहते हैं। रणोदीप ने दरवाजा खोलने लिए कहा। ज्यों ही किवाड़ खुला डम्बर शम-

शेर, खड्ग, चन्द्र, रण एवं भीम ने कमरे में प्रवेश किया। अपने दाहिने घुटने पर टेकते हुए डम्बर ने रायफल निकाला। उसने कहा कि यह नये ढंग की रायफल है और रणोदीप को गोलियों से छेद दिया। खड्ग शमशेर ने भी गोली चलाई कि शायद रणोदीप मरे न हों। उनके बाद सभी भाइयों ने गोलियाँ चलाईं। चन्द्र शमशेर ने महारानी को भी मार डालने के लिए ललकारा; लेकिन किसी ने शायद ध्यान नहीं दिया।

रणोदीप की हत्या होते ही जगतजंग तथा युद्धप्रतापजंग की भी हत्या की गई। वीर शमशेर प्रधानमंत्री हुए; परन्तु १६ मास के पश्चात् ही मालूम हुआ कि उसका सगा भाई खड्गशमशेर उसकी हत्या कर स्वयं प्रधानमंत्री बनना चाहता है। १८८७ ई० में अपने मामा केशरसिंह तथा रानी की बहिन कंचामैया के साथ षड्यन्त्र का बीजारोपण किया। षड्यन्त्र का पता लग गया। केशर सल्याना में नजरबन्द कर दिया गया। कंचामैया पूर्वी नेपाल के एक पर्वतीय प्रदेश में निर्वासित कर दी गईं। खड्गबहादुर सेनापतित्व से हटाकर पालपा का गवर्नर बनाकर राजधानी से दूर किया गया। वीर शमशेर ने अपने विरोधियों की सम्पत्ति जब्त कर ली तथा उन्हें नेपाल से निर्वासित किया।

जंगबहादुर के पुत्र रणवीरजंग ने १८८८ ई० में तराई पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। बुटवल के समीप वह पराजित किया गया तथा अपने भतीजे जीतजंग को राजविद्रोह करने के लिए पालपा में उभाड़ा। जीतजंग का षड्यन्त्र मालूम हो गया। लगभग ५२ या ५३ आदमियों को काठमाण्डू में प्राणदण्ड की

सजा दी गई। ब्राह्मणों को या तो आजन्म कालापानी या जाति-च्युत कर दिया गया। ५ मार्च १९०१ ई० में वीरशमशेर को मृत्यु हो गई।

वीरशमशेर की मृत्यु के पश्चात् देवशमशेर प्रधानमंत्री हुए। देवशमशेर उदार विचारों का व्यक्ति था। शिक्षा-प्रसार की ओर उसका विशेष ध्यान था। शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को जापान भेजा। राज्य में स्कूल और पाठशालाएँ खुलवाना आरम्भ किया। नेपाल में पार्लियामेंट स्थापित करने की भी योजना करने लगा। अंग्रेज और राणा दोनों सतर्क हो गए। देव और चन्द्र सगे भाई थे। चन्द्र ने राणाओं के साथ षड्यन्त्र किया। २६ जून १९०१ ई० को देवशमशेर को वीरशमशेर के प्रासाद में कुटुम्बी झगड़ा निपटाने के लिए बुलाया गया। प्रासाद के अन्दर आते ही उसके भाइयों ने राजा के सम्मुख ही इस्तीफा देने के लिए जोर दिया। उसे रस्सी से बाँध दिया गया। देवशमशेर सीधा आदमी था। अपने भाइयों के इस चरित्र पर वह रोने लगा। किन्तु राज्य एवं शक्ति की ममता के सम्मुख मानवीय मृदुल भावनाएँ दबकर मानव को पशु-तुल्य बना देती हैं। देव धनकुटा में नजरबन्द कर दिया गया। वहाँ से उसे भारतवर्ष में आने की अनुमति मिल गई। वह मंसूरी में रहने लगा। सेना को जब मालूम हुआ तो सेना बिगड़ गई। चन्द्र को प्रधानमन्त्री मानने से इन्कार किया। देव के सुधारों के सुझाव से महाराजा को भयभीत कर महाराजा के द्वारा सेना शान्त की गई। उसके स्थान पर चन्द्रशमशेर प्रधानमंत्री हुआ। चन्द्रशमशेर १९०३ ई० में जब राज्य-दरबार में आए तो देव ने उन्हें मार डालने का

प्रयत्न किया। षड्यन्त्र विफल हुआ और देव काशी में नजरबन्द कर दिए गए। १९११ ई० में पृथ्वीवीरविक्रम शाह की मृत्यु हुई और उसका ९ वर्ष का पुत्र त्रिभुवनवीरविक्रम गद्दी पर बैठा। २० फरवरी १९१४ ई० को देव का देहान्त हो गया।

खड्गशमशेर ने चन्द्रशमशेर के विरुद्ध षड्यन्त्र आरम्भ किया। चन्द्र कूटनीतिज्ञ एवं चतुर शासक था। उसने खड्ग की सबुज सेना को सिमरावासा भेजने की आज्ञा दी। खड्ग नेपाल छोड़कर भागा और २२ दिसम्बर १९२१ ई० को काशी में अपनी इह-लीला समाप्त की।

राजा पृथ्वीवीरविक्रम शाह की मृत्यु के पश्चात् २० फरवरी १९१३ ई० में त्रिभुवनवीरविक्रम शाह नेपाल के राज्य-सिंहासन पर बैठे। प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। चन्द्रशमशेर ने अंग्रेजों की खूब सहायता की। १९१९ ई० में अफगास्तिान के अमीर अमानुल्लाखाँ से कुछ भय उत्पन्न हुआ। भारतवर्ष में राष्ट्रिय आन्दोलन ने भी इसी समय जोर पकड़ लिया था। चन्द्रशमशेर ने गुरखा फौज तुरन्त अमानुल्ला से लड़ने के लिए आजकल के प्रधानमंत्री पद्मशमशेर के सेनापतित्व में भेजा। बबरशमशेर भी साथ थे। अफगानिस्तान की लड़ाई कुछ ही दिन चली और गुरखा फौज लौट आई।

चन्द्रशमशेर के समय नेपाल की कुछ उन्नति हुई ; लेकिन नेपाल राजनीतिक दृष्टि से भारत के किसी रियासत से अधिक महत्व नहीं पा सका। भारतवर्ष में लोग नेपाल को रियासत ही समझते थे। जंगबहादुर ने जो नीति अंग्रेज-परस्ती की चलाई

थी, उसे चन्द्र ने पूरी की। नेपाल की फौज, शक्ति आदि बृटिश मुखापेक्षी रहती थी।

चन्द्रशमशेर की मृत्यु के पश्चात् १९२९ ई० में भीमशमशेर धानमंत्री हुए। भीमशमशेर ने सन् १९३२ तक शासन किया। भीमशमशेर सुधारवादी थे और सुधार करना चाहते थे। नेपाल का वातावरण आरम्भ ही से कौटुम्बिक षड्यन्त्रों के कारण इतना दूषित था कि वृद्ध भीम के लिए सुधार करना सरल कार्य न था। भीम के पौत्र वसन्तशमशेर ने एक षड्यन्त्र किया कि राणाशाही को समाप्तकर नेपाल में प्रजातन्त्र-शासन-व्यवस्था चलाई जाय। षड्यन्त्र का पता लग गया और वसन्तशमशेर प्रासाद में नज़रबन्द रखे गए। किंवदन्ती है कि भीमशमशेर की मृत्यु उनके भतीजों के विष देने के कारण हुई।

भीमशमशेर की मृत्यु के पश्चात् उसके कनिष्ठ भ्राता युद्ध-शमशेर ने सन् १९३२ ई० में शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। चन्द्रशमशेर के पुत्र प्रभावशाली थे। उनके संसर्ग एवं सुझाव पर राणा-कुटुम्ब के उन युवकों को जो असवर्ण विवाह द्वारा उत्पन्न हुए थे, अधिकारच्युत कर दिया गया। इसमें द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के राणा आते हैं।

सन् १९३७ ई० में नेपाल में कुछ उत्साही युवकों ने प्रजा-परिषद् की स्थापना की। प्रजा-परिषद् की कार्य-प्रणाली आरम्भिक भारतीय राष्ट्रिय कार्यकर्ताओं के समान गुप्त थी। जहाँ तक मैं मालूम कर सका हूँ प्रजा-परिषद् का उद्देश्य राणाशाही को समाप्तकर लोकतन्त्रीय व्यवस्था स्थापित करने की थी। परिषद् महाराज को वैधानिक राजा के रूप में रखकर राणा लोगों की

पुस्तैनी प्रधानमन्त्रित्व की परम्परा समाप्त करना चाहती थी। महाराज त्रिभुवनविक्रमशाह की सहानुभूति सुनने में आती है कि आन्दोलन के साथ थी। यह स्वाभाविक था; क्योंकि महाराज की वर्तमान शासन-प्रणाली में कोई अधिकार तो है ही नहीं। वे नाम के राजा हैं। राणा लोग इस विषय में बहुत सतर्क रहते हैं कि किसी प्रकार राजा की शक्ति न बढ़ने पाए। कहा जाता है कि जंगबहादुर के काल से ही वर्तमान् महाराज को छोड़कर सभी महाराज स्वल्प आयु में मर जाते थे; अर्थात् उन्हें विष देकर अथवा अन्य प्रकार से मृत्यु-मुख में कर दिया जाता था। यही कारण है कि राजाओं की पंगु-स्थिति का लाभ उठाकर राणा लोग अपनी शक्ति बढ़ाते गए। सन् १९४० ई० में प्रजा-परिषद् के कार्य-कर्ताओं ने कुछ परचे बाँटे। बहुत से कार्यकर्ता जेलों में ठूँस दिए गए। कितने ही लोगों को नानाप्रकार की यातनाएँ दी गईं तथा सर्व श्री शुक्रराज शास्त्री, धर्मभक्त को खुलेआम फाँसी दी गई तथा सर्व श्री गंगालाल और दशरथचन्द को गोली मारी गई। यह पहला समय था जब कि राज्य की ओर से ब्राह्मण को प्राण-दण्ड दिया गया था। दमन की बाढ़ में अग्नि भीतर-ही-भीतर सुलगने लगी। वर्मा के युद्ध में जिस समय नेपाली सैनिकों ने अंग्रेजों का साथ त्यागकर भारतीय स्वतन्त्रता निमित्त आजादहिंदफौज का साथ पकड़ा उस समय अंग्रेजों का माथा ठनका और भारत में नेपाली कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी आरम्भ हो गई। श्री डा० दिल्लीरमण रेगमी, अग्नि-प्रसाद आदि हमारे साथ निरपराध सेन्ट्रलजेल, बनारस में कैद रहे। नेपाली वन्दियों को नेपाल-सरकार ने लेने का बड़ा उपक्रम

श्री युद्ध शमशेर

प्रधान मन्त्री—१९३२—४५

किया कि उन्हें नेपाल में ले जाकर यातनाएँ अथवा फाँसी दें; परन्तु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण भारत-सरकार का साहस न हुआ कि उन्हें नेपाल को दे सके।

सन् १९४५ में युद्धशमशेर ने पदत्याग कर दिया। कहा गया कि वह राजर्षि हो गए; परन्तु वास्तविक कारण यह था कि चन्द्रशमशेर के लड़कों ने उनका रहना असम्भव-सा कर दिया था। उन्हें सामूहिक धमकी भी दी गई थी कि अगर वह इस्तीफा नहीं देंगे तो उनकी भी वही अवस्था हो सकती है जैसी कि अन्य राणाओं की हुई थी।

सन् १९४५ में पद्मशमशेर राणा हुए। इनके विषय में विस्तार के साथ मैंने पद्मशमशेर के अध्याय में लिखा है। उस अध्याय में मैंने जो शंका प्रकट की थी वह ठीक उतरी। चन्द्र के पुत्रों की शक्ति एवं षड्यन्त्र के कारण पद्म को इस्तीफा देना पड़ा और चन्द्र के बड़े लड़के मोहनशमशेर ने सन् १९४८ मार्च में शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया। मेरा अपना मत है कि नेपाल के राणा इस बात का प्रयत्न करेंगे कि अब शासन-सूत्र चन्द्र के वंशजों के हाथ से निकलकर दूसरे कुटुम्ब में न जाय। इसके लिए कितने षड्यन्त्र तथा हत्याएँ होंगी, भगवान् ही जाने। इनसे बचने का एकमात्र उपाय यही है कि राणाशाही का नाश-कर लोकतन्त्र-शासन-व्यवस्था स्थापित की जाय।

१०३ वर्ष के शासन-काल में राणा लोगों ने नेपाल में चौबीस मील की रेलवे-लाइन, ५० मील मोटर की सड़क और एक डिग्री-कालेज बनाया है। नेपाल में तार की प्रणाली नहीं है। डाक का प्रबन्ध अत्यन्त अव्यवस्थित है।

नेपाल का जन-आन्दोलन

नेपाल संसार का शायद सबसे पिछड़ा प्रदेश और प्रगतिशील विचारों से बहुत दूर है। हिमालय के शृंग-शिखर पर आबाद होते हुए भी अनाचार, अविवेक, अत्याचार, अविचार एवं भ्रष्टाचार का विचित्र संग्रहालय राणाओं के कारण बन गया है। भारतीय जन-आन्दोलन का यथेष्ट प्रभाव नेपाल पर पड़ा है; क्योंकि नेपाल में आवागमन हिन्दुस्तान द्वारा ही होता है। नेपाल अपनी प्रत्येक बाह्य वस्तु के लिए भारत का आश्रित है। तराई-प्रदेश का सम्बन्ध भारतवर्ष से निर्विरोध पड़ता है, अतएव शनैः-शनैः चेतना नेपाली बन्धुओं में फैलने लगी। सन् १९२२ ई० में काशी में नेपाली-वाचनालय तथा सन् १९२६ ई० में श्री चन्दनसिंह आदि ने देहरादून में गुरखा-लीग की स्थापना की।

नवीन विचार-धारा पहले-पहल माधवराज जोशी के कारण नेपाल में आई। महर्षि श्री स्वामी दयानन्दजी के अर्वाचीन विचारों द्वारा प्रभावित होकर आर्यसमाजी भावनाओं का प्रचार करना जोशीजी ने सोचा ही था कि तत्कालीन राणा श्री चन्द्रशमशेर ने उनको साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया। जोशीजी को आजीवन कारावास का दण्ड तथा उनके साथियों को भी कारावास से लेकर देश-निकाले तक का दण्ड दिया गया। श्री तुलसी मेहर भी इसी दल में थे और महात्माजी के आश्रम

में आश्रय लिया था। श्री तुलसी मेहर नेपाल के कर्मठ रचनात्मक कार्यकर्ता हैं और यहाँ के सामाजिक जीवन में उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

राणा भीमशमशेर के समय में भारतीय प्रभाव के कारण नेपाल में राजनीतिक चेतना फैलने लगी थी। सन् १९३० ई० में कुछ शिक्षित नेपाली युवकों ने एक पुस्तकालय खोलने का आयोजन किया; किन्तु उनके संयोजकों पर सौ-सौ रुपये जुर्माने हुए तथा १२ वर्ष के कारावास की धमकी दी गई।

नागरिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति निमित्त १९३० ई० में 'प्रचण्ड-गोरखा' नामक गुप्त संस्था का संघटन हुआ था। महाराज-वंश के श्री उमेशविक्रमशाह अपने साथियों सर्वश्री खड्गमानसिंह, मैनबहादुर तथा खंगमानसिंह के साथ इसके संयोजकों में से थे। इस संस्था का लिखित कागज-पत्र अथवा साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका; परन्तु मालूम हुआ है कि संस्था का उद्देश्य सशस्त्र जनक्रान्ति करना था। यह वही काल था जब कि भारत भी सन् १९३० ई० का नमक-सत्याग्रह आरम्भ हो रहा था नेपाली बहिनों के कुत्सित व्यापार आदि के विरोध में कलकत्ता के हीरालाल, मारवाड़ी की हत्या, राजकुमारी मैयां के सम्बन्ध में कर आदि बातों को लेकर युवक श्री खड्गबहादुर ने नेपाली युवकों में स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी। आठ वर्ष के कारावास के पश्चात् महात्माजी की दण्डी-यात्रा के जत्थे में श्री खड्गबहादुर सिंह ने भी भाग लिया था। नेपाली देश-भक्तों को गर्व होना चाहिए कि श्री खड्गबहादुर ने दण्डी-यात्रा में महात्माजी के साथ रहकर नेपाल का प्रतिनिधित्व उक्त ऐति-

हासिक यात्रा में किया था। दुःख है कि श्री खड्गबहादुर सिंह हम लोगों के बीच अब नहीं हैं। सम्भव है कि प्रचण्ड-गोरखा के जन्मदाताओं ने सोचा हो कि भारत तथा नेपाल दोनों ही स्थानों में एक साथ क्रान्ति किंवा आन्दोलन किया जाय।

लक्ष्मणराज खुफिया हो गया और संस्था के उद्देश्यों आदि का समाचार राणा को पहुँचा दिया। परिणाम यह हुआ कि सर्व श्री उमेशविक्रमशाह, खड्गमानसिंह, मैनबहादुर तथा खंग-मानसिंह गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें आजन्म कारावास की सज़ाएँ दी गईं।

६ फिट × ३ फिट के लोहे के पिंजड़े में, जिसे गोलघर कहा जाता है, वे अलग-अलग बन्द कर दिए गए। इस प्रकार के पिंजड़े भारतीय जेलों में भी सन् १९२१ तक थे। गोलघर में हथकड़ी इनको लगी रहती थी। नाखूनों में आलपीनें खोंस दी जाती थीं। पैरों और गले में लोहे की जंजीरें जो काफी वजनी थीं, हमेशा झूला करती थीं। गोलघर में ही मलमूत्र-त्याग एवं सब कर्म करते थे। पढ़ने का कोई साधन नहीं था। भोजन का विशेष प्रबन्ध भी न था। उनकी अवस्था पशु से भी निकृष्ट हो गई थी। श्री उमेशविक्रमशाह अधिक दिनों तक यातना बर्दाश्त न कर सके और बिना एक बूँद औषधि-पान किए एक दिन लौह शृंखला में आबद्ध लौह पिंजड़े में उन्होंने अपनी ऐहिक लीला मातृभूमि के चरणों में समाप्त कर दी।

अन्य वीरों ने जेल की यातनाओं से ऊबकर अनशन-व्रत का आश्रय लिया। भीमशमशेर ने आश्वासन दिया कि जेल में कुछ सुधार किया जायगा। अनशन व्रत टूटा। किंतु भीमशमशेर

भी काल के मुख से न बच सके। उनकी भी ऐहिक लीला समाप्त हुई। युद्धशमशेर ने राणा होने पर भीम के वचनों का पालन न किया। जेल में पुनः अनशन-व्रत उस दिन आरम्भ हुआ जिस दिन धूमधाम से गरीब जनता को पीसने के लिए नये इरादों के साथ युद्धशमशेर सिंहासन पर बैठे। अनशन के पाँचवें दिन हरीशमशेर जेल में पिस्तौल लिए पहुँचा और धमकाने लगा। मैनबहादुर अपने वक्षस्थल का वस्त्र फाड़कर खड़ा हो गया। उसने ललकारकर कहा—'अगर अपने बाप के लड़के हो तो गोली दागो।' हरीशमशेर का नैतिक बल इतना ऊँचा नहीं था कि पिस्तौल छोड़ता। वह स्वयं काँप उठा। उलटे पैर लौट आया।

दूसरे दिन मैनबहादुर, खड्गमान तथा खंगमानसिंह के गलों में ५-५ सेर वजनी लोहे के गोले डाल दिए गए और उन्हें अलग-अलग कर दिया।

मैनबहादुर का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। राजयक्ष्मा हो गया। औषधि का कोई प्रबन्ध नहीं था। अस्सी वर्षीया वृद्धा माँ पुत्र की शोचनीय स्थिति सुनकर जेल के फाटक पर आई। पुत्र से मिलने के लिए निवेदन किया। किंतु संगदिल राणाओं का हृदय नहीं पसीजा। माँ तीन दिनों तक जेल के फाटक पर बिना अन्न-जल के पड़ी रही। तीसरे दिन माँ ने एक लाश जेल के फाटक पर देखी। माँ दौड़ी हुई गई। लाश के मुख का किंचित् कपड़ा हट गया। माँ चिल्ला उठी—हा, बेटा मैन! साथही; माँ के प्राण-पखेरू भी उड़ गए। वृद्धा का शरीर फाटक पर गिर पड़ा। माँ और पुत्र के स्नेह के बीच में राणाओं की क्रूरता की कठोर प्रतिमूर्ति एवं निर्जीव जेल का फाटक खड़ा था।

खंगमानसिंह का भी देहान्त राजयक्ष्मा में हो गया। गत २० वर्षों से खड्गमानसिंह जेल की यातनाएँ सह रहे हैं। नेपाल के इस वीर युवक की युवावस्था जेल की शुष्क दीवालें सोख गईं हैं; किंतु नेपाल जब स्वतंत्र होगा तो इन्हीं वीरों की तपस्या के कारण होगा। खड्गमान का एक-एक दिन जेल में रहना राणा-शाही के जीवन के एक-एक अंग को कब्र में गाड़ता जा रहा है।

नेपाल के राणा लोगों की इच्छा ही एकमात्र कानून है। इसका अत्यंत सुन्दर एवं दुखांत परिचय श्री भेटनारायणबहादुर की प्रेम-कहानी से मिलता है। प्रतापशमशेर की कन्या दिव्येश्वरी-देवी से श्री भेटनारायण ने आर्य-रीति के अनुसार विवाह किया। राणा लोगों ने अपनी समस्त जाति का अपमान समझा। भेटनारायण भारतवर्ष में थे। राणाओं ने भारतीय सरकार से भेटनारायण तथा दिव्येश्वरी देवी को नेपाल वापस माँगा। नेपाल जाने का अर्थ उनकी मृत्यु अथवा आजीवन कारावास था। भारतीय सरकार तथा सेक्रेटरी-आफ-स्टेट ने भेटनारायणबहादुर तथा दिव्येश्वरी को नेपाल भेजना अस्वीकार कर दिया। राणाओं ने उनकी नेपाल की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। परिणाम यह हुआ कि नव दम्पति युवावस्था में ही चल बसे। बहुत से लोगों का कहना है कि नव दम्पति की मृत्यु का कारण राणा-वंश है।

सन् १९३५ में सर्वश्री टेकप्रसाद उपाध्याय, दशरथचंद एवं धर्मभक्त के नेतृत्व में नेपाल-प्रजापरिषद् की स्थापना भारतवर्ष में हुई। परिषद् का प्रचार पटना की 'जनता' ने कुछ किया था। परिषद् का उद्देश्य था कि नेपाल में महाराज त्रिभुवन

शहीद

श्री शुक्रराज शास्त्री

शहीद
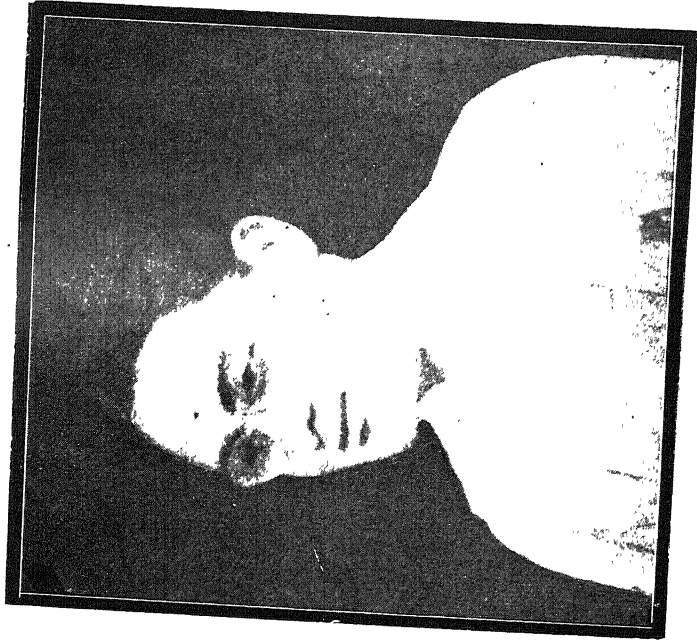
श्री गंगा लाल
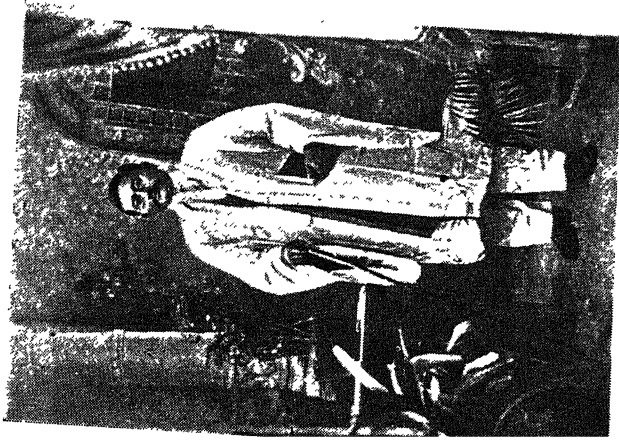
वीरविक्रमशाह को राजा मानकर इंग्लिश पार्लियामेण्टरी शासन-प्रणाली के आधार पर नेपाल में प्रजातंत्र की स्थापना और राणाशाही अथवा एक कुटुम्ब के शासन से मुक्ति प्राप्त की जाय। प्रजा-परिषद् से महाराज की भी सहानुभूति थी। कहा जाता है कि महाराज अपने तीन पुत्रों के साथ परिषद् के सदस्य थे। परिषद् का कार्य प्रारम्भ में गुप्त रूप से चलता रहा। भारतवर्ष में प्रचार-कार्य आरम्भ किया गया तथा पं० जवाहरलाल को भी नेपाल की स्थिति से अवगत कराया गया।

नेपाल में जागृति शनैः-शनैः उत्पन्न हो रही थी। नवीन विचारधारा स्थान कर गई थी। नेपाल के उत्साही कार्यकर्ताओं ने आरम्भिक काल के बंगाल के क्रांतिकारियों की ही नीति को अपनाया। प्रजा-परिषद् के अतिरिक्त शुक्रराज शास्त्री आदि का एक दल और था, जो धर्म के आश्रय में नेपाल में चेतना उत्पन्न करना चाहता था। 'पुराण' पढ़ने की प्राचीन प्रणाली का वरण किया गया। राणा लोगों ने विरोध किया; परन्तु धार्मिक भावना के ठेस लगने के भय के कारण अनुमति मिल गई। पं० मुरलीधर पुराण के विशेषज्ञ माने जाते थे। पुराण-प्रवचन के द्वारा राजनीतिक सिद्धांतों का प्रचार होने लगा। राणा लोगों को रहस्य मालूम हुआ; परंतु इस समय तक जनता में पुराण-प्रवचन द्वारा यथेष्ट प्रभाव पड़ चुका था और जनता पुराण सुनना चाहती थी। राणा लोगों का साहस न हुआ कि पुराण-प्रवचन पर किसी प्रकार की रोक लगाए।

शुक्रराज शास्त्री के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि-मण्डल महात्माजी के पास भेजने का विचार किया गया। प्रतिनिधि-मण्डल

महात्माजी से मिला। महात्माजी ने नेपाल-जनआंदोलन के लिए आशीर्वाद दिया। महात्माजी से मिलने के समय की जो फोटो छपी है, उसमें सर्वश्री शुक्रराज शास्त्री, डा० लोहिया तथा विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला हैं।

श्री शुक्रराजशास्त्री ने महात्माजी से मिलकर ज्यों ही मातृभूमि में पैर रखा, गिरफ्तार कर काठमाण्डू-उपत्यका में नजरबंद कर दिए गए। कुछ मास पश्चात् श्री शुक्रराजशास्त्री ने गीता का प्रवचन आरम्भ किया। गीता द्वारा ही विकासवादी तथा क्रांतिवादी भावनाओं का प्रचार करना आरम्भ किया। श्री गंगालाल ने तो खुलेआम कहना आरम्भ किया कि गीता का अर्थ अन्याय एवं अत्याचार से त्राण पाना है। राणा लोग सचेत हो उठे और श्री शुक्रराजशास्त्री गिरफ्तार कर लिए गए। श्री गंगालाल आदि फरार हो गए। श्री मुरलीधर भी बाहर से आते ही गिरफ्तार कर लिए गए।

राणा लोगों ने घोषित किया कि क्रान्तिकारियों का पता लगानेवालों को पाँच हजार रुपये इनाम तथा सरकारी नौकरी दी जायगी। श्री शुक्रराज शास्त्री के भाई श्री रामजी जोशी तथा पुराण-प्रवचनक पं० मुरलीधर लोभ-संवरण न कर सके। इन लोगों ने प्रजा-परिषद् तथा उन सभी व्यक्तियों की एक तालिका राणा लोगों को दे दी जो नेपाल में लोकतंत्र-शासन स्थापित करना चाहते थे। १८ अक्टूबर १९४० ई० को पुलिस के डाइरेक्टर-जनरल श्री नरशमशेर ने लगभग ५०० व्यक्तियों को गिरफ्तारकर सिंह-दरबार में उपस्थित किया।

मुकदमे का स्वांग रचा गया। कमरे में कार्यवाही होने

लगी। नेपाल के महाराज त्रिभुवनवीरविक्रमशाह तथा उनके पुत्र भी अदालत के सम्मुख पेश किए गए। उनसे भी जिरह हुई। इस घटना से स्पष्ट प्रगट होता है कि नेपाल के राजा केवल नाम के लिए कठपुतली मात्र हैं। मेरा विचार है कि राणाओं के अपनी घरेलू एकता कायम रखने के लिए राजा की छाया ही रहने दी है। अन्यथा संभवतः राजा बनने के लिए जंगबहादुर के देशद्रोही कुटुम्ब में ही फूट बढ़ जाती और कुटुम्बीय शासन का अन्त हो जाता। अस्तु, अपने राजा को इस प्रकार अपमानित होते देखकर सेना तथा नागरिक दोनों ही की मनो-भावनाओं को ठेस लगी। सेना ने धमकी दी कि यदि राजा के साथ कुछ और अपमानकर बातें की गईं तो वे विद्रोह करेंगे। राणाओं की आँखें खुल गईं। सेना ही राणाशाही सत्ता की आधारशिला है। उसके बिगड़ने पर राणा लोग एक दिन भी नेपाल में टिक नहीं सकते। परिस्थितियों से बाध्य होकर राजा पर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगाया गया।

युद्धशमशेर की आज्ञा से सैनिक तथा शासकीय अधिकारी सिंह-दरबार में बुलाए गए। युद्धशमशेर ने चिल्लाकर अभियुक्तों की ओर सम्बोधित कर कहा—इन्हें गान्धी ने उभाड़ा है, बोलिए आप लोगों की क्या राय है? राणाओं को आश्चर्य हुआ कि किसी ने न तो उन्हें अपराधी कहा और न किसी प्रकार के दण्ड का सुझाव रखा। केवल महाराज त्रिभुवनवीरविक्रम-शाह की कोमल ध्वनि सुनाई दी—इनपर खुलेआम मुकद्दमा चलाना चाहिए। युद्धशमशेर परेशान हो गया। किसी ओर से उसे सहायता नहीं मिल रही थी। उसने दो घण्टे के लिए

दरबार स्थगित किया।

दो घण्टे के पश्चात् युद्धशमशेर ने दण्ड की घोषणा की। (१) सर्वश्री शुक्रराजशास्त्री, दशरथचन्द, धर्मभक्त, गंगालाल एवं सुब्बा पूरणचन्द्र को प्राणदण्ड एवं सम्पत्ति-जब्त की सजा, (२) सर्वश्री टेकप्रसाद उपाध्याय, रामहरी और शंकरप्रसाद शर्मा को आजीवन कारावास, सम्पत्ति-जब्त एवं जाति-बहिष्कृत की सजा, (३) अन्य २६व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न दण्ड, यथा सम्पत्ति-जब्ती, आजीवन कारावास से लेकर तीन वर्ष तक की सजा दी गई, (४) अन्य लोग निरपराध मानकर छोड़ दिए गए। मुकदमे का कोई निर्णय नहीं है। अतएव निश्चित नहीं कहा जा सकता कि अपराधियों पर क्या आरोप लगाया गया था एवं किन पर आरोप प्रमाणित हुए थे।

दण्ड घोषित होते समय का दृश्य अत्यन्त ही वीरतापूर्ण था। दशरथचन्द ने अट्टहास द्वारा दण्ड का स्वागत किया एवं गंगालाल ने कहा कि मृत्यु मैं चाहता था और मुझे मृत्यु मिली। स्वतंत्रता के लिए मरनेवाले शहीदों की मृत्यु नहीं होती। राणाओं ने कभी स्वप्न में भी यह विचार नहीं किया था कि नेपाल में इतनी चेतना उत्पन्न हो गई है कि राणाओं के नाश के लिए युवक हँसते-हँसते मृत्यु का वरण करेंगे।

सन् १९४१ ई० की जनवरी का अंतिम सप्ताह था। घोर ठण्डक पड़ रही थी। कर्फ्यू जो नित्य काठमाण्डू में ९ बजे रात्रि से प्रातःकाल तक लगता था, उस दिन सायंकाल ६ बजे से लगा दिया गया था। श्री शुक्रराजशास्त्री को सूचित किया गया कि रात्रि में १२ बजे उन्हें फाँसी दी जायगी। नरशमशेर से शास्त्रीजी ने अनुरोध किया कि फाँसी के पूर्व पवित्र बागमती

में स्नान करने और गीता पढ़ने की आज्ञा दी जाय। नरशमशेर ने आनाकानी की। परंतु रक्षकों ने नरशमशेर पर जोर दिया कि शास्त्रीजी की अंतिम इच्छा पूर्ण करने की सुविधा की जाय। नरशमशेर ने बाध्य होकर शास्त्रीजी की बात मान ली।

श्री शुक्रराज ने पवित्र बागमती में स्नानकर गीता-पाठ किया। अनंतर वह उस वृक्ष के पास ले जाए गए जिसकी शाखा से झुलाकर उन्हें फाँसी दी जाने वाली थी। उस नीरव रात्रि में वृक्ष से एकाकी झूलती फाँसी की डोर को देखकर शुक्रराज ने कहा—युद्धशमशेर मेरी प्राण-हत्या के इतने उत्सुक हैं; परन्तु शायद उन्हें नहीं मालूम कि मैं मर नहीं सकता। मैं अमर हूँ। शस्त्रधारी रक्षकों की ओर देखते हुए शास्त्रीजी ने कहा—यदि हो सके तो मेरे भाई के पास यह संदेश पहुँचा देना कि मेरी मृत्यु का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। इतना कहते-कहते शास्त्रीजी ने प्रसन्नतापूर्वक फाँसी का फंदा गले में स्वयं डाल लिया। पवित्र ध्वनि मुखरित हुई 'ओम्' और भौतिक मिथ्या शरीर आत्मा-रहित हो फाँसी की डोरी से झूल उठा। नीरव गगन के तारों ने देखा हिन्दू-राज्य में, नेपाल में, प्रथम बार अवध्य ब्राह्मण की हत्या। नेपाल की उपत्यका नेपाल-राज्य की टूटती परम्परा को देखकर मुरझा उठी थी; किन्तु प्रसन्न थे नरशमशेर. और शायद प्रसन्न हो उठी थी राणाओं की हिंसक क्रूर भावना। किन्तु कहीं लोग कह रहे थे कि अवध्य ब्राह्मण की हत्या बनेगी राणाशाही की हत्या का कारण।

इछुमति के तरल उपकूल में एक वृक्ष था। नेपाल-घाटी के सुन्दर दृश्यों को देखकर वह बढ़ा था। सरिता की कलकल

करती धारा ने नेपालियों की वीरतापूर्ण गौरव-गाथा एवं काठमाण्डू-उपत्यका में राज्यों का उत्थान-पतन देखा था। साथ ही, शीतपूर्ण मध्यरात्रि में वह उस दृश्य को भी देखने जा रही थी, जिसमें एक नेपाली वीर अपनी जीवनलीला समाप्त करने जा रहा था। श्री धर्मभक्त वृक्ष से झूलती फाँसी की डोर के पास नरशमशेर तथा रक्षकों द्वारा लाए गए। धर्मभक्त की मुद्रा शान्त एवं गम्भीर थी। मुख से एक शब्द भी न निकल रहा था। वह जैसे एक महान् यात्रा के महाप्रस्थान की तैयारी कर रहे थे। नरशमशेर ने उनके गले में फाँसी का फन्दा गलत तरीके से लगाया। धर्मभक्त झूले; किन्तु प्राण-पखेरू न उड़ सके। वह मृत्यु एवं जीवन के बीच झूलने लगे। उनका हाथ और पैर छटपटाने लगा। नरशमशेर प्रसन्न हो उठे। इक्षुमति की कल्लोलिनी तरंगें मानव के इस रूप पर लज्जित हो गईं। वृक्ष की शाखा मानव के इस पतन पर नत हो गई। मानव-रक्षकों से न रहा गया। वे बोल उठे। नरशमशेर ने धर्मभक्त को उतारने के लिए कहा। रक्षकों ने धर्मभक्त को रस्सी से खोला। वह बेहोश थे। नरशमशेर ने निर्जीव सरीखे निहत्थे एवं मृत्युमुख-प्राप्त वीर नेपाली के मुख पर घूसों से मारना आरम्भ किया। धर्मभक्त के मुख एवं नासिका से रक्तधारा बह चली। नरशमशेर की क्रूर वाणी उस स्तब्ध उपकूल में गूँज उठी—हाथ-पैर बाँधकर झुला दो। वीरवर धर्मभक्त का हाथ-पैर बाँधा गया। फाँसी के फन्दे में उनका रक्तपूर्ण कण्ठ झूल उठा।

विष्णुमती एवं भद्रमती सरिता के संगम पर श्री दशरथलाल
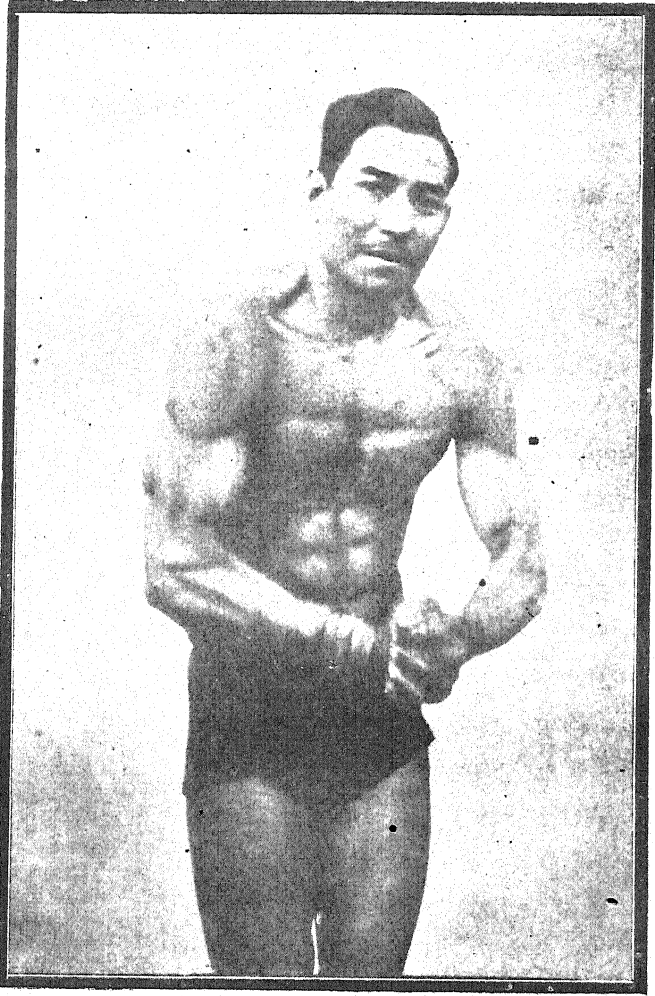
श्री धर्मभक्त

एवं गंगालाल लाए गए। संगम पर उनका शिकार खेला जाने-वाला था। दशरथलाल उम्र में बड़े तथा गंगालाल छोटे थे। रक्षकों से दशरथ ने कहा कि पहले गंगालाल को गोली मारी जाय; क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि मेरी अवस्था तथा रक्त को देखकर अल्पवयस्क गंगालाल का मन विचलित हो जाय। नर-शमशेर मुसकरा उठा। दशरथ के नितम्ब में गोली मारी गई। दशरथ ५ मिनट तक खून से तर भूमि पर पड़े रहे। अनन्तर दशरथलाल की छाती में गोली मारी गई और दशरथलाल का रक्त उस संगम के जल से संगम कर नेपाल के राणाओं की क्रूर कहानी दुनिया को सुनाने चल पड़ा।

श्री गंगालाल को जब गोली मारने का समय उपस्थित हुआ तो रक्षकों ने स्पष्ट कह दिया था कि छाती के अतिरिक्त वे और कहीं गोली नहीं दागेंगे। अतएव गंगालाल की छाती में दो गोली दागी गई और प्रजा-परिषद् के चारों शहीदों के जीवन का अध्याय बन्द हुआ।

चारों शहीदों की लाशें काठमाण्डू के बाजार में लोगों को आतंकित करने के लिए रखी गई। नेपाली जनता पर शहीदों के रक्त-दान का क्या प्रभाव हुआ, यह भविष्य ही बताएगा।

'बनारस नेपाली-संघ' की स्थापना नं० ६५, दूधविनायक में सन् १९३५ में हुई थी। गुरखा-कांग्रेस, कलकत्ता को लेकर नेपाल के बाहर दो संस्थाएँ थीं, जहाँ नव-जागृति के पक्षपाती लोग एकत्र होते थे। सन् १९४५ एवं १९४६ ई० में दलित-निवारक-संघ की स्थापना कलकत्ता में हुई। अक्टूबर सन् १९४६ में काशी में यह निश्चय किया गया कि दोनों संस्थाओं को एक में मिलाकर

नेपाली-राष्ट्रीय-कांग्रेस की स्थापना की जाय। २५ जनवरी सन् १९४७ ई० को नेपाली-कांग्रेस का प्रथम समारोह कलकत्ता में हुआ, जिसमें डा० लोहिया ने प्रमुख भाग लिया था। कांग्रेस का उद्देश्य नेपाल में वयस्क मताधिकार के आधार पर व्यवस्थापक-सभा की स्थापना करना था। राजा को अक्षुण्ण रखा जाय। उद्देश्यों से प्रतीत होता है कि कांग्रेस के संस्थापकों की भावना इंग्लिश पार्लियामेण्टरी गवर्नमेण्ट के आधार पर नेपाल में भी लोकतन्त्रीय राजतन्त्र स्थापित करने की थी। क्रान्ति के लिए महात्माजी का अहिंसा-सिद्धान्त अपनाया गया। प्रजा-परिषद् एवं नेपाली-कांग्रेस में अन्तर केवल यही मालूम होता है कि प्रजा-परिषद् शस्त्र किंवा हिंसा द्वारा भी नेपाल में लोकतन्त्रीय राजतन्त्र स्थापित करना चाहता था और नेपाल-कांग्रेस शुद्ध गांधीजी के प्रदर्शित मार्ग के अनुकरण पर। नेपाल-कांग्रेस की शाखाएँ काशी, कलकत्ता, दार्जिलिंग में स्थापित की गईं। नेपाल-कांग्रेस की कोई शाखा नेपाल में न खोली जा सकी। प्रजा-परिषद् नेपाल की भूमि में उत्पन्न हुई थी, वहीं बढ़ी और वहीं उसे समाप्त होना पड़ा। परन्तु नेपाल-कांग्रेस के आन्दोलन का क्षेत्र भारत एवं नेपाल की तराई के क्षेत्र थे। राणा लोग नेपाल-कांग्रेस को प्रजा-परिषद् के समान दबाने में असफल रहे हैं और रहेंगे; क्योंकि उनकी दमन-नीति का भारत में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा; बल्कि आन्दोलन की जड़ जमती जायगी।

लगभग दो मास के पश्चात् वीरगंज में हड़ताल हुई और पाँच हजार श्रमिकों ने हड़ताल में भाग लिया। नेपाल-कांग्रेस को श्रमिकों ने आमन्त्रित किया। नेपाल-कांग्रेस ने श्रमिकों की

शहीद

श्री चिन्यामान सिंह

समस्या को अपनी समस्या घोषित किया। श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला गिरफ्तार कर लिए गए और २५ मार्च को नेपाल-कांग्रेस की कार्य-कारिणी की बैठक कलकत्ता में बुलाई गई। २७ मार्च को घोषित किया गया कि नेपाल में नागरिक स्वतंत्रता के निमित्त सत्याग्रह आरम्भ किया जाय। किन्तु सत्याग्रह १३ अप्रैल तक के लिए स्थगित कर दिया गया। विराटनगर में राणाशाही का ताण्डव जारी था। संगीन और गोली का बाजार गर्म था। तीन माताएँ शहीद हुईं और कितने लोग घायल हुए, कहना कठिन है।

१० अप्रैल को नेपाली प्रतिनिधियों की पुनः एक बैठक हुई। श्री लोहियाजी इस बैठक में उपस्थित थे। समूचे नेपाल में सत्याग्रह १३ अप्रैल से विराटनगर, रक्सौल, धनकोटा, इलाम एवं काठमाण्डू में आरम्भ करने का निश्चय किया गया। काठमाण्डू का प्रदर्शन बहुत ही महत्वपूर्ण था, जहाँ काफी संख्या में जनता ने प्रदर्शन में भाग लिया और राणाओं की निद्रा टूटी। महात्माजी का आशीर्वाद लिया गया और महात्माजी ने जोर दिया कि राणाओं को जनता की मागों को पूरी करनी चाहिए। श्री जवाहरलाल नेहरू ने सत्याग्रह स्थगित करने के लिए कहा तथा नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पद्मशमशेर ने पं० जवाहरलाल से वैधानिक शिष्टमण्डल की सहायता माँगी। श्री श्रीप्रकाशजी के नेतृत्व में शिष्टमण्डल नेपाल गया और सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। शिष्टमण्डल ने एक विधान बनाया; किन्तु वह केवल कागज पर ही लिखा रह गया। राजनीतिक बन्दियों की रिहाई

के लिए जोर दिया गया और २२ अगस्त सन् १९४७ ई० को श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला मुक्त किए गए।

नेपाली छात्रों के दो संघ नेपाली-छात्रसंघ, काशी विश्व-विद्यालय एवं कलकत्ता का हिमांचल-विद्यार्थीसंघ मुख्य हैं। अखिल वर्मा नेपाली-संघ भी वर्मा में संघटित की गई है। नेपाली वन्धुओं में नव-जागृति के शुभ चिन्ह इस बात के प्रतीक हैं कि नेपाली जनता में क्रान्तिकारी भावनाओं का प्रचार तेजी से बढ़ रहा है। उन्हें अपनी वर्तमान् स्थिति पर सन्तोष नहीं है। वे कुछ करना चाहते हैं और करके रहेंगे। यह निर्विवाद है कि राणाशाही के दिन समाप्त हो चुके हैं। केवल चालीस या पचास व्यक्तियों का कुटुम्ब लाखों मनुष्यों पर अपनी स्वार्थ-वृद्धि के लिए राज्य नहीं कर सकता। अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों की तरह नेपाल को भी पशु बनाकर रखा था और राणा लोग इसी लिए अत्याचार एवं अन्याय करते थे कि उन्हें अंग्रेजी बन्दूकों का भरोसा था। वह भरोसा अब समाप्त हो गया है। अतएव राणा लोग स्वयं परेशान हैं। भारतीय सरकार जनतंत्रवादी है। वह किसी भी मूल्य पर राणाशाही का समर्थन नहीं कर सकती। अपितु भारतीय जनता नेपाल-जनआन्दोलन का समर्थन करेगी। राणाओं का भय स्वाभाविक एवं मौलिक है। इसी भय के प्रतिक्रिया-स्वरूप राणा लोग विदेशी शक्तियों की ओर जैसे अमेरिका, इग्लैण्ड आदि की ओर हाथ बढ़ाते हैं। अपनी शक्ति कायम रखने के लिए वे किसी भी विदेशी शक्ति की सहायता किसी भी मूल्य पर लेना चाहते हैं। नेपाली वन्धुओं को इस खतरे का सामना करना ही पड़ेगा।

प्रजापरिषद आन्दोलन के नेता

श्री रामहरि शर्मा

नेपाल में जन-आन्दोलन का अभी उषाकाल है। वह दिन दूर नहीं जब नेपाली बन्धु कीड़े-मकोड़ों की तरह राणाओं द्वारा मारे जायँगे। राणाओं के लिए नेपाल का उत्थान उनके पतन का चिन्ह है। नेपाल तथा राणाशाही दोनों की उन्नति असम्भव है। एक की उन्नति में दूसरे की अवनति एवं नाश का रहस्य छिपा है। मेरा यह निश्चित मत है और विरोधी मतवाले व्यक्तियों के लिए मैं यही कह सकता हूँ कि नेपाल की समस्याओं का उन्होंने मौलिक रूप से अध्ययन नहीं किया है। आज नेपाल की सबसे बड़ी आवश्यकता समस्त नेपाली जनता का एकीकरण कर राजनीतिक विकास की ओर बढ़ाना है।

नेपाल-राष्ट्रीय कांग्रेस की फूट नेपाली आन्दोलन की एक दुःखद घटना है। नेपाल-स्वातंत्र्य संग्राम के निमित्त कई संस्थाएँ भिन्न-भिन्न नामों से स्थापित की गई हैं। राजनीतिक शक्ति एवं कार्यकर्ताओं को इस प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभक्त कर देने से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है। कितनी ही संस्थाएँ तृतीय एवं द्वितीय श्रेणी के राणाओं की आर्थिक दृष्टि से मुखापेक्षी हैं, जो उनके इशारों पर नाचती हैं। इस प्रकार की संस्थाओं से जनता को कोई लाभ नहीं है, क्योंकि यह तो एक बुरी चीज को दूसरी बुरी चीज से बदलना या एक स्वार्थ के स्थान पर दूसरे स्वार्थ को प्रश्रय देना हुआ। नेपाल का उत्थान इस नीति से होना असम्भव है। नेपाली जनता की जिसमें उन्नति हो, वही सिद्धान्त एवं प्रणाली अच्छी है। जनता में चेतना उत्पन्न करना कार्यकर्ताओं का काम है। चेतना उत्पन्न होने पर अनुपयुक्त नेतृत्व किंवा संस्थाओं को

जनता स्वयं उठाकर एक ओर रख देगी। क्या हम आशा करें कि सभी नेपाली बन्धु एक स्वर, एक मन, एक विचार से एक कौटुम्बिक शासक राणाशाही के विरुद्ध आवाज उठाएँगे? क्या हम आशा करें कि मानव द्वारा मानव पर होते हुए अत्याचार की कहानी बन्द कराने के लिए कुछ करेंगे? और क्या हम आशा करें कि मानवता के नाम पर कलंकरूप राणाशाही को नाशकर मानव-समाज की सेवा नेपाली बन्धु करेंगे?

चीन पर लाल झण्डा फहरा जाने के पश्चात् नेपाली बन्धुओं को अपनी समस्या को एक दूसरी दृष्टि से देखना होगा। नेपाल की उत्तरी सीमा तिब्बत से मिली है। तिब्बत चीन का अंग समझा जाता है। तिब्बत की अपनी कोई शक्ति नहीं है, जिससे वह अपना अलग अस्तित्व कायम रख सके। इस प्रकार नेपाल पर प्रत्यक्ष रूप से चीन के वातावरण का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। नेपाल की जनता में वर्गों का जितना कठोर बिभाजन है उतना शायद कहीं नहीं देखने में आया होगा। कम्युनिस्ट विचारों के प्रसार के लिए नेपाल बहुत ही उत्तम स्थान प्रमाणित होगा। केवल कुछ कुटुम्बों के विलीन होते ही नेपाल में केवल एक वर्ग ही रह जायगा, जो इस समय का सबसे हारा हुआ वर्ग है और सदियों से दबाया जा रहा है। संसार के प्रभाव से नेपाल की पहाड़ी घाटियाँ और हिमालय पर्वत अब नेपाल की रक्षा करने में असमर्थ है। हिमालय को भी नवीन विचार-धाराओं के सम्मुख मस्तक नत कर स्वागत के लिए हाथ बढ़ाना ही होगा। क्या नेपाल के कुछ कुटुम्ब इन बातों पर ध्यान देते हुए समय रहते सचेत हो सकेंगे?

यात्रा

शीशगढ़ी से काठमाण्डू

शीशगढ़ी ५८७५ फीट की ऊँचाई पर स्थिति है। जून में भी यहाँ ठण्ढक पड़ती है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ से सहस्त्रों फीट नीचे के मकान खिलौने-जैसे प्रतीत होते हैं और उन्हें निरपेक्ष रूप से देखता हुआ व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि वह दुनियाँ के परे पहुँच चुका है।

शीशगढ़ी में डाक और तारघर हैं। यह काठमाण्डू का प्रवेशद्वार है। यहाँ पासपोर्ट की जाँच होती है। नेपाली संतरी पहरा देते हैं। सायंकाल के पश्चात् एवं प्रातःकाल के पहले काठमाण्डू के मार्ग पर कोई चल नहीं सकता। नेपालियों में देश-रक्षा के उत्तरदायित्व की प्रवल भावना होती है। वे अपनी राजनीति में गैरनेपाली का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। उन्हें अपनी स्वतंत्रता और वीरता का गर्व रहा करता है। उनके सीधे-पन में दृढ़ता छिपी रहती है। उनकी दया में, उनकी सचाई में एवं उनकी सरलता में स्वदेश-मर्यादा की रक्षा के निमित्त क्रूरता, निर्भीकता एवं वीरता के भाव निहित रहते हैं। वे अपनी बात कहने की अपेक्षा दूसरों की सुनना अधिक पसन्द करते हैं।

नेपाली किसी के मार्ग में व्यर्थ प्रतिरोध उत्पन्न करना नहीं चाहते; परन्तु प्रतिरोध उत्पन्न हो जाने पर वे हटना भी नहीं जानते। उनमें वीरता होती है, शक्ति होती है और कौशल होता

है; किन्तु उनका वे अनुचित प्रदर्शन करना नहीं चाहते। वे अपने सामाजिक कृत्यों में सनातनी कहे जा सकते हैं; किंतु समय आ पड़ने पर वे किसी भी स्थिति का सामना करने की क्षमता रखते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि सनातन परम्पराएँ तथा रूढ़ियाँ हिंदू-जाति की अविभाज्य अंग हो गई हैं; परन्तु नेपाली लोग भारतीय सनातनियों की तरह केवल कोरे सनातनी नहीं हैं। उन्होंने राज-नीति को राजनीति के स्थान पर और धर्म को धर्म के स्थान पर रखा है। नेपाल एक हिन्दू-राज्य है, अतएव यहाँ की राजनीति में हिन्दू-धर्म का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, जिस प्रकार सौदी, अरबिस, ईरान अथवा अफगानिस्तान में मुसलिम सभ्यता, संस्कृति एवं परम्परा का होता है। हिन्दू-परम्परा के अनुसार सहि-ष्णुता नेपाल की सदा से परम्परा रही है। किसी भी अन्य धर्माव-लम्बी को नेपाल से आज तक इसकी शिकायत करने का मौका नहीं मिला है। काठमाण्डू के प्रवेशद्वार शीशागढ़ी में स्थित नेपाल के उच्च कर्मचारियों तथा वहाँ के निवासियों से बातचीत करने पर मेरे ऊपर वहाँ इसका पहला प्रभाव पड़ा।

हम लोगों ने शीशागढ़ी के राजकीय विश्रामालय में आतिथ्य ग्रहण किया। ठण्डक अधिक हो गई थी। अतः गर्म कपड़ा पहनना आवश्यक हो गया था। श्री श्रीप्रकाशजी के सज्जनोचित स्नेहमय व्यवहार ने हम लोगों के छोटे से समूह में इतना स्नेह उत्पन्न कर दिया था कि किसी प्रकार की शिथिलता मालूम ही नहीं हो पाती थी। हम लोग हँसते-घूमते हुए नाना प्रकार की बातें किया करते थे और भारतवर्ष की राजनीति की तुलना

नेपाल से किया करते थे। सायंकाल का दृश्य वहाँ का अपूर्व होता है। वहाँ का सैकड़ों मील की दूरी पर स्थित क्षितिज शनैः-शनैः शान्त एवं गम्भीर होने लगता है। आकाश एवं तरुओं पर उस समय पक्षी दिखाई नहीं देते और न तो उनका शब्द ही सुनाई देता है। हरित तरु-समूहों की सघनता, भीमपेड़ी की घाटी का मनोरम दृश्य, मेघों का पर्वत की एक चोटी से दूसरी चोटी पर जाना और कभी-कभी वृक्ष-समूहों के बीच से उनका निकल जाना, देखते-ही-देखते समूची भीमपेड़ी-घाटी को आच्छादित कर उसे दुनियाँ की आँखों से ओझल कर देना आदि वहाँ के मुग्धकर दृश्य देखते ही बनते हैं। कभी-कभी बादल हमें आकर घेर लेते थे। एक क्षण में ही चारों ओर का झिलमिला अंधकार गम्भीर हो उठता था, जिसके कारण तीस फुट की दूरी का मनुष्य भी दिखाई न देता था। चारों ओर की इमारतें अंधकार की गोद में छिप जाती थीं। बिजली के खम्भों पर जलती हुई बत्तियाँ लज्जित होकर हतप्रभ हो जाती थीं।

इस स्थान का नाम शीशगढ़ी संभवतः इसलिए पड़ा है कि यहाँ से मोर्चेबन्दी अच्छी की जा सकती है। भीमपेड़ी की घाटी से आनेवाले शत्रु का सामना यहाँ से, हज़ारों फीट ऊपर रहकर, बड़ी सुगमता से किया जा सकता है! सामरिक दृष्टि से नेपाल के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ एक बनिए की दुकान है। यात्री ठहर सकता है। पहाड़ों में बहुधा पानी की कठिनाई विशेष हुआ करती है; परन्तु यहाँ झरना तथा पानी के पाइप दोनों हैं। पर्वतों पर झरनों का पानी नहीं पीना चाहिए; क्योंकि पहाड़ी पेचिश (हिल-

डाइरिया) होने का भय रहता है। यदि प्यास लग जाय तो पानी छान लेना चाहिए। साधारणतः पानी छानकर और गर्म करके पीना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है। रात्रि पर्यंत यहाँ रहने के पश्चात् प्रातःकाल ९ बजे थानकोट के लिए हम लोगों ने प्रस्थान किया।

प्रत्येक डाड़ी में आठ श्रमिक लगे थे। हम लोग राज्य के अतिथि थे, अतएव दूने श्रमिक लगा दिए गए थे, नहीं तो चार ही व्यक्ति डाड़ी लेकर चलते हैं। इन श्रमिकों की अवस्था अत्यन्त दयनीय थी। सब कंकाल-स्वरूप के नौजवान थे। किसी के शरीर पर पूरा वस्त्र नहीं था। गुदड़ी में पुराना बिकनेवाला कोट, जाँघिया, वेस्टकोट, पुरानी वर्दी आदि को पहनकर वे अपना जीवन बिताते हैं। नेपाली टोपी शायद वे नई खरीद लेते हैं। बहुत से तो ऐसे दिखाई दिए जो मोटी करधनी में कोपीन लगाए डाँड़ी ढो रहे थे। किसी के शरीर पर नया वस्त्र मैंने नहीं देखा। पर्वत की कठिन-से-कठिन चढ़ाई पर घोड़ों की तरह हाँफते हुए डाड़ी लेकर उनका चढ़ना कभी-कभी इतना असह्य हो जाता था कि हम डाड़ी छोड़कर उतर जाते थे। नेपाल का पर्वत विन्ध्य की भाँति पक्का पर्वत अर्थात् चट्टानमय नहीं है। मार्ग में सिकटियाँ और रोड़े बहुत मिलते हैं। कोई सड़क भी नहीं है। पहाड़ काटकर रास्ता बना दिया गया है। वर्षा के कारण मिट्टी तो बह जाती है और केवल कंकड़-पत्थर रह जाते हैं। इसी कंकड़ों पर नंगे पैर युवक डाड़ीवाले चलते हैं। किसी-किसी के पैर में विचित्र प्रकार का चप्पल था। वह चप्पल घर बनाया जाता है। रबड़ के टायर के टुकड़े

काटकर उन्हें डोरी से पैरों में फँसा लिया जाता है। कभी-कभी घास या पुआल के चप्पल बनाकर वे पैर में लगा लेते हैं। मार्ग में बहुत से फौजी नेपाली दिखाई दिए। वे जूता खराब हो जाने के भय से बूट हाथ में लेकर नंगे पैर चलते थे। यह उनकी गरीबी की पराकाष्ठा थी, जिसके कारण मनुष्य अपने शरीर को कष्ट तो दे सकता था; किन्तु अपने जूते का घिसना और खराब होना उसे पसन्द न था।

हम लोग बादलों के बीच से चल रहे थे। पाँच ही मिनट बाद उतराई आरम्भ हो गई। उतराई इतनी नीची थी कि हम लोगों के लिए पैदल चलना भी कठिन था। दस मिनट में ही हम लोग हजारों फीट नीचे उतर आए। अब बादल हम लोगों के ऊपर हो गया। हम लोगों के सामान सर-सर करते हुए टोकने से एक चोटी से दूसरी चोटी पर चले जा रहे थे। दाहिनी ओर घाटी दो हजार फीट नीचे थी। घाटी समतल नहीं; बल्कि ऊबड़-खाबड़ थी। नीचे के पहाड़ भी हरे-भरे न थे। मार्ग में एक स्थान पर यात्रियों और कुलियों के ठहरने के लिए विश्राम-स्थान बना था। शीशगढ़ी से चन्द्रगिरि तक मार्ग में बहुत-सी छोटी-छोटी दुकानें मिलीं। किनारे पर स्थान-स्थान में स्त्रियाँ रोटी, कलशी में जल और दारू लिए बैठी मिलती थीं। गावों में भी दुकानों पर रोटी, आलू की तरकारी, दही, चाय और दारू आम तौर से मिलती है। डाड़ी ढोनेवाले तथा बोझ ढोनेवाले श्रमिक थकने पर रोटी खाकर दो आने का दारू पी लेते हैं। पूँछने पर बताते हैं कि बिना दारू पिए चढ़ाई नहीं की जा सकती। मकई, कोदो, मडुआ आदि के आँटे को सड़ाकर

दारू बनाई जाती है और वह दही की तरह मालूम होती है। माँगने पर लस्सी की तरह मथानी से मथकर दी जाती है। उसका रंग सफेद मट्ठा की तरह होता है। नशा बहुत हल्का होता है।

आगे भी मार्ग खराब और ऊबड़-खाबड़ मिलता गया। हम लोग पुनः छः हजार फीट ऊँचे चढ़कर देवराली पहुँच गए। देवराली में पहले-पहल इस ओर के सामाजिक जीवन की झाँकी मिली। यहाँ दुकानें तीन-चार थीं। सब में चाय बिकती थी। गुजरात की तरह यहाँ भी चाय पीने का मर्ज फैल चुका है। इस स्थान से तीस फीट की उँचाई पर 'रोपवे' का यन्त्र और उसकी रचना-शैली देखी जा सकती है। यंत्र में बिजली की मोटर लगी है, जो दो पहियों को घुमाती है। इन्हीं पहियों पर तार घूमते हैं। दूर से देखने पर मालूम होता है कि तार में लगा झूला चक्र के सहारे तार पर चलता है; परंतु बात ठीक इससे उलटी है। ट्राली तार पर अपने भार से बैठ जाती है और तार की गति के साथ उसपर जमी हुई चलती है। बीच-बीच में तार के सहारों के लिए ऊँचे खंभे लगे हैं, जिनपर पहियाएँ लगी हुई घूमती रहती हैं। इन पहियों पर तार अपने बोझ के साथ गतिशील रहता है। दूर से देखने पर मालूम होता है कि चलती हुई पहिया तार को गति दे रही है; परन्तु बात इसके ठीक विपरीत है। तार की गति से पहियाएँ स्वतः चलती रहती हैं। इन पहियों की ध्वनि शब्द-रहित स्थान में; जहाँ पक्षी नहीं चहकते और किसी प्रकार के जंतु का दर्शन नहीं होता, अबाध गति से होती रहती है और तार पर लगी ट्राली चील की भाँति

एक चोटी से दूसरी चोटी पर उड़ती-सी चली जाती है।

हम लोग पुनः नीचे उतरने लगे। केवल आकाश में 'रोपवे' की चलती घरारियों की ध्वनि स्थान की नीरवता को भंग कर रही थी। दूर से जल-प्रपात की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पाँच मिनट चलने के पश्चात् नीचे की हरित उपत्यका में बहती हुई श्रोतस्विनी दिखाई दी। रात्रि में वर्षा हुई थी। नीलाम्बर में मेघ घिरे हुए थे। श्रोतस्विनी की गति तीव्र थी। नदी का जल लाल मिश्रित पीला रंग लिए हुए था। पत्थर की चट्टानों से टकराने के कारण ध्वनि उर्जस्वित थी। यह स्थान अत्यंत भयंकर प्रतीत होता था।

श्रोतस्विनी के दोनों किनारों पर छोटी-छोटी झोपड़ियाँ थीं। भुट्टों के लहलहाते खेत खड़े थे। कुंज के समान मार्ग में बाँझ वृक्षों की छाया थी। गर्मी इतनी बढ़ गई कि ऊनी कपड़ा उतारकर डाड़ी पर रख दिया गया। धूप अच्छी नहीं लग रही थी। हम लोग करीब तीन हजार फीट नीचे उतर आए थे।

मार्ग में गाढ़े हरे रंग का एक जल-प्रपात मिला। हर-हर-हर करता जल वेगपूर्वक हजारों फीट की उँचाई से गिर रहा था। प्रपात पर लकड़ी का बना एक पुल था। उसका जल लगभग तीस फीट नीचे उतरकर श्रोतस्विनी से जा मिलता था। उक्त संगम को देखकर सहसा त्रिवेणी का स्मरण हो आया। जलप्रपात का हरित जल नदी के लाल जल में उसके लहरों के वेग के कारण इस प्रकार फैल गया था मानों किसी गौरांगी कामिनी के नितम्ब-चुम्बित केश स्नान करते समय जल में फैल कर तैर रहे हों। यहाँ का दृश्य वस्तुतः अत्यन्त मोहक तथा। रम-

णीय था। यहाँ प्रकृति की सजावट, स्रोतस्विनी का वेगमय भयंकर स्वरूप, भूमि की उँचाई और निचाई में आकाश और पाताल का अंतर, जलप्रपात के वेगमय जल का चीत्कारमय हर्-हर् ध्वनि के साथ पतन आदि दृश्य दर्शक के हृदय में भय-मिश्रित सौंदर्य्य का सहसा सृजन करते हैं।

अचानक बूँदे आईं। यहाँ बूँदों के आने और जाने में देर नहीं लगती। क्षण में धूप, क्षण में छाया, क्षण में वर्षा, क्षण में सूखा इस परिवर्तनशील जगत् की चिरकहानी सुनाया करती हैं। बूँद के आते ही हम लोग डाड़ियों में बैठ गए। कुलखानी ग्राम दिखाई पड़ रहा था।

कुलखानी गाँव में एक छोटा-सा बाजार है। यहाँ नदी के पानी को उँचाई से नाली द्वारा लाकर आँटा पीसने की चक्की लगाई गई है। चक्की धारा के बीच में उँचाई पर बनाई जाती है। पानी ऊपरी भाग से नाली द्वारा बाँधकर समतल भूमि बनाकर लाया जाता है, ताकि जल उँचाई से वेग द्वारा गिरे। यहाँ के घरों में चक्की नहीं चलती। लोग जल-चक्की में आँटा पिसाते हैं।

भुट्टों (मकई) के खेत यहाँ अधिक हैं। खेतों की रक्षा सेहुँड़, अडूसा तथा केतकी की झाड़ों की खाईं बनाकर की जाती है। मछुओं की आबादी बिखरी हुई नदी के किनारों पर है। वे मुर्गियाँ पालते हैं और मछली मारने के लिए जाल बनाते हैं। उनके घर दोमंजिले होते हैं। लकड़ी का ढाँचा तैयारकर मकान खड़ा करते हैं। दीवाल की जगह बाँस और खर लगाकर मिट्टी से उसे पोत देते हैं। मकान में दो कोठरियाँ नीचे और दो कोठरियाँ

ऊपर होती हैं। छाजन फूस का होता है। जमीन पर छानी तैयारकर उसे दीवाल पर डाल लेते हैं। छाजन पर एक फुट या नौ इंच फूस लगा देते हैं। खिड़कियाँ मकान के दोनों मंजिलों में होती हैं। मकान के बरामदों में सूखी लकड़ियाँ वर्षाऋतु के लिए इकट्ठी की जाती हैं। यहाँ के लोग पशुओं में अधिकतर बकरी और गाय पालते हैं और दोनों ही दुर्बल रहा करते हैं।

कुछ दूर आगे चलने पर नदी का पहला झूलन-पुल मिला। पुल का नाम चन्द्रपुल था। यह सन् १८९३ ई० में बना था। शिलालेख पर पुल का नाम, निर्माणकाल एवं तोप, खुखड़ी, सूर्य तथा चंद्रमा के चिन्ह बने थे। डाड़ी पर चढ़ा हुआ व्यक्ति पुल पार नहीं कर सकता। डाड़ी से उतर जाना पड़ता है। क्योंकि एक ही व्यक्ति के चलने से पुल हिलने लगता है और भय भी मालूम होता है। पुल की चौड़ाई कठिनता से तीन फीट होगी। पुल के पार करते ही एक छोटा-सा बाजार मिलता है और वहाँ होटल, धर्मशाला, दर्जी की दुकान तथा नारायण का एक मंदिर है। भिखमंगे लड़के यहाँ पहले-पहल दिखाई पड़ते हैं, जो काठमाण्डू तक मार्ग में मिलते जाते हैं।

यहाँ से मार्ग नदी का किनारा पकड़कर चलता है। भूमि समतल मिलती है। पर्वतमाला नदी के दोनों तटों से हटकर है। पर्वत-श्रेणी हरी-भरी नहीं है। केवल हरित दूर्वा द्वारा पर्वत आच्छादित है। शीशगढ़ी से कुलखानी तक जो हरियाली मिली थी, उसका यहाँ अंत हो गया था। नदी के तटों पर भुट्टे के खेतों की कतार मिली; ग्रामीणों के मकान मिले और समतल मार्ग मिले। चढ़ाई-उतराई के झमेले में समतल मार्ग देखकर

यहाँ कुछ शांति मिलती है। यहाँ का दृश्य विंध्याद्रि स्थित किसी छोटी नदी के तटवर्ती ग्राम के जीवन-सा प्रतीत होता है।

कुछ मार्ग चलने पर खरीरुख ग्राम मिलता है। यहाँ पुनः 'झूलन-पुल' बना है। नदी पर कुल चार झूलन-पुल हैं, जिनमें यह पुल सबसे बड़ा है। यहाँ भी डाड़ी से उतरकर पैदल ही पुल पार करना पड़ता है। एक ही व्यक्ति के चलने से पुल झूले की तरह झूलने तथा हिलने लगता है। पुल सन् १९२९ ई० में स्काटलैण्ड की कम्पनी जोन एण्डरसन ने महाराजा चन्द्रशमशेर जंगबहादुर राणा के आदेश से इसे निर्माण किया था। जाड़े के दिनों में लोग नदी पार कर लेते हैं; परन्तु बरसात में पुल द्वारा ही आवागमन होता है।

पुल पार करते ही खरीकागाछ गाँव मिलता है। इसी के समीप हाथीसर स्थान है। वहाँ हाथी ठहरते हैं। यहाँ दो-चार घरों की आबादी है। रोटी और दारू की दो-तीन दुकानें लगाकर उनपर नेपाली औरतें बैठती हैं। नेपाल में शायद राणा-कुटुम्ब को छोड़कर और कहीं परदा नहीं किया जाता। मार्ग में कहीं भी परदा नहीं दिखाई दिया। स्त्रियाँ उसी प्रकार कार्य करती हैं जैसे पुरुष। इस स्थान के चारों ओर पर्वत-मालाएँ हैं। दूर पर दाहिनी ओर नदी बहती है। भुट्टे की खेती खूब होती है। नदी के कूल में धान के खेत भी रोपे जाते हैं। नदी के गर्भ में भी समतल भूमि गोड़कर धान की खेती की जाती है। नेपाल के खेत कुँएँ, रहट अथवा दौरी से नहीं भरे जाते हैं। अधिकतर प्रपातों से तथा नदी के ऊपरी भाग से नाली द्वारा पानी लाया जाता है, ताकि खेतों में पानी उँचाई से आप-से-आप पहुँच

जाय। इस प्रकार वहाँ के किसान खेत भरने से बच जाते हैं।

मारखू यहाँ से कुछ ही दूर पड़ता है। बीच में 'झूलन-पुल' सन् १९२९ ई० में श्री चन्द्रशमशेर जंगबहादुर राणा का बनावाया मिलता है। यहाँ भी डाड़ी से उतर जाना पड़ा। पुल पहले के पुलों-जैसा है। एक व्यक्ति के बोझ से ही हिलने लगता है। मार्ग में दो-तीन स्थान पर स्त्रियाँ रोटी, आलू की तरकारी, दारू तथा भरा कलशा और खाने के लिए कटोरियाँ लिए बैठी थीं। मार्ग में केला, बाँस, रामबाँस, पटुआ और उर्दी की खेती मिली। यह स्थान भी रमणीक है। यहाँ एक नाला नदी में आकर मिलता है। बकरी और मुर्गी प्रायः सभी घरों में दिखाई पड़ीं। मकान दो और तीन मंजिलों के बने हैं। मकान की दीवालें पत्थर के टुकड़ों और मिट्टी के गारे से बनी हैं। छाजन सरपत की देते हैं। मकानों में ओलती से करीब दस फीट नीचे फूस, खपड़ा अथवा टीन का दो फुट चौड़ा छाजन भी प्रायः रहा करता है। यह छज्जा मकान की मेखला-सी मालूम पड़ती है। इससे बरसात में दीवाल की रक्षा तो होती ही है, साथ ही मकान की सुन्दरता भी बढ़ जाती है। छत लकड़ी की धरनें रखकर लकड़ी की फराटियों और तख्तों से पाटते हैं। छतें पक्की नहीं बनतीं।

धान की खेती यहाँ बहुत ही समीप से देखने को मिली। जून के आरम्भ में ही यहाँ धान रोपा जा चुका था। सिंचाई की व्यवस्था ठीक तरह से यहाँ समझ में आ जाती है। यहाँ के सीढ़ीनुमा खेत हैं; अर्थात् एक खेत के बाद दूसरा खेत तीन फीट की निचाई पर पड़ता है। तीसरा खेत फिर दूसरे खेत से तीन

फीट की निचाई पर है और यही क्रम उँचाई से निचाई की ओर चला गया है। सबसे ऊपरवाले खेत में किसी सोते या जलप्रपात से आवश्यकतानुसार पानी लाते हैं। छः इंच की उँचाई पर नीचेवाले खेत में पानी जाने के लिए मेड़ काट देते हैं और इससे पानी नीचेवाले खेत में चला जाता है। इस प्रकार ऊपर से लेकर नीचे तक के खेत आप-से-आप भर जाते हैं। यदि खेतों में जल की आवश्यकता नहीं होती है तो सबसे ऊपर-वाले खेत में आते हुए पानी के रुख को दूसरी ओर कर देते हैं। पानी पहाड़ पर बहता हुआ निकल जाता है। इसका फल यह होता है कि यहाँ फसल कभी मारी नहीं जाती और न कभी सूखा पड़ने या खेत बह जाने का भय रहता है।

मारखू में नेपाल-राज्य का विश्राम-गृह है, जिसे दरबार कहते हैं। बाजार में भी चाय मिलती है। एक स्त्री तो ऐसा रूप बनाकर चाय की दूकान खोलकर बैठी थी कि दूर से मालूम होता था कि मुख पर चूना पुता है और भौंहें कोयले से रँग दी गई हैं। मेरे एक मित्र, जो चाय पीने के आदी थे, वहाँ चाय पीने को जाना चाहते थे; किन्तु मुझे बाध्य होकर उन्हें रोक लेना पड़ा। श्री श्रीप्रकाशजी भी थे। वे आ गए। दरबार के नौकर ने कहा कि चाय तैयार है, चलिए। हम लोग दरबार या बँगले में पहुँच गए। केवल गरम चाय के पानी के अतिरिक्त वहाँ और कुछ न था। सीमेंट की बनी फर्श पर हम लोग बैठकर कंडेन्स मिल्क मिलाकर चाय पीकर बाहर निकले। बँगला बड़े ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के बीच बना था। स्थान उज्वल और चेतनामय प्रतीत होता था। बँगले के सम्मुख काफी बड़ा मैदान था। कुल-

खानी गाँव से यह स्थान कुछ ऊँचाई पर है; परन्तु गर्मी यहाँ बढ़ गई थी।

अब चढ़ाई पुनः मिलने लगी। हम लोग बीस मिनट में ही ५०० फीट ऊपर चढ़ गए। ऊँचाई पर पहुँचते ही मिश्रित गर्म-ठण्डी हवा मिलने लगी। वहाँ पर स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि हम लोग दो हवाओं की सन्धि पर पहुँच गए हैं। पर्वत बिल्कुल सूखा था। रास्ता सबसे भयंकर मालूम होता था। घाटी की ओर वृक्ष लगे रहने से घाटी की गहराई की भयंकरता का प्रभाव हृदय पर नहीं पड़ता; परन्तु दाहिनी ओर हजारों फीट नीची घाटी का दृश्य, जिसमें एक क्षीण नाला श्वेत सूत्रवत् बहता चला जा रहा था, दिल हिला देता था। मार्ग पथरीला नहीं; बल्कि मिट्टी का था। पानी बरसने के कारण मार्ग में फिसलाहट हो गई थी। मेरा हृदय काँप उठा। यह विचार मन में आते ही कि यहाँ से गिरने का फल क्या होगा, मैंने अपने इष्टदेव का स्मरण किया। डाड़ीवालों से तीन बार कहा कि धीरे-धीरे चलो। डाड़ीवाले विश्वास दिलाते थे; परन्तु मन मानता नहीं था। एक स्थान पर रास्ता मुड़ता था। वहीं सोता था। डाड़ीवाले ने डाड़ी उतार दी। सब पानी पीने लगे। मैं घाटी की ओर न देखकर अपने से दो हाथ दूर बाईं ओर खड़े ऊँची दीवाल सरीखे पर्वत की ओर देखने लगा।

दो ही मिनट के पश्चात् एक दूर्वाच्छादित पर्वत-श्रेणी मिली। ढालुआँ पहाड़ मिला। ठण्ढी हवा मिली। मैंने सोचा कि भगवान् ने जान बचाई। अब मार्ग समतल था। घाटी दाहिनी ओर दूर छूटती जाती थी। सामने हँसता हुआ फुसलीचौक ग्राम

दिखाई दिया। हम लोग नीची भूमि में उतरने लगे। खेती दिखाई देने लगी। पुनः थोड़ा चढ़ाव मिला और फिर उतराव आरम्भ हो गया। कुलखानी के पश्चात् चीड़ के वृक्ष नहीं दिखाई पड़े थे; पर अब दूर पर दिखाई देने लगे। हम लोग शीशागढ़ी से करीब २५०० फीट नीचे उतर आए थे। मार्ग के किनारों पर ग्रामीणों के घर तथा बनियों की दुकानें मिलने लगीं। घरों के दरवाजों के दोनों तरफ कागज पर छपे नाग चपकाए हुए मिले, जिसे देखकर—काशी की नागपंचमी का दिन याद आ गया।

यहाँ की स्त्रियाँ धोती पहनती हैं। कमर के पास दो-तीन फेरा कपड़ा घुमाकर कमरबन्द-सी बाँध लेती हैं। वे काम करने में चुस्त और फुर्तीली मालूम पड़ती हैं। चीनी मिट्टी की बनी लाल रंग की माला बहुत पहनती हैं। शीशे की बहुत ही छोटी-छोटी गुरियों की कई लरों की माला पहनने का उन्हें विशेष शौक है। माँग में पूरा सिन्दूर भरना तथा टिकुली लगाना भी विशेष प्रचलित है। श्वेत तथा छपी हुई धोतियाँ वे पहनती हैं। पूरी बाँह की चोली पहनना तथा जूड़े में फूल खोंसना वहाँ की साधारण बात है। वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम दिखाई दीं।

चैत्य के आकार के मन्दिर प्रत्येक गाँव में तथा किसी भी आबादी के बीच में मिलते हैं। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि एक चैत्य में प्राचीन आर्य-शैली की मूर्ति-कला के आधार पर शरीर-विन्यासयुक्त नारद की चतुर्बाहु मूर्ति बनी थी। विष्णु की चतुर्भुज मूर्तियाँ तो वहाँ बहुत मिलती हैं। ये मूर्तियाँ अत्यन्त

प्राचीन काल की हैं। ये उस समय की मालूम होती हैं, जब कि मंगोलियन सभ्यता तथा वास्तुकला का प्रभाव नेपाल पर नहीं पड़ा था। मूर्तियों के रूप में आर्यों की आकृति है और कहीं भी मंगोलियन रूप की छाया नहीं मिलती। इस प्रकार की खण्डित तथा टूटी मूर्तियाँ अब भी उत्तरी हिन्दुस्तान के किसी-न-किसी गाँव में मिल जाती हैं। यदि यहाँ की इस मूर्ति-कला तथा दक्षिण भारत की मीनाक्षी एवं रामेश्वरम् की मूर्ति-कला की समानता की जाय तो विदित होगा कि एक ही काल की और एक ही शैली के कारीगरों द्वारा ये बनाई गई हैं। विष्णु की मूर्ति के साथ ही गणेश तथा वासुकी नाग की मूर्तियाँ भी मन्दिरों में साधारणतः दिखाई पड़तीं हैं। महादेव का मन्दिर तथा शिवलिंग एकाध जगह ही ७५ मील दूर की यात्रा में देखने को मिला होगा।

२ बजकर ३७ मिनट पर हम लोग चितलाँग के लिए रवाना हुए। दस मिनट चलने के पश्चात् ही चितराल ग्राम दिखाई देने लगा। यहाँ का दृश्य अपूर्व था। घाटी मुसकुरा रही थी। विस्तृत खेती फैली थी। यहाँ पर धान, जोन्हरी, मूँग, उर्द आदि की खूब खेती होती है। इस स्थान को छोटा नेपाल भी कहते हैं। यहाँ के लोग सुखी, चेतनामय, प्रसन्न तथा स्वस्थ दिखाई देते थे। खेतों में हल चल रहा था। यहाँ हलों को बैल खींचते हैं। हल उत्तरी भारत-जैसा ही पतला होता है। खेत में पानी भर जाने पर उसे जोतते हैं। जोतने के पश्चात् कुदाली से खेत को खूब औड़ते हैं। खेत जब खूब औड़ जाता है तो धान रोपते हैं। यहाँ की कुदाली विचित्र ढंग की होती है। वह हाथी के अंकुश-जैसी तीन फीट की होती है। लकड़ी का बेंट तीन फीट और

आधे से कुछ ऊपर फरसा की तरह बेंट के समानान्तर अंकुशाकार फल लगा रहता है। सूखे खेत को गोड़ने के लिए चौड़े नाटे फल का कुदाल लम्बा बेंट लगा होता है। यहाँ धान की रोपाई सामूहिक रूप से होती है। धान रोपने के समय परस्पर के सगे-सम्बन्धी और कम-से-कम पूरा घर खेत पर आ जाता है। उस दिन सब लोग खेत ही पर खाना खाते हैं। खेतों में खाद सूखी पत्तियों की डालते हैं। पत्तियाँ जंगलों से बटोरकर लाई जाती हैं। यहाँ का मार्ग सीधा और कुछ समतल है। डाड़ीवाले घोड़ों की तरह दुलकी लगाते हैं। डाड़ी पर बैठा व्यक्ति घोड़े की सवारी का अनुभव करता है। वह डाड़ी पर उछलने लगता है।

हम लोग ३ बजकर ३० मिनट पर चितलांग की आखिरी आबादी पर पहुँच गए। यहाँ छोटा-सा बाजार है। हम लोगों को भूख लगी थी। बाजार में दो-चार चाय की दुकानें थीं; किन्तु इतनी गन्दी थीं कि उनके यहाँ चाय पीने की इच्छा नहीं होती थी। दुकानों पर प्याज, लहसुन, चिउड़ा, चावल, आलू, सलाई, सिगरेट, दही, बकुला (एक प्रकार का बीज), पटमास, रोटी, आलू की तरकारी, चीनी और गुड़ मिलता था। श्री श्रीप्रकाशजी के साथ जलपान तथा चाय पीने का सामान था। तुरन्त एक दुकान से गरम पानी लेकर चाय बनाई गई। उनके साथ आए हुए समोसे और पेड़े पर हम लोग टूट पड़े। कुछ खाने के पश्चात् आँखें खुलीं। बाजार में दो चैत्याकार के छः फीट ऊँचे मन्दिर थे। एक में पत्थर का ढोंका सिन्दूर लगा हुआ रखा था और दूसरे में शेषाच्छादित विष्णु की नवीन ढंग

की कलापूर्ण मूर्ति थी।

४ बजकर ३० मिनट पर हम लोगों ने नेपाल की कठिन चढ़ाई आरम्भ की। यह चढ़ाई चन्द्रगिरि की चढ़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। चन्द्रगिरि की चोटी चितलांग से ही दिखाई देती है। पर्वत खूब हरा-भरा है। वृक्षों की अत्यन्त सुन्दर सघन हरित पंक्तियाँ हैं। वाक्ष के वृक्षों की पंक्तियाँ मार्ग के दोनों किनारों पर धूप में कुञ्ज का काम देती थीं। १५ मिनट चलने के पश्चात् अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई मिलने लगी। पैर जमाना कठिन हो रहा था। मार्ग की मिट्टी पानी के कारण बह गई थी, केवल पत्थर और पत्थर के ढोंके रह गए थे। करीब ५ बजे तक चढ़ने के पश्चात् ठण्ढक मिली। घने वृक्ष-समूह के बीच से मार्ग जाता था। १५ मिनट की और चढ़ाई के पश्चात् हम लोग बादलों के बीच आ गए। पहाड़ इस स्थान पर वृक्षों से इतना घना हो गया था कि कठिनता से कुछ दूर की चीज देखी जा सकती थी।

इस स्थान से चितलांग की घाटी का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ता था। पतली सड़क सर्प की तरह और नाला चाँदी के तार की तरह दिखाई दे रहा था। खेतों में भरा हुआ जल और उनमें उगी हरियाली ऐसी दिखाई दे रही थी मानों मैदान में फैलाए धोबियों के रंग-बिरंगे वस्त्र हों।

चन्द्रगिरि के उत्तुंग शिखर पर हम लोग ५ बजकर २३ मिनट पर संध्याकाल में पहुँचे। यह चोटी समुद्र की सतह से ७ हजार फीट ऊँची है। यहाँ पर विश्रामगृह, पानी पीने के लिए पाइप तथा छोटा-सा खुला मैदान है। चाय की दो दुकानें

थीं। वहाँ औरतें चाय बेच रही थीं। एक ओर चितलांग की घाटी और दूसरी ओर काठमाण्डू की घाटी है। काठमाण्डू की उपत्यका में जाने के लिए चन्द्रगिरि के दर्रे से होकर उतरना पड़ता है। ठण्ढक इतनी बढ़ गई थी कि मुझे बाध्य होकर ऊनी मिरजई पहननी पड़ी। यहाँ से तीन हजार फीट ठीक नीचे की घाटी का दृश्य दुनियाँ के इने-गिने श्रेष्ठ दृश्यों में से एक है। यदि नेपाल में केवल इसी दृश्य को देखने के लिए आना पड़े तो अवश्य आना चाहिए। घाटी का सर्वतोव्यापी दृश्य और इसमें खिलौने-जैसे चार नगर मन में विचित्र भावना उत्पन्न करते हैं।

घाटी के सुदूर पूर्वी छोर पर पर्वतमाला के बीच यहाँ का प्राचीन नगर भक्तपुर या भक्तनगर है। मध्य में अपनी अनुपम शोभा के साथ प्राचीन और अर्वाचीन ढंग के भवनों से युक्त काठमाण्डू नगर शान्त रूप से स्थित था। दक्षिण-पूर्व के पार्श्व में नेपाल का सबसे बड़ा नगर ललितपत्तन, जिसने शताब्दियों से उथल-पुथलों को देखा है, मुसकुरा रहा था। पश्चिम ओर एक पहाड़ी पर कीर्तिपुर अपनी प्राचीन कीर्ति को लिए हुए स्थित था। पहाड़ी पर स्वयम्भूनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर घाटी की ओर देखता हुआ मानव-जीवन की क्षणिकता पर हँस रहा था। यहाँ के खेत, बगीचे तथा मैदान गलीचों पर कढ़े बेल-बूटों के समान दिखाई पड़ रहे थे। पवित्र पयस्विनी, बागमती तथा विष्णुमती नेपालियों को उनके इतिहास की याद दिलाती हुई महासमुद्र से मिलने के लिए अपनी चिरयात्रा में रत थी।

चन्द्रगिरि से थानकोट के लिए हम लोग उतर पड़े। कुछ पानी पड़ रहा था। अन्धकार फैलने ही वाला था। किसी-न-

किसी प्रकार हम लोगों को थानकोट पहुँचना था। मार्ग में कहीं विश्राम-स्थान न था। खड़ी उतराई थी। हम लोग वेग से उतर पड़े। मैंने बहुत से पहाड़ी स्थानों को देखा है; परन्तु चन्द्रगिरि से थानकोट तक मार्ग के दोनों ओर सुन्दर हरे वृक्षों की जितनी कुञ्जें पंक्ति-बद्ध तीन हजार फीट नीचे तक चली गई हैं, वह वर्णनातीत है।

थानकोट रजत तोयदों द्वारा शनैः-शनैः आवृत होने लगा था। विदित होता था जैसे किसी ने धुनी हुई रुई उड़ा दी हो और उसने थानकोट को आच्छादित कर लिया हो। देखते-ही-देखते पाँच मिनटों में यह आवरण विशृंखलित हो गया। बादल छिटक आए, मानों प्रस्फुटित उज्वल कमल की माला किसी ने मंजुश्री की उपत्यका पर आकाश से चढ़ा दी हो। पन्द्रह मिनट के भीतर ही बादल पश्चिमी हरित पर्वतमाला में जाकर विश्राम-से लेने लगे।

सवा छः बजे सायंकाल तक उतराई को उतरते-उतरते यहाँ पक्षियों का कलरव सबसे पहले सुनाई पड़ने लगा। जब ऊपर दृष्टि उठी तो देखा कि जिस चन्द्रगिरि को छोड़कर हम आए थे, वहाँ भूरे बादल फैलकर चन्द्रगिरि के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वृक्षों के बीच से ४५ मिनट तक और चलते हुए हम लोग पानी-घाट पर पहुँच गए। यह स्थान थानकोट की आबादी का छोर था। हम लोगों से पासपोर्ट माँगा गया। नाम लिखा गया। वहाँ के लोगों ने अपने घरों से निकलकर किस आश्चर्य और किस आशा से हम लोगों की ओर देखा इसे मैं नहीं कह सकता; किन्तु यह ठीक था कि सभी अनुभव कर रहे थे कि हम लोग

एक विशेष उद्द श्य लेकर आए हैं, जिसपर नेपाली जनता का भाग्य बहुत कुछ निर्भर करता था।

हम लोग ठीक ७ बजकर ५ मिनट पर थानकोट में पहुँचे। श्री श्रीप्रकाशजी करीब आध घण्टा पहले पहुँचकर हम लोगों की बाट देख रहे थे। यहीं पर महाराज की कार और सामान ढोने के लिए ट्रक खड़ी थी। यहाँ कुछ बालकों ने हमें घेर लिया, जो पैसा माँगना, बात-बात में त्रस्त होना, फटा-पुराना वस्त्र पहनना, दाँत चियारना और दूसरों के आश्रित होकर रहना अभी सीख रहे थे। मोटर चल पड़ी। हम लोग सात मील का मार्ग समाप्त कर, प्रकृति की गोद से निकलकर, बिजली और आधुनिक प्रसाधनों से युक्त काठमांडू में पहुँच गए। अतिथि-गृह में सरदार श्री गुजमान तथा श्री पण्डित रुद्रराज पाण्डेय ने हम लोगों का स्वागत किया। मैंने सोचा कि यह जीवन कितने उथल-पुथल से भरा है। कहाँ दस घण्टा पहले हम लोग संसार के सबसे बीहड़ स्थान में थे और अब बँगले में बिजली की रोशनी के बीच कुर्सी, टेबुल आदि से सुसज्जित कमरे में बैठे हैं।

गुह्येश्वरी

कहा जाता है कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। साधारणतः हिन्दू-जनता का विश्वास है कि नेपाल-स्थित पशुपतिनाथ के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता। कहना न होगा कि नेपाल के हिन्दुओं का भी यही विश्वास है। डाड़ी ढोनेवाले श्रमिक ने तो मुझसे यहाँ तक कहा कि शिवरात्रि के

दिन राणा लोहे का एक मोटा छड़ पशुपतिनाथ के लिंग से स्पर्श कराते हैं और लोहा सोना हो जाता है। उसी से वर्ष-पर्यन्त सेना का व्यय चलता है। महाराज अपने कुछ साथियों को भी सोना बाँटते हैं। उत्तर भारत में भी ऐसी एक किंवदन्ती प्रचलित है कि दक्षिण में किसी समय स्वर्ण की वर्षा हुई थी, अतएव दक्षिण के लोग सोना बहुत पहनते हैं। इसी प्रकार नेपाल में भी प्रचलित है कि शिवलिंग को स्पर्श कराकर लोहा सोना बना लिया जाता है, इसलिए नेपाल के राजा के यहाँ सोने का भाण्डार भरा है। जब सोना राज्य-कोष में कम हो जाता है तो महाराज लोहे से सोना बनाकर रख लेते हैं। इसी कारण पशुपतिनाथ का दर्शन लोग दूर से करते हैं और कोई मूर्ति को स्पर्श नहीं करने पाता, आदि-आदि। अधिक तर्क करने पर यह कहा जाता है कि वर्तमान् शिवलिंग लोगों के दर्शन के लिए है; किन्तु वास्तविक शिवलिंग, जिसके स्पर्श से लोहा सोना होता है, इस दृश्य शिवलिंग के भीतर है, जिसका रहस्य केवल नेपाल के महाराज जानते हैं। कहना न होगा कि ये सब बातें थोथी किंवदन्तियाँ हैं। शताब्दियों से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सुनाती चली आई है और सुनाती चली जायगी।

हम लोग कोई कार्य करने के पूर्व पशुपतिनाथ का दर्शन कर लेना चाहते थे। नेपाल में पशुपतिनाथ का दर्शन प्रत्येक प्राणी की जीवनचर्य्या का अविभाज्य अंग है। राज्य का प्रत्येक कार्य पहले पशुपतिनाथ को अर्पितकर किया जाता है। महाराज श्री ३ सरकार की सुधार-संबंधी घोषणा में भी पशुपतिनाथ के आशीर्वाद, कृपा और उनसे हार्दिक प्रार्थना का उल्लेख किया

गया है। इसलिए यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि नेपाल-वासियों के सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी कार्यों को आरम्भ करने के लिए श्री पशुपतिनाथ का एक विशिष्ट स्थान है।

पशुपतिनाथ का बिना दर्शन किए इतने बड़े सुधार के काम में हाथ लगाना हिन्दू-संस्कृति एवं भावना के विपरीत बात होगी, यह भावना हम लोगों के मन में बराबर उठ रही थी। हृदय में उत्साह उत्पन्न हो रहा था कि भगवान् का दर्शन कर कार्य आरंभ किया जाय। हम लोगों ने दर्शन करने का निश्चय किया। अत-एव ठीक १० बजे महाराज के यहाँ से दो कारें ता० १४ जून को आईं और हम लोग भगवान् के श्रीचरणों में अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए काठमाण्डू से तीन मील दूर उत्तर-पूर्व की ओर चल पड़े।

जब हम लोगों की मोटरें पशुपतिनाथ का मन्दिर छोड़कर आगे बढ़ीं तो आश्चर्य हुआ कि हम कहाँ चले? साथ में सूबा मनीराम भण्डारी थे। पूछने पर मालूम हुआ कि पशुपतिनाथ का दर्शन करने के पहले गुह्येश्वरी का दर्शन करना आवश्यक है।

मार्ग बड़ा सुन्दर है। बागमती नदी बाईं ओर बहती है। सड़क नदी के साथ चलती है। सड़क और नदी के बीच हरित वृक्षों की पंक्ति है। घाट कहीं-कहीं बँधे हैं, जिन्हें देखकर काशी की याद आ गई। मन में सोचा कि यदि कहीं काशी में भी गंगा के किनारे इसी प्रकार वृक्षों की पंक्तियाँ होतीं तो क्या ही अच्छा होता?

मन्दिर के द्वार पर ही मालिन और माली मिले। फूल की डाली लेकर हम लोगों ने मंदिर में प्रवेश किया। हम लोगों में

से कितने ही इस भ्रम में थे कि यही पशुपतिनाथ का मन्दिर है। मन्दिर के भीतर जाकर जब शिवलिंग के स्थान पर समतल भूमि में देवी का गुह्य आकार दिखाई दिया तो हमारे कितने ही साथियों का स्वप्न भंग हुआ।

मन्दिर चौखूटा है। पेगोड़ा, चैत्य या हिन्दू-मन्दिर-शैली नहीं है। भीतर विस्तृत आँगन है। आँगन के चारों ओर रहने के लिए मकान बने हैं। देवी का स्थान है, अतएव पुजारी पुरुष और स्त्री दोनों दिखाई दिए। देवस्थान आँगन की सतह से करीब तीन फीट नीचा होगा। मन्दिर के प्रांगण में चार फीट की उँचाई पर पाठ करने के लिए कोठरी सरीखे स्थान बने हैं, जिनमें पण्डित लोग पाठ कर रहे थे।

समतल भूमि में चौखूटा आँगन बना है। देवस्थान के चारों ओर ढाई फीट चौड़ी परिक्रमा है। बीच आँगन ही देवी का स्थान है। रजत-मण्डित कुछ उभड़ा-सा स्थान है। उसमें गोल छिद्र है। उस छिद्र में जल भरा रहता है। जलस्थान गोल मूर्ति के आकार की वस्तु से बन्द कर दिया जाता हैं। भक्त इच्छा होने पर जल लेकर ग्रहण कर सकता है। ऊपर की ओर चाँदी का चौखूटा छत्र है, जिससे देवस्थान का पूरा भाग ढँका रहता है। यह स्थान देखने पर मुझे कामरूप कामाख्या देवी के मन्दिर का स्मरण हो आया; जब मैं सन् १९२६ ई० की कांग्रेस में गोहाटी गया था तो देवी का दर्शन किया था। कामाख्या देवी का मन्दिर भी नीचे उतरकर मिलता है। यहाँ भी मूर्ति के स्थान पर केवल भग-सा स्थान बना है। उसमें भी जल रहता है, जिसे लोग प्रसाद-स्वरूप लेते हैं। जब मैं दर्शन करने गया था तो

देखा कि एक कबूतर की बलि देकर सीढ़ी पर किसी ने रख दिया था। यहाँ मैंने बलि होते तो नहीं देखा; किन्तु विस्तृत प्रांगण के एक बरामदे में किसी पक्षी का पंख उखाड़-उखाड़कर एक प्रौढ़ा स्त्री साफ कर रही थी।

गुह्येश्वरी देवी का स्थान एक शक्तिपीठ है। ऐसी गाथा प्रसिद्ध है कि दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में जब शिव को नहीं आमन्त्रित किया था तो सती अपने पति शिवजी के मना करने पर भी पिता के यज्ञ में गई थीं। उस समय यज्ञ में अपने पति का भाग न देखकर उनका अपमान जब उन्हें सह्य नहीं हुआ तो सती ने अपना शरीर त्याग दिया। इस समाचार को सुनकर शिव अत्यन्त कुपित हुए और उनके गणों ने दक्ष का यज्ञ भंग कर दिया। शिवजी सती के मोह के कारण सती का शरीर लेकर भूमण्डल में विचरण करने लगे। विष्णु भगवान् ने शिव का विरह तथा मोह देखकर चक्र द्वारा सती के शरीर को काट दिया, जिससे शिव का मोह नष्ट हो जाय। चक्र द्वारा काटे जाने पर सती के जितने अंग थे, सब कहीं-न-कहीं जा गिरे। जहाँ-जहाँ अंग गिरे वहाँ-वहाँ शक्तिपीठें स्थापित हो गईं। कामरूप कामाख्या में योनि गिरी, अतएव वहाँ योनिरूप पाषाण-प्रतीक बनाकर पूजित हुई। नेपाल में इस स्थान पर उनका गुह्य स्थान गिरा, अतएव गुदारूप पाषाण-प्रतीक बनाकर उसकी पूजा की जाने लगी।

यहाँ पर गुदास्थान-जैसा ही गोल आकार बना है। उसमें हाथ डाला जा सकता है। मुझसे एक सज्जन मिले और उन्होंने कहा कि नेपाल के एक प्राचीन राजा ने इस छिद्र की गहराई

जानने के लिए इसमें बाँस डलवाया था। बाँस बहुत दूर तक चलता गया और रक्त निकलने लगा। बाँस तुरंत निकाल लिया गया। इस छिद्र के जल की एक विशेषता है कि वह कभी घटता-बढ़ता नहीं। इसमें से चाहे जितना भी जल आचमन के लिए निकाला या पूजा के समय भरा जाय; लेकिन जलतल सम ही रहेगा।

देवी जब किसी पर प्रसन्न होती हैं तो छिद्र में हाथ डालने पर ताजा सन्तरा, केला या मछली उसे मिल जाती है। मुझसे एक सज्जन ने, जो राज्य के उच्च कर्मचारी हैं, विश्वास के साथ कहा कि उन्हें एक बार पूजा के समय छिद्र में एक सन्तरा मिला था। उस दिन से उनका भाग्य खुल गया और निरन्तर आर्थिक, पारिवारिक आदि उन्नतियाँ होती गईं। वे अपनी उन्नतियों को देवी का प्रसाद समझते हैं।

मन्दिर से बाहर निकलते ही सुन्दर-सुन्दर बालक-बालिकाओं के समूहों ने हम लोगों को घेर लिया। उनके सुन्दर शरीर पर चिथड़े लिपटे थे। उनसे उस समय पिण्ड छूटा जब हमारी मोटर श्री पशुपतिनाथ की ओर रवाना हुई।

श्री पशुपतिनाथ

मन्दिर के प्रवेशद्वार में प्रविष्ट होते ही एक हेमरंजित भीमकाय नन्दी पर दृष्टि पड़ती है। पशुपतिनाथ का हेमरंजित मंदिर पेगोड़ा-शैली का बना है। इसमें पीतल के पत्र पर सुवर्ण का रंग किया गया है। वहाँ पर हेमरंजित त्रिशूल और डमरू काशी के

विश्वनाथ-मन्दिर के समान मिला। यहाँ की स्थिति को देखकर काशी की स्मृति हरी हो गई। यदि हम पशुपतिनाथ के स्थान को नेपाल की 'काशी' कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

मन्दिर के नीचे पवित्र बागमती नदी के दोनों ओर घाट बने हैं। बागमती के पश्चिम तट पर पशुपतिनाथ का मन्दिर और पूर्वी तट पर चैत्याकार मन्दिरों की पंक्ति है। मन्दिर का ऊपरी भाग काशी के मन्दिरों अथवा पेगोड़ा के समान नहीं है; बल्कि बौद्ध शैली से मिलता है। मन्दिरों की पंक्ति करीब दो सौ गज के खुले मैदान में फैली है। राणा लोग जब मरते हैं तो राजपूत राजाओं की छतरी के ढंग पर एक मन्दिर उनके नाम से बनाकर शिवलिंग स्थापित कर दिया जाता है।

पश्चिमी तट पर घाटों की पंक्ति काशी के घाटों की भाँति काफी दूर तक चली गई है। यहाँ भी काशी के घाटों के समान घाट पर बुर्जियाँ, मढ़ी तथा घाटियों के बैठने के लिए चौखूटे चबूतरे बने हैं। काशी की तरह ऊँची सीढ़ियाँ चढ़कर पशुपतिनाथ के मन्दिर में पहुँचने का मार्ग बना है। मन्दिर के ऊपर से नदी, घाट तथा पर्वतीय दृश्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। बागमती नदी पर चीन-शैली के बने दो पुल भी हैं।

मन्दिर पेगोडा-शैली का बना है। नेपाल में चैत्य और पेगोड़ा-शैली के मन्दिर अधिक दिखाई पड़ते हैं। यही यहाँ की प्राचीन वास्तुकला है। काशी के ढंग के मन्दिर बहुत कम बने हैं। मुख्यतः ऊपर निर्दिष्ट ढंग की ही इमारतें दिखाई देती हैं।

भगवान् बुद्ध ने ईसा से ५६३ वर्ष पूर्व नेपाल-राज्य के लुम्बिनी नामक स्थान में जन्म लिया था। ईसा से ५२० वर्ष पूर्व

भगवान् बुद्ध ने नेपाल की उपत्यका को अपने पवित्र चरण-कमलों से पवित्र किया था। ईसा से ३६० वर्ष पूर्व जैनऋषि भद्रबाहु का अवसान भी यहाँ की एक उपत्यका में हुआ था। लुम्बिनी में आज से १० वर्ष पूर्व मैंने यहाँ पर अशोक का एक स्तम्भ देखा था। स्तम्भ बिजली गिरने से फट गया है। नेपाल-राज्य ने इस स्थान को सुरक्षित कर दिया है। राज्य की ओर से यात्रियों के ठहरने के लिए विश्रामस्थान है। लगभग एक मील पर आम की एक बड़ी बारी है, जो बौद्ध-ग्रंथों में वर्णित आम्र-वन की याद दिलाती है। यहाँ पर एक छोटा-सा मन्दिर भी है, जिसे स्थानीय लोग रुमिनदेई का मन्दिर कहते हैं।

मन्दिर के बाहर एक घना वृक्ष संभवतः पीपल या बरगद का है, जहाँ काशी के पढ़े एक महात्मा कुछ विद्यार्थियों को अक्षर-ज्ञान करा रहे थे। राज्य की ओर से विश्रामस्थान में ठहरनेवालों को भोजन का सामान अमूल्य दिया जाता है। मन्दिर के समीपस्थ गाँवों की स्त्रियाँ चावल की पूड़ी आदि बनाकर देवी पर चढ़ाती हैं। लुम्बिनी के समीप ही एक नदी बहती है। मैंने उस निर्जन नदी के निर्मल जल में चक्रवाकों को सामूहिक रूप से जल-विहार करते तथा चहकते देखा। लुम्बिनी में ईंटा-पत्थर की इमारतें या खँड़हर भी नहीं हैं। हाँ, वहाँ के स्थान की शान्ति का प्रभाव हृदय पर अवश्य पड़ता है, जिसे जीवन-पर्यन्त भुलाया नहीं जा सकता।

अशोक ने भगवान् बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी ग्राम में एक स्तम्भ खड़ा किया है। स्तम्भ का शिलालेख अब भी पढ़ा जाता है और इस प्रकार है—

देवान पियेन पियदसिन लाजिन "वीसति वसाभिसितेन अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्य मुनि ति सिला बिगडभी चा कालापित सिलाथभे च उस पापिते हिद भगवं जाने ति लुमिनि गामे उबलि के कटे

अठ भागिए च"

इससे स्पष्ट है कि सम्राट् अशोक अपने समय में नेपाल-राज्य में अवश्य आए थे। यह भी प्रसिद्ध है कि सम्राट् ने नेपाल-राज्य को अपने राज्य में मिला लिया था। वह काठमाण्डू तक ईसा से २५० वर्ष पूर्व आए थे। उन्होंने भगवान् बुद्ध के जीवन से संबंधित ललितपत्तन के चारों ओर चार स्तूप तथा मध्य में एक स्तूप बनवाया था। काठमाण्डू से ललितपत्तन थोड़ी ऊँचाई पर दो मील की दूरी पर स्थित है। ललितपत्तन को ललितपाटन, ललितनगर तथा ललितपुर भी कहा जाता था। अब केवल ललितपाटन के नाम से पुकारा जाता है।

यह भी प्रसिद्ध है कि अशोक की कन्या चारुमती यहाँ आकर बस गई थी। उसने पाटलिपुत्र के आधार पर ललित-पत्तन नगर को बसाया था। इसका एक प्राचीन नाम देवपत्तन भी है। देवी चारुमती के नाम से बौद्धनाथ के मार्ग में एक चारुमती-स्तूप मिलता है। यह चारुबिल गाँव में है। स्तूप का रूप-रंग प्रमाणित करता है कि यह अपने मौलिक रूप में सबसे प्राचीन है। लोगों के विश्वास तथा नेपाल में बौद्ध प्रभाव को देखकर यह निश्चित-सा है कि भगवान् बुद्ध यहाँ अवश्य आए थे और अशोक ने उन सभी स्थानों पर स्तूप बनवाया था, जिनका सम्बन्ध भगवान् के जीवन से स्थापित हुआ था।

नागलो-सागर में देवानांप्रिय प्रियदर्शिन अशोक ने स्तम्भ लगवाया था। निम्नलिखित शिलालेख स्तम्भ पर है—

"देवानंपियेनपियदसिन लजिन चोदसवसाभिसितेन बुधस कोनाकमनस थुवे दुतियं वढिते······साभिसितेन च अतन आगच महीयते······थापिते।"

एशिया के पूर्वी तथा उत्तरी भागों में स्थित तिब्बत, चीन आदि देशों से आवागमन का मार्ग न होने के कारण नेपाल का सम्बन्ध अन्य देशों से हो गया था। भगवान् बुद्ध का जन्म-स्थान एवं भ्रमण-स्थान होने के कारण भी चीन आदि देशों से यात्रियों का आवागमन नेपाल में बढ़ गया था। अतः अन्य देशों के साथ पारस्परिक विचार-विनिमय तथा चीन एवं जापान के बौद्धोपासक शिल्पियों के प्रभाव से उनकी वास्तुकला के आधार पर यहाँ के बौद्ध मंदिरों एवं चैत्यों का निर्माण हुआ था। आगे चलकर उनकी वास्तुकला को नेपाल के शिल्पियों ने धीरे-धीरे अपना लिया। अतः नेपाल के चैत्यों में आर्य तथा पेगोड़ा एवं चीन और जापान की शैलियों के प्रभाव स्पष्ट लक्षित होते हैं।

पेगोड़ा-शैली का काल इन चैत्यों के निर्माणकाल से प्राचीन नहीं हो सकता। पेगोड़ा-शैली का विकास इन चैत्यों की रचना के साथ ही हुआ है। जापान के कुछ पेगोड़ा तो बिल्कुल नेपाल से मिलते हैं। सोलहवीं शताब्दि के मध्य में नेपाल-स्थित चीन के राजदूत ने यहाँ एक नौमंजिला शिखर देखकर अत्यंत आश्चर्य प्रकट किया था। श्याम, मलाया, बर्मा, जापान और नेपाल के पेगोड़ा का मूल-स्थान एक ही है और वह है चीन। पेकिन के समीप नान-काउ-पास का निर्माणकाल सन् १३४५

ईस्वी है। उसकी कला भक्तगाँव के दरबार के द्वार की कला से बिल्कुल मिलती है, जो नान-काउ-पास के चार शताब्दि पश्चात् बनाया गया था। दोनों स्थानों के बीच लगभग दो हजार मीलों का अंतर है।

प्राचीन काल में नेपाल का सम्बन्ध पूर्वीय देशों से आज की अपेक्षा अधिक था। नेपाल में भारतीय वास्तुकला और सुदूर पूर्वीय वास्तुकला का मिलन हुआ था तथा नेपाल के नेवार लोगों ने पेगोड़ा-शैली को केवल देवस्थानों तक ही सीमित नहीं रखा था; बल्कि अपने जातीय जीवन की कला का आधार बना लिया था। यह कला चीन की न होकर उनकी हो गई, जिसमें वे समय एवं अवस्था के अनुसार परिवर्तन, संशोधन एवं परि-वर्धन करते रहे हैं।

पेगोड़ा-शैली अपनाने का दूसरा कारण यह मालूम होता है कि यहाँ का पत्थर विंध्यपर्वत की तरह पक्का और टिकाऊ नहीं होता। साथ ही, जंगली लकड़ियों की अधिकता के कारण चौकोर पेगोड़ा के प्रकार का मंदिर या मकान लकड़ी से बना लेना अत्यंत सरल, सस्ता और टिकाऊ होता है। अतएव नेवारी लोगों में ही नहीं, प्रत्युत नेपाल की समस्त घाटियों में भारतीय वास्तु एवं निर्माण-कला पूर्णरूप से विकसित न हो सकी और पेगोड़ा की सरल रचना-शैली ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुई।

पशुपतिनाथ का मंदिर जिस स्थान पर बना है, वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बहुत ही लुभावना है। यहाँ पर इटली के वेनिस और काशी की सुंदरता की प्रगट प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार काशी के लिए कहा जाता है कि भगवान् के

त्रिशूल पर वह बसी है और शिव की अत्यंत प्रिय भूमि है। उसी प्रकार पशुपतिनाथ को यह स्थान भी अत्यंत प्रिय बताया जाता है। प्राचीन कथा है कि भगवान् शिव ने एक बार प्रयाण किया था। वे मृग के रूप में शेषमत्तक-अरण्य में आए थे। जिस स्थान पर भगवान् ने मृग-रूप में विचरण किया था उसी स्थान पर पशुपति का मन्दिर निर्माण किया गया है। शिव के भिन्न-भिन्न नामों में 'पशुपति' नाम भी है। उन्हें पशुओं के ईश्वर के रूप में माना गया है और अधिक सम्भव है कि इसी लिए उनका नाम 'पशुपतिनाथ' रख दिया गया हो।

शिव संहारक देवता माने गए हैं, इसी लिए काशी महा-श्मशान-भूमि कही जाती है। हिमालय में भी पशुपतिनाथ का स्थान श्मशान-भूमि ही है। मन्दिर के नीचे बागमती के पवित्र समतल प्राकार पर चिताएँ लगाई जाती हैं। यहाँ लोग मरने के लिए उसी प्रकार आते हैं, जैसे काशी में। पशुपतिनाथ के मन्दिर के नीचे बागमती के जल में मृत्युमुख व्यक्ति का पैर रखकर उसका अन्तिम स्वाँस टूटना स्वर्ग में जाना समझा जाता है।

पशुपतिनाथ का मन्दिर दो मंजिला है। दोनों मंजिलों की छतों पर हेमरंजित पीतल चढ़ा है। सोना इस प्रकार पीतल पर चढ़ाया गया है कि दूर से सोने की तरह चमकता है। इस प्रकार सोने से चमकते हुए कई मन्दिर उपत्यका में हैं।

मन्दिर में चार द्वार हैं। द्वारों पर चाँदी चढ़ी है। मन्दिर की ऊपरी छत भी चाँदी की है। किवाड़ों पर चढ़े हुए चाँदी के पत्रों पर अनेक प्रकार की शिव-मूर्तियाँ उभड़ी हुई बनी हैं और कहीं-कहीं उनके नीचे उनके नाम भी नागरी में लिखे हैं। संग-

मरमर की बनी सीढ़ियों में तथा फर्श पर काशी के विश्वनाथ-मन्दिर के समान रुपये लगे हैं। गर्भगृह के द्वार के ऊपर रुद्राक्ष के दानों से 'पशुपतिशरणम्' और 'युद्धशरणम्' लिखा है। युद्ध-शमशेरजंगबहादुर राणा यहाँ के पूर्व प्रधानमन्त्री अर्थात् श्री ३ सरकार भी थे। छतों में रुद्राक्ष के दानों का बना हुआ कमण्डल, माला और तोरणादि लगे हैं। मन्दिर में प्रवेश करने पर तीन ओर के द्वारों से लोग दर्शन कर सकते हैं। चौथा द्वार मन्दिर के प्रांगण का मुख्य प्रवेशद्वार तथा नन्दी के ठीक सम्मुख पड़ता है। इस द्वार और गर्भगृह के मध्य में एक छोटी-सी कोठरी पड़ती है, जिसमें पूजा का सामान रखा जाता है। इस कोठरी के कारण दर्शन में किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़ती; क्योंकि दोनों द्वार एक दूसरे की सिधाई में हैं।

अर्घे में लगभग डेढ़ फीट के व्यास का साढ़े तीन फीट ऊँचा शिवलिंग स्थित है और लिंग में चार मुख चारों द्वारों की ओर बने हैं। मुख्यद्वार की ओर के मुख के मस्तक पर मुकुट है। उसके बायें ओर के मुख के मस्तक पर बुद्ध भगवान् के मस्तक के सरीखे घुँघरुआ बाल हैं। तीसरे पीछेवाले मुख के मस्तक पर जटा बाँधी है। यह मुख और जटा वैसी ही है, जैसा कि बुद्धगया में तपस्या करते हुए भगवान् बुद्ध के मस्तक पर दिखाई गई है। दक्षिण पार्श्व के चौथे मुख के मस्तक की जटा कुछ ऊँची और मुख-मुद्रा गम्भीर है। मुख के नीचे दोनों करतल उभड़े हुए दिखाए गए हैं, जिनमें दाहिना करतल काशी के सारनाथ की बुद्धमूर्ति की भाँति अभयदान-मुद्रा में है और दूसरे वाम कर-तल की भूमिस्पर्श-मुद्रा है।

शिवलिंग साधारण है । इतने ऊँचे लिंग काशी में बहुत से स्थानों पर हैं; किन्तु शिवलिंग में चार मुख होना नहीं देखा गया है । चार मुख ब्रह्मा को होता है । शिवजी का पाँच ही मुख वर्णन किया जाता है । पूछने पर वहाँ के लोग बताते हैं कि चार मुख और एक लिंग; अर्थात् मुखों के बीच में ऊपर का उठा हुआ लिंग का हिस्सा ही पाचवाँ मुख है । यह व्याख्या वस्तुतः संगत नहीं प्रतीत होती ।

मेरे विचार से इस शिवलिंग के चार मुख भगवान् बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं की प्रतीक हैं; अर्थात् जन्म, तपस्या, धर्मचक्र-प्रवर्तन तथा मृत्यु । यदि यह बात न होती तो मुकुट, घुँघराले बाल, जटा आदि भिन्न-भिन्न रूप क्यों दिखाए जाते ? शिव से राजमुकुट और घुँघराले बालों से क्या संबंध है ? क्योंकि शिव परम योगी हैं, इसलिए जटा का होना स्वाभाविक अवश्य है; किन्तु उसके साथ चन्द्रमा और सर्प का होना भी अनिवार्य है । शिव की मूर्ति में बिना चन्द्रमा के मस्तक और बिना सर्प की जटा होने से बुद्ध की जटावाली मूर्ति से उसका कोई अन्तर नहीं रह जाता । मुख की आकृति देश और काल के अनुसार अवश्य बदला करती है । उदाहरणस्वरूप बुद्ध की मूर्तियों में श्याम, चीन, जापान, वर्मा, सारनाथ, मथुरा, तक्षशिला और गान्धार की मुखाकृतियों में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है यद्यपि मुद्राओं के विन्यास में अन्तर नहीं है । मुद्राओं के कारण ही बुद्ध भगवान् की मूर्ति पहचानी जाती है । किन्तु शिव की किसी मूर्ति में अभयदान एवं भूमिस्पर्श-मुद्रा के करतल कहीं अन्यत्र देखने में नहीं आए हैं । काशी के सारनाथ में बुद्ध भगवान् की मूर्ति की

अभयमुद्रा एक विशेष वस्तु है। आगे चलकर श्री शंकराचार्य-जी की मूर्ति में भी इसकी नकल करने की चेष्टा कहीं-कहीं की गई है; किन्तु उसमें मौलिकता नहीं आ पाई है।

इन सब बातों के पूर्वापर विवेचन से स्पष्ट है कि नेपाल के पशुपतिनाथ के लिंग की चारों मूर्तियों में बुद्ध की मूर्ति की प्रति-च्छाया है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि शिवलिंग में बुद्ध की मूर्ति की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर बड़ा ही सरल यह है कि हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मों का साम्य दिखाने की चेष्टा दोनों मूर्तियों की आकृतियों का समन्वय दिखाकर की गई है। इस प्रकार के आकृति-समन्वय द्वारा दोनों धर्मों के उद्गम-स्थान की एकता और दोनों धर्मों की एकरूपता प्रतिपादित की गई है। संभव है कि किसी समय हिन्दू तथा बौद्धों में धर्म के नाम पर संघर्ष चलता रहा होगा, उस समय किसी कलाकार ने दोनों की धार्मिक भावनाओं की रक्षा करते हुए उनका समन्वय पशुपतिनाथ के शिवलिंग में किया होगा। परंतु वह असफल रहा। कारण कि इस प्रकार की समन्विति द्वारा वह मूर्तिपूजक तथा अमूर्तिकोपासक की भावनाओं का समन्वय न कर सका। दोनों धर्मों को एक बीच के मार्ग पर लाकर कोई ऐसा प्रतीक जनता के सम्मुख नहीं रख सका जो जनता के सरल हृदय को आकर्षित करता। अकबर के समय की बनी इमारतों में समन्विति की यह भावना स्पष्ट दिखाई देती है। उसने भारतीय तथा मुसलिम संमिश्रित शिल्पकलाओं के आधार पर दुर्ग एवं प्रासादों के निर्माण कराए थे। सिकन्दरा की कब्र की बनावट में इसका प्रमाण मिलता है, जहाँ वह महान् व्यक्ति आज चिरशान्ति ले

रहा है। उस कब्र की शिल्प-पीठिका तथा ताजमहल एवं उसके पश्चात् की बनी इमारतों तथा बादशाहों, उमराओं एवं बेगमों की समाधियों पर बनी इमारतों की शिल्प-पीठिका में जमीन-आसमान का अन्तर है।

कहना न होगा कि अकबर के पूर्वकालीन और उत्तरकालीन दोनों ही शिल्प-कलाएँ मुसलिम वास्तुकला के आधार पर विशेष रूप से अरब और फारस के शिल्पकलाओं की मुखापेक्षी रही हैं। उन इमारतों में मुसलिम सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिष्ठापन किया गया है। किन्तु सिकन्दरा में अकबर की समाधि पर एक भी अरबी या फारसी का अक्षर खुदा न मिलेगा। उसकी समाधि पर केवल श्वेत संगमरमर का पत्थर है। उसपर उसका नाम भी नहीं लिखा है। यदि वह समाधि कब्र के आकार की न होती तो हिन्दुओं के महात्माओं की समाधियों और उसमें कुछ भी अन्तर न प्रतीत होता। सिकन्दरा की इस इमारत के रचयिता की भावना भारतीय एवं मुसलिम वास्तुकलाओं की समन्विति की ओर अवश्य रही होगी, जिसके अनुसार उसने उसे इस रूप में निर्माण करने की कल्पना की होगी और लोगों ने उसका आदर भी किया होगा।

नेपाल में धर्म के नाम पर कभी रक्त-पात नहीं हुआ। आज भी दोनों बौद्ध और हिन्दू धर्मावलम्बी नेपाल में प्रश्रय पा रहे हैं। श्री पशुपतिनाथ की मूर्ति के संबंध में कल्पनाकार के मन में दोनों धर्मों के प्रति सहिष्णुता का जो भाव कभी उदय हुआ था, वह अपना उद्देश्य पूरा कर गया है। फलस्वरूप आज भी नेपाल में दोनों धर्मावलम्बियों के हृदयों में श्री पशुपतिनाथ के प्रति

समान भक्ति की भावना को हम जागरित पाते हैं।

भगवान् को अपने सब कर्मों का फल अर्पणकर काम करना ही निष्काम कर्म कहलाता है। हिन्दू-विचारधारा की यही मुख्य पीठिका रही है। किन्तु देश, काल एवं स्थिति के संसर्ग से मनुष्य की भावनाएँ परिवर्तित हो जाया करती हैं। फलस्वरूप कालान्तर में धर्म के स्वरूप में भी कृत्रिम परिवर्तन आ जाता है, जिसके कारण धर्म के स्थान पर अधर्म को भी प्रधानता दी जाने लगती है; अर्थात् पवित्र राजधर्म में प्रजा-रंजन के स्थान पर प्रजा-शोषण और सौम्य नीति के स्थान पर कुटिल नीति आदि का आश्रय लिया जाने लगता है। कहना न होगा कि नेपाल एक धार्मिक हिन्दू-राष्ट्र होता हुआ भी वर्तमान् समय में कुछ लोगों किंवा एक वर्गविशेष के स्वार्थ-साधन का जरिया मात्र रह गया है। इसमें सन्देह नहीं कि पशुपतिनाथ के पवित्र नाम का आश्रय लेकर ही नेपाल की शासन-प्रणाली चलाई जा रही है और वह उन्हीं का नाम लेकर यथासमय नष्ट भी होगी। तात्पर्य यह कि वहाँ की धार्मिक जनता के ऊपर राज्य का यह अधार्मिक व्यापार जन-जागर्ति के आगे अब अधिक दिनों तक नहीं टिका रह सकेगा।

शिवलिंग शैवमत का प्रतीक है। भारत के दक्षिण में शैवों और वैष्णवों में विशेष विरोध बना रहता है। ये अपने-अपने उपास्य देवों को प्रधानता देते हैं, अतः एक दूसरे से अलग रहते हैं। परन्तु उत्तर भारत में कोई ऐसी बात नहीं देखी जाती है। अपने मतानुसार दोनों को ही लोग इष्ट-देव मानते हैं। यदि नेपाल में शैवों द्वारा पशुपतिनाथ का मन्दिर बनवाया गया होता

तो वह भारतीय शिव-मन्दिरों के समान होता। किन्तु यहाँ पर मूर्ति पेगोड़ा में स्थापित है। इससे यह प्रमाणित होता है कि मन्दिर के आकार में भी शैव धर्म एवं बौद्ध धर्म का समन्वय किया गया है। पेगोड़ा की रचना बुद्ध-धर्म के अनुसार की गई है और मंदिर के प्रांगण की रचना हिन्दू-धर्म के अनुसार। मंदिर में स्थापित नन्दी, घंटा आदि तथा शृङ्गार-गृह एवं अन्य व्यावहारिक वस्तुओं की रचना हिन्दू-धर्म की भावना के आधार पर की गई है।

अकबर ने 'दीन इलाही' के नाम पर हिन्दू तथा मुसलिम धर्मों को एकरूपता देने का प्रयत्न किया था। तदनुसार उसने समन्विति के आधार पर शिल्प-कला का निर्माण कराया भी था, यह बात ऊपर बताई जा चुकी है। किन्तु आगे चलकर शाहजहाँ आदि ने उन रचनाओं में अपने श्रद्धानुसार मुसलमानी भावना के अनुरूप परिवर्द्धन कर दिया है। अतः अकबर की मूल-समाधि तथा सब से ऊपरवाली बनावटी कब्र में भारी अंतर है। दूसरी समस्त कब्र के ऊपर अरबी अक्षर लिखकर और संगमरमर पर मुसलिम-शिल्प को प्रदर्शितकर अकबर के निर्माण की मौलिकता नष्ट कर दी गई है।

अकबर अपने जिस कार्य में असफल रहा, नेपाली लोग उसी कार्य में हिन्दू और बौद्ध धर्मों की एकता तथा उनका समन्वय करने में सफल हुए हैं। इसमें संदेह नहीं कि उपयोगिता की दृष्टि से पशुपतिनाथ के मंदिर का महत्व इसलिए और भी अधिक बढ़ जाता है कि उसने नेपाली जनता को विशृङ्खलित होने से बचाकर उन्हें एकसूत्र में बाँध रखा। आज भी दक्षिण भारत

में शैवों और वैष्णवों को हम एक स्थान पर लाने में असफल रहे हैं।

श्री डा० दिल्लीरमण रेगमी ने अपनी पुस्तक 'नेपाल-भूगोल-संस्कृति-इतिहास' में पृष्ठ १५ पर लिखा है—"भारशिवो ने ब्राह्मण-कला का प्रचार किया और काठमाण्डू की तत्कालीन मूर्तियों में यह स्पष्ट है। पशुपतिनाथ के लिंग और पशु की मूर्ति भारशिवो के उस महान् देवता के स्वरूप की कल्पना की अभिव्यक्ति है। वह ऐसी कल्पना थी कि एक बार लुप्तप्राय शैवसमाज जागा ही नहीं था, जागकर अपने विशाल काय को हिला रहा था। उस कल्पना में सम्पूर्ण महत्ता, विशालता तथा गुरुता निहित थी। लिच्छवियों ने इस संगठन को सौंदर्य प्रदान किया जो चांगुनारायण की मूर्ति में व्यक्त है। यहाँ आकर पुराना भद्दा कलेवर परिमार्जित मिलता है। मैंने अपना जो विचार ऊपर प्रकट किया है, वही ठीक मालूम होता है।" मैं श्री दिल्ली-रमणजी की कल्पना का समर्थन करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ।

पशुपतिनाथ के पुजारी दक्षिणी ब्राह्मण हैं। वे मंदिर में बराबर घूमते हुए मंत्र पढ़ा करते हैं। हम लोगों को देखते ही उन लोगों ने शुद्ध हिंदी में हमारा परिचय पूछा। वहाँ के कुछ पुजारी काशी में भी रह चुके हैं और उनका यहाँ सम्बन्ध भी है। हम लोगों को देखकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

मंदिर की परिचर्या-संबंधी विशेषता यह है कि वह ठीक समय से खुलता एवं बंद होता है। काशी में मंदिर बंद हो जाने पर भी यदि कोई राजा या बड़ा दानी आ जाता है तो उसे
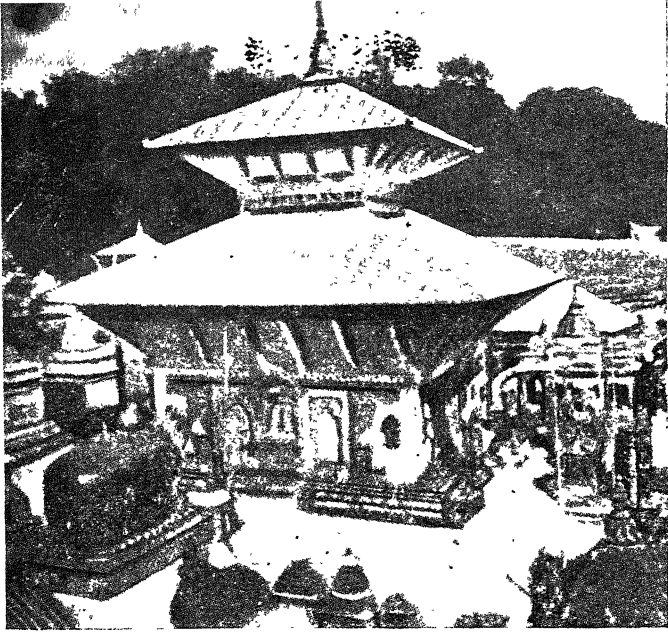
श्री पशुपति नाथ मन्दिर
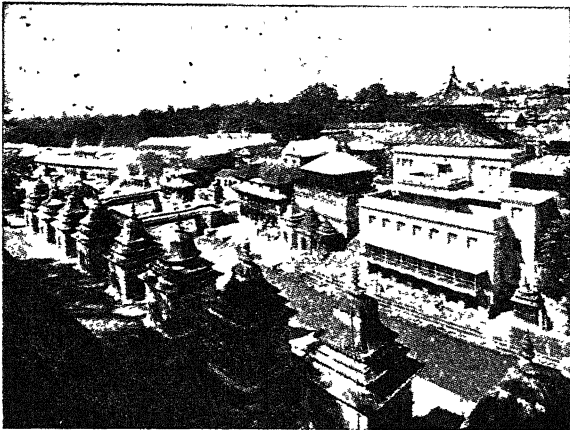
मंदिर खोलकर दर्शन करा दिया जाता है। किंतु नेपाल में वहाँ के महाराज भी निश्चित समय के अंदर ही साधारण व्यक्ति की भाँति दर्शन कर सकते हैं। मूर्ति को कोई स्पर्श नहीं कर सकता। गर्भगृह के तीनों द्वारों से झुककर पूरी झाँकी ली जा सकती है। महाराज श्री ५ सरकार तथा ३ सरकार भी बाहर ही से दर्शन कर लौट जाते हैं। काशी में यदि कोई राजा अथवा सेठ आ जाता है तो दक्षिणा की लालच में पूरा मंदिर खाली करा दिया जाता है और साधारण जनता बाहर खड़ी मुँह ताकती रहती है। पूजनार्थी प्राय: काशी के श्री विश्वनाथ-मंदिर में मूर्ति का स्पर्श करता हुआ घण्टों बैठा रह जाता है।

पशुपतिनाथ के मंदिर के प्रांगण में अन्य देवताओं के मंदिर भी बने हैं, जैसे भैरवनाथ का मंदिर, कृष्ण का मंदिर, शिव का मंदिर तथा बहुत से देवताओं के छोटे-बड़े मंदिर हैं। मंदिर के पीछे बागमती नदी बहती है। यहाँ एक छोटा-सा मंदिराकार बारामदा है। इस बारामदे में एक साधू बाबा, जो भारतीय थे, धूनी लगाए हुए बैठे थे। आसपास भक्त लोग चिलम चढ़ा रहे थे। बाबाजी हम लोगों को देखकर पहले कुछ बोलने को उद्यत दिखाई दिए; किंतु फिर न जाने क्यों शांत रह गए। मंदिर में बंदर भी दिखाई दिए। भिखमंगों की भीड़ ने, जिनमें प्राय: सभी बालक ही थे, हम लोगों को घेर लिया। उनसे हम लोगों का पिण्ड तब तक नहीं छूटा जब तक हम लोग मोटर पर सवार होकर चल नहीं दिए।

पशुपतिनाथ के मंदिर में अछूत लोग केवल नंदी तक जा सकते हैं। वहीं से वे दर्शन करते हैं। नेपाल के अन्य सभी

मंदिरों में प्राचीन काल से अछूत लोग साधारण जन-समाज की तरह जाते हैं। बहुत से मंदिरों के पुजारी तक अछूत होते हैं। कुछ देवियों के मंदिरों के चाण्डाल पुजारी हैं। केवल पशुपतिनाथ का मंदिर इसका अपवाद है। नेपाल में मंदिर-प्रवेश के प्रश्न को लेकर आज तक कभी किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं हुई।

वहाँ के शिक्षित समुदाय में भी पशुपतिनाथ के प्रति पूर्ण श्रद्धा-भक्ति विद्यमान् है। सबका उनपर अनन्य विश्वास है। एक पढ़े-लिखे सज्जन के कथनानुसार निम्न-लिखित बातें इस अनन्य विश्वास के प्रमाण में बताई जाती हैं—

कहा जाता है कि पशुपतिनाथ की स्थूलमूर्ति के नीचे अग्निज्वाला है। यह ज्वाला लिंग से ढँकी रहती है, इस लिए दिखाई नहीं देती। इसके प्रमाण में कहा जाता है कि यदि लिंग पर खूब ठण्ढा जल डाला जाय तो लिंग के मस्तक से भाप निकलने लगेगी।

दूसरे यह कि नेपाल में जब अवर्षण होता है तो मंदिर में जल भरा दिया जाता है। लिंग के मध्य-भाग तक जल के पहुँचते ही आकाश में घटाएँ घिर आती हैं और वर्षा होने लगती है। इसके विषय में कहा गया है कि यह आँखों देखी बात है।

तीसरे यह कि गत महायुद्ध के समय एक दिन अचानक मंदिर में घण्टा स्वतः बजने लगा, जिससे सारा नगर चिंतित हो उठा। इसके ठीक चार दिनों के पश्चात् विश्वमहायुद्ध घोषित हो गया और बृटिश सरकार ने नेपाल-सरकार से सहायता माँगी। अतएव नेपालियों को विश्वास है कि पशुपति भगवान् उनके सुख-दुःख की स्वयं चिंता करते हैं तथा समय-समय पर उनके

भविष्य की चेतावनी भी देते रहते हैं। इस भावना ने नेपाल के सामाजिक जीवन पर चाहे जो भी प्रभाव डाला हो; किंतु इतना तो स्पष्ट दिखाई देता है कि वहाँ के लोगों का जीवन आशा और शांतिमय बना हुआ है।

यह भी कहा जाता है कि नेपाल पर जब विपत्ति आनेवाली होती है तो भगवान् की मूर्ति का मुख मलिन हो जाता है। उस समय यह चर्चा फैल जाती है कि कुछ अनहोनी बात होनेवाली है और लोग सचेत हो जाते हैं। मूर्ति का मुख कैसे मलिन होता है, इसका कोई समुचित उत्तर नहीं दिया जाता। लोग इतना ही कहते हैं कि उस समय हम लोगों को ऐसा अनुभव होने लगता है।

मैंने एक दिन जब एक पढ़े-लिखे सज्जन से कहा कि पशुपतिनाथ का शिवलिंग बौद्ध काल के पश्चात् का बना है तो उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा कि बुद्ध का जब जन्म हुआ भी नहीं था, उस समय से इस लिंग की पूजा यहाँ हो रही है। शिवलिंग के मुखों के विषय में अपना मत प्रगट करने पर उन्होंने मुझे पीटा नहीं; किंतु चुप अवश्य हो गए। मैंने फिर बात चलाते हुए कहा कि संसार के चार युग, मानव-जीवन की चार अवस्थाओं एवं चारों दिशाओं का प्रतीकरूप भी चार मुख हो सकता है। किंतु मेरी इस प्रकार की बातें सुनने के लिए यहाँ कोई तैयार न था। जब मैं बात चलाता तो लोग उसे सुनकर आश्चर्य करते अथवा मन-ही-मन मुझे नास्तिक समझते थे।

मंदिर के पुजारी ने मुझे दक्षिणावर्त शंख तथा एकमुखी रुद्राक्ष दिखाया। धार्मिक दृष्टि से ये दोनों वस्तुएँ विशेष महत्व

रखती हैं। संभवतः इनकी दुर्लभता ही इनके महत्व का कारण है।

मनुष्य के मरने पर हिंदूधर्मानुसार दाहकर्म, श्राद्धादि किया जाता है। भारतवर्ष के अनुकरण पर ही नेपाल में भी सब कृत्य होते हैं; किंतु लोकाचार में कुछ अंतर पाया जाता है।

नेपाल में मृत्युमुख मनुष्य को पशुपतिनाथ के घाट की सीढ़ियों पर लेटाकर उसके पैर जल में रखते हैं। मृत्यु के बाद भी एक घण्टा तक प्रायः इसी अवस्था में शव पड़ा रहता है। कहा जाता है कि इस प्रकार पड़े रहने से बहुत लोग पुनर्जीवित हो गए हैं। अस्तु; मृत्यु के पश्चात् शव को कोई स्पर्श नहीं कर सकता। ब्राह्मण लोग शव को स्नान कराते हैं। पशुपति भगवान् के चंदन का टीका शव के मस्तक पर लगाते हैं। नवीन मृत-चीवर (कफन) में लपेटकर शव चिता पर रख दिया जाता है। सौभाग्यवती स्त्री के मरने पर उसका शृङ्गार किया जाता है। उसके हाथ में चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं। मस्तक पर लाल टीका एवं सीमन्त में सिंदूर भरा जाता है। आभूषण पहना दिए जाते हैं। सब से महत्व की बात यह होती है कि व्याह के समय जो सौभाग्यसूचक मंगलसूत्र उसके गले में पड़ता है, वही सुरक्षित रखा हुआ मंगलसूत्र मरने पर भी शव के कण्ठ में पुनः डाल दिया जाता है। सौभाग्यवती का मरना शुभ समझा जाता है।

यहाँ चाण्डाल अग्नि नहीं देता। चिता में अग्नि की पूजा की जाती है। निकट-संबंधी हिंदूशास्त्रानुसार दाहक्रिया करता है। मनुष्य का प्राण जिस शय्या पर छूटता है तथा उस समय के उसके प्रयुक्त सब वस्त्र बागमती में बहा दिए जाते हैं। कुछ

दूर बह जाने पर चाण्डाल उन्हें निकाल लेता है। चिता-प्रवाह करने के पश्चात् जो अस्थियाँ बच जाती हैं उन्हें एकत्रकर नवीन श्वेत वस्त्र में एक सेर चावल और पैसा के साथ बाँधकर बागमती नदी में गाड़ दिया जाता है।

———

भक्तनगर (भातगाँव)

काठमाण्डू से आठ मील दूर उपत्यका के पूर्वी छोर पर, महादेवपोखरी के चरणतल में और बागमती के चट्टान के ऊपर नेपाल का अत्यंत प्राचीन नगर भक्तगाँव बसा है। ललितपाटन में जिस जीवन एवं समृद्धि का अभाव देखा जाता है, भक्तगाँव में वे सभी बातें विद्यमान् पाई जाती हैं। भक्तगाँव प्रक प्रकार से जीवनपूर्ण और अपने ढंग का अपूर्व जनस्थान है। उसकी अपनी मौलिकता है, उसका अपना रूप है और नेपाल में उसका अपना विशेष स्थान है। मैं भक्तगाँव के आकर्षण को नहीं भूल सकता। वहाँ पत्थरों के फर्शवाली गलियों और सड़कों को देखकर सहसा काशी का स्मरण हो आता है। वहाँ के जीवन की सादगी, रहन-सहन की सरलता, कृत्रिमता का अभाव एवं स्वाभाविक अविरोध जीवन को देखकर मेरा हृदय भर आया। संसार की दृष्टि में भक्तनगर चाहे अपने दरबार, स्वर्णद्वार, पंचमंजिले भवन, अद्भुत् कलाओं के लिए भले ही प्रसिद्ध हो; लेकिन मैं भक्तगाँव को जीवनमय जनपद के रूप में कभी न भूल सकूँगा। मेरी दृष्टि में महात्माजी जिस स्वावलम्बी ग्राम्य

जीवन का स्वप्न देखते रहे हैं; उसकी एक झिलमिलाती झाँकी भक्तनगर में अवश्य प्राप्त होती है।

इस नगर की अट्टालिकाएँ ऊँची हैं और मध्ययुगीय नगरों की याद दिलाती हैं। उनमें रहनेवाले दुनिया से दूर, भाई-चारे का व्यवहार निबाहते, पारस्परिक प्रेम के साथ रहा करते हैं। पत्थर की सड़क के दोनों ओर दुकानों में छोटे-छोटे पंसारी साधारण जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की सामग्री लिए बैठे हुए बड़े ही भले लगते थे। बीच सड़क में ताना तना जा रहा था। दो सुंदर लड़कियाँ ताने का ताग ५० फीट की लम्बाई में, सड़क में छड़ी गाड़े हुए प्रसन्नतापूर्वक लगा रही थीं। कोई पूछनेवाला न था कि सड़क में वे क्यों ताना लगा रही हैं? यहाँ घोड़ा, गाड़ी, मोटर एवं अन्य सवारियों का भय न था। किसी पड़ोसी को भी कोई आपत्ति न थी।

सड़क पर ही गेहूँ का सुखवन फैला था। यहाँ का गेहूँ युक्तप्रांत किंवा पंजाब के गेहूँ से ज्यादा लम्बा; किंतु चावल से भी कम पतला होता है। बहुत स्थानों पर इस प्रकार का सुखवन पड़ा मैंने देखा। कोई रखानेवाला वहाँ मुझे दिखाई न दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ चोरी नहीं होती। सबका एक दूसरे पर विश्वास है। सब लोग दूसरे की वस्तुओं को अपनी तरह समझकर उसकी रक्षा करते हैं।

सड़क पर ही मैंने धान और चूड़ा कूटते हुए युवतियों को देखा। यहाँ की ओखल लकड़ी की बनी दो फीट ऊँची होती है। स्त्रियाँ खड़ी होकर लम्बे मूसल से कूटती हैं। बाजार में सड़क के ऊपर इस प्रकार मूसल चलाने में उन्हें कुछ भी
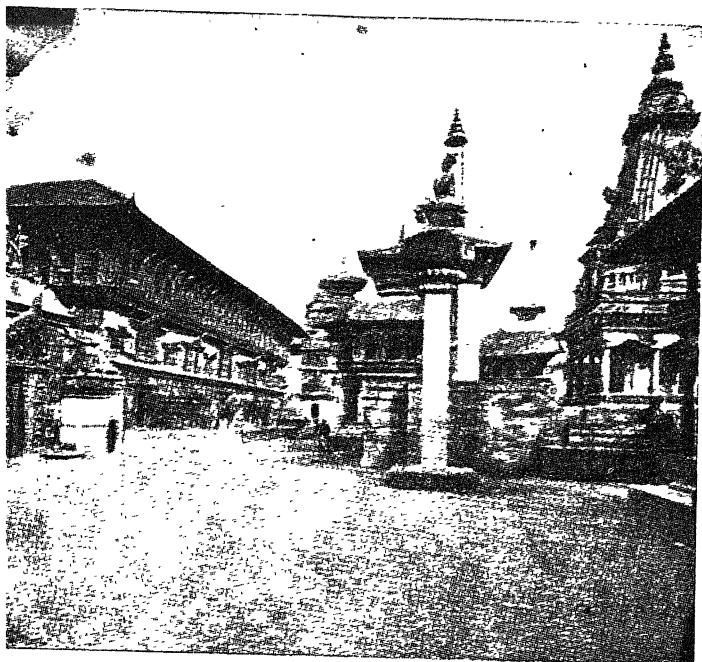
दरबार प्रांगण भातगांव
का एक कक्ष

लज्जा न आ रही थी। उनके पास एक वृद्धा बैठी हुई हम लोगों को आश्चर्यमय दृष्टि से देख रही थी; किंतु उन लड़कियों की मनोभावना में जरा भी अंतर नहीं आया। वे पूर्ववत् काम करती रहीं।

यहाँ मैंने घरों में, कोठों पर, बरामदों पर, खिड़कियों पर तोता, लाल आदि पक्षियों के पिंजड़ों को झूलते हुए देखा। सड़क के किनारे कूपों पर जल भरती हुई तथा कपड़ों को साफ करती हुई स्त्रियाँ दिखाई दीं। यहाँ पर्दा बिल्कुल नहीं है। समस्त नेपाल में ही पर्दा नहीं है। यदि पर्दा कहीं है तो केवल कुलीन कहलानेवाले राणावंश में ही है। भक्तनगर में पुरुष-स्त्री सब साथ-साथ काम करते हुए भी दिखाई दिए।

भक्तनगर में भिखमंगे लड़कों का झुंड नहीं दिखाई दिया। मंदिरों तथा पेगोड़ा में बालकों का समूह अवश्य मिला; किंतु किसी ने हाथ न फैलाया। मंदिरों के पुजारियों ने कुछ चढ़ाने का आग्रह नहीं किया। यहाँ के बाजार में जब हम लोग गोल बाँधे घूम रहे थे तो यहाँ के नागरिक कुछ भी आकर्षित होते नहीं दिखाई दिए। यदि भारत का देहात होता तो अनायास भीड़ लग जाती।

काठमाण्डू से भक्तनगर को जानेवाली सड़क सुंदर है। सड़क के दोनों किनारों पर ऊँचे भोटिया, पीपल, खरी, सल्ला एवं अल्स वृक्षों की पंक्तियाँ हैं। मार्ग में विशाल नगर पड़ा। यहाँ की आबादी प्राचीन है। खुदाई में यहाँ प्रायः पुराने सिक्के तथा अन्य पुरातत्व-सम्बन्धी वस्तुएँ मिला करती हैं। यदि सच

पूछा जाय तो नेपाल में अभी तक पुरातत्व-संबंधी कार्य एक तरह से आरम्भ ही नहीं हुआ है।

मार्ग में ठिनले लोग मिले, जो मदारियों की तरह अथवा चलते-फिरते वैष्णव कँवरिया ठाकुर की विहंगिका की तरह बहँगी लिए जाते थे। वे काठमाण्डू के बाज़ार में सामान बेचने जा रहे थे। यहाँ सिर पर बोझ नहीं ढोया जाता। पीठ पर या बहँगी पर सामान ढोया जाता है। बहँगी में खड़ी बारी की दो गोल दौरियाँ रहती हैं। चावल आदि अन्न बहँगी के दोनों ओर काँवरवाले वैष्णवों की तरह वस्त्र की झोली में रखकर ढोते हैं।

विशालग्राम के बाद ठीमी ग्राम पड़ता है। इस ग्राम में मिट्टी का वर्तन बहुत बनता है। मिट्टी के व्यावहारिक वर्तनों को बनाने में समस्त उपत्यका में इस ग्राम ने विशेषता प्राप्त की है। यहाँ पर कुण्डे से लेकर दिवलियाँ एवं खिलौने तक बनाए जाते हैं। कुछ और आगे बढ़ने पर वाम पार्श्व में सड़क के चार फरलांग की दूरी पर एक दूसरा ग्राम दिखाई दिया। पूछने पर इस ग्राम का नाम नागदेश मालूम हुआ। नाग नाम की एक जाति का वर्णन महाभारत एवं प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। नाग का अर्थ लोग भूल से सर्प लगाने लगे। यहाँ तक कि वहुत से चित्रकारों ने नागकन्या ऊलूपी को, जिसका वरण अर्जुन ने किया था, सर्परूप में चित्रित किया है। यह साधारण समझने की बात है कि नाग की कन्या से भला कोई मनुष्य कैसे व्याह कर सकता है? इसमें संदेह नहीं कि यदि भारतवर्ष का भ्रमण किया जाय तो प्राचीन ग्रंथों में वर्णित बहुत-सी अप्रगट बातों का

अनायास पता लग जाय, जिससे असम्भव प्रतीत होनेवाली बातें भी ज्ञानगम्य हो जायँ। यह नागदेश अच्छा भरा-पुरा ग्राम है। यहाँ के लोग अपने को नेपाल देश का सब से प्राचीन निवासी मानते हैं और बताते हैं कि वे नागजाति के वंशज हैं। मार्ग में एक गाँव आई नाम का भी पड़ता है। यह ग्राम साधारण है। सड़क के दोनों किनारों पर बाजार है।

सड़क के किनारों पर चार-चार फरलांग की दूरी पर छोटे खपरैल के अलिन्द हैं। ये यात्रियों के आश्रय-स्थान हैं। पथिक लोग वर्षा एवं धूप से अलिन्द-आवास में बैठकर समय काट सकते हैं। नेपाल में इन्हें पौवा कहते हैं। इस मार्ग में पौवा बहुत अधिक संख्या में मिले। मालूम होता है कि वर्षा से बचने के लिए ये विश्राम-स्थान पर्याप्त संख्या में बना दिए गए हैं; क्योंकि घाटी में क्षण ही में वर्षा होने लगती है और क्षण ही में धूप निकल आती है।

अठगाँव पहुँचने पर कुछ ठण्डक मालूम होने लगती है। यहाँ से भक्तनगर का बाहरी भाग दृष्टिगोचर होता है। यहाँ राजकीय कार्यों में शुद्ध संस्कृत शब्दों का विशेष प्रयोग पाया गया। भक्तगाँव में प्रवेश करने के पहले ही परेड का मैदान तथा फायर-ब्रिग्रेड मिला, जिसका शुद्ध नाम 'वरुण-यन्त्र' लिखा हुआ दिखाई दिया। इमारत के ऊपर नागरी अक्षरों में 'जुद्ध वारुण यन्त्र' लिखा था। जुद्धशमशेरजंगबहादुर यहाँ के भूतपूर्व प्रधान मंत्री अर्थात् ३ सरकार थे, उन्हीं के नाम पर 'जुद्ध वारुण यंत्र' नाम रखा गया है।

वारुण यन्त्र-भवन के ठीक सम्मुख मार्ग के दूसरी ओर

उँचाई पर पक्की मोटी प्राचीर खिंची थी। प्राचीर चूने से रँगी थी। हम लोग चढ़कर गए। चारों ओर से घिरी प्राचीर में चारों दिशाओं की ओर चार प्रवेश-द्वार बने हैं। अन्दर का दृश्य अत्यन्त हृदयग्राही था। वहाँ एक विस्तृत सरोवर था। सरोवर में पक्की पत्थर की सीढ़ियाँ चारों ओर बनी थीं। घाटों से बँधा हुआ इतना बड़ा सरोवर मैंने नहीं देखा है। काशी में पत्थर के पक्के सरोवर बहुत हैं; किन्तु क्षेत्रफल में यह सरोवर बहुत बड़ा था। सरोवर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह भूमितल से बहुत ऊँचा था। इसका जल साधारण भूमितल से ऊपर था।

सरोवर हरा दिखाई देता था। उसमें घास-जैसी कोई वस्तु लगी थी। नाना प्रकार के रंगों की लाल, हरी, नीली, श्वेत, पीली आदि मछलियाँ उसमें हजारों की संख्या में तैर रही थीं। बालाजी के सरोवर में बड़ी-बड़ी केवल हरी मछलियाँ दिखाई पड़ी थीं; परन्तु यहाँ रंग-बिरंगी मछलियों का गोल बाँधकर तैरना इतना सुन्दर प्रतीत होता था मानों प्रसिद्ध जयपुर का छपा साफा अथवा फीरोजपुर की छपी छींट कोई सरोवर में फैलाकर लहरा रहा हो। सूर्य की किरणें पड़ने से कभी-कभी उनका रंग चमक उठता था। उनका आकार भी प्रायः समान था। सब प्रायः छः इंच लम्बी थीं। कोई बड़ी-छोटी न थी। उनकी यह एकरूपता, स्वच्छन्द जल-विहार और आमोदमय किलोल देखकर घण्टों बैठकर देखते ही रहने की इच्छा होती थी। इस सरोवर में मछलियों का मारना वर्जित है। सरोवर में दाना फेंकने पर उनका खेल देखते ही बनता है। किसी पुरुष के पहुँचते ही मछ-

लियाँ चारा की आशा से तटपर चक्कर काटने लगती हैं ।

ठीक दस बजे दिन में हम लोगों ने भक्तनगर में प्रवेश किया। प्रवेश के पूर्व सैनिक ने प्रवेशाधिकारपत्र (पासपोर्ट) माँगा। नेपाल में आवागमन पर विशेष सतर्कतापूर्वक ध्यान दिया जाता है। कोई बाहरी व्यक्ति अनायास कहीं प्रवेश नहीं कर सकता। भक्तगाँव में दो-तीन स्थानों पर और भी पूछ-ताँछ हुई। हम लोगों के साथ उपस्थित नेपाली अधिकारियों के विश्वास दिलाने पर कहीं पिण्ड छूटा।

भक्तनगर का तोरण-द्वार मिला। उसके ऊपरी भाग की वक्रता गौड़-शैली से मिलती है। वक्र भाग के ठीक मध्य में कमलाकार कलश लगा है। तोरण के दाहिनी ओर दो पाषाण के सिंह बने हैं। सिंहों के पार्श्व में गरुड़ारूढ़ नारायण की चतुर्भुज पाषाण-मूर्ति है। संभवतः नगर के रक्षक के रूप में नारायण की मूर्त्ति स्थापित की गई है, जिससे कोई कलुषित आत्मा का किंवा नगर के स्वार्थ का विरोधी मनुष्य प्रवेश न करे और सिंहों की स्थापना भौतिक शक्ति के निदर्शनस्वरूप स्थापित की गई है। यह प्रवेश-द्वार ही इस बात का द्योतक है कि नगर की रचना प्राचीन शैली पर होगी। यहाँ पहुँचते ही नगर के भीतरी भाग का अनुमान हो जाता है और जो पहला प्रभाव मन पर पड़ता है, वह यह है कि इस नगर की भवननिर्माण-शैली में सम्बद्धता एवं एकरूपता न होगी।

दरबार-प्रांगण में पहुँचने पर मुझे प्रभावित करनेवाली पहली बात यह थी कि ललितपाटन के दरबार-प्रांगण से यहाँ अन्तर था। यह प्रांगण उससे छोटा था और इसमें एकरूपता भी

न थी। पाटन के दरबार-प्रांगण में चहल-पहल विशेष थी। वह नगर का अब भी हृदय है। राजपथ के दोनों ओर बना है। उसमें अनायास लोग आते-जाते हैं, इसलिए वह जनाकीर्ण रहा करता है। किन्तु भक्तनगर के दरबार में सेना रहती है, अतः उसके अन्दर कोई जा नहीं सकता। बाहर से ही सब चीजें देखी जा सकती हैं। स्थान उजड़ा हुआ और जीवनहीन-सा प्रतीत होता है। केवल सैनिकों के बन्दूक रखने की और बूट की आवाजें सुनाई पड़ जाया करती हैं।

यहाँ का दरबार-प्रांगण नेवार-सभ्यता-मूलक कला का उत्कृष्ट नमूना है। प्रांगण के मन्दिरों की रचना हिन्दू-शैली की है। कुछ मंदिर पत्थर के हैं। उनकी कुर्सियाँ बहुत ऊँची दी गई हैं। शिखर के स्थान पर पेगोड़ा है। उनमें भारतीय एवं चीनी दोनों निर्माण-शैलियों का सुन्दर संमिश्रण किया गया है। यह प्रांगण अनेक प्रकार के भवननिर्माण-कलाओं का संग्रहालय-सा है। इमारतें बेतरतीब बनी हुई हैं।

प्रांगण के मध्य में राजा भूपेन्द्रमल्ल की सुवर्णमूर्ति प्रतिष्ठित है। उत्तुङ्ग चौकोर स्तम्भ पर स्थित प्रस्फुटित कमल पर यह मूर्ति करबद्ध बैठी है। मूर्ति के ऊपर हेम-रंजित छत्र लगा है। नेवार-निर्माण-कला की यह विशेषता रही है कि उच्च स्तम्भ पर गरुड़, राजा आदि की मूर्ति दास्यभाव से बनाकर उसके मस्तक पर सर्प के फण अथवा छत्र की छाया लगा दिया करते हैं। भूपेन्द्र-मल्ल की मूर्ति के दाहिनी ओर दो स्तम्भों पर पेगोड़ानुमा घंटा का स्थान बना है। उसमें एक बहुत बड़ा घण्टा लगा है। घण्टा के पीछे हिन्दू-शैली का शिवाला बना है, जिस पर कलश एवं त्रिशूल
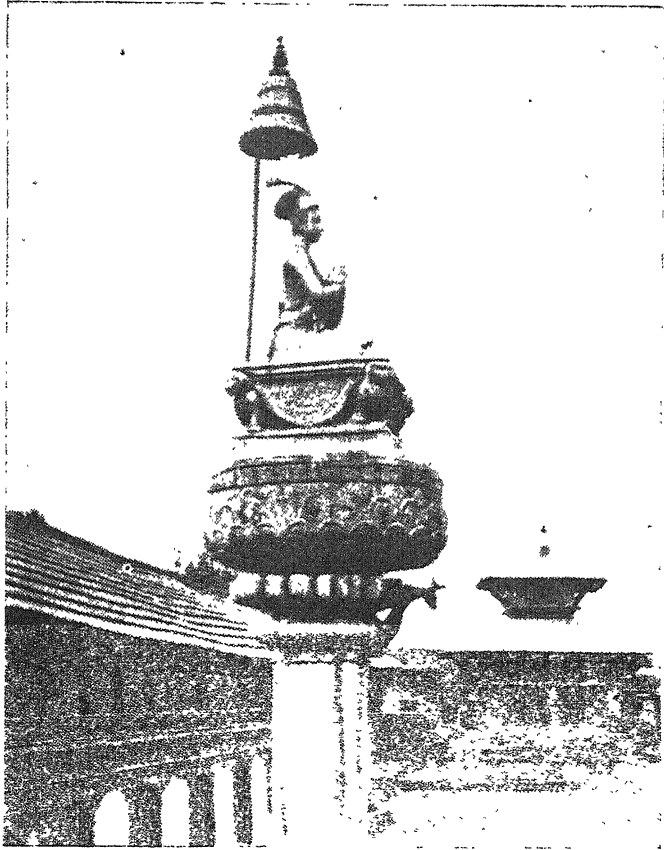
राजा श्री भूपेन्द्र मल्ल

है। इसे वत्सला माई का मन्दिर कहते हैं। भूपेन्द्रमल्ल की मूर्ति के पीछे आमने-सामने दो मंदिर बने हैं और बीच में रास्ता है। अंतिम छोर पर पेगोड़ा-शैली का एक ऊँचा पशुपतिनाथ का मंदिर बना है।

दरबार का हेम-रंजित द्वार कला की दृष्टि से दर्शनीय वस्तु है। एशिया की यह सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। द्वार के ऊपर दश भुजाधारिणी दुर्गा की मूर्ति है। मूर्ति के दाहिनी ओर गरुड़ और बाईं ओर बैताल हैं। बैताल और गरुड़ के पार्श्वों में देवी के पार्षद हैं। द्वार के ऊपर सलामीदार हेमरंजित पीतल का पत्र जड़ा है। उसके ऊपर मध्य में बड़ा तथा दोनों पार्श्वों में छोटे-छोटे कलश हैं। कलश के पार्श्वों में पताकाएँ हैं। पताकाओं के पार्श्वों में झपटान की मुद्रा में सिंह हैं। उनके पार्श्वों में सूँड़ और पोंछ उठाए नादोन्मुख मुद्रा में हाथी हैं। पताका के दण्ड के मूल से स्वर्णपत्र मेहराबदार होकर कलश के कुछ ऊपर जाकर मिल गया है, जो छत्र-सा प्रतीत होता है। सब वस्तुएँ हेमरंजित हैं। द्वार के दोनों पार्श्वों में ड्योढ़ी से ऊपर तक कलश एवं गणेश आदि आठ देवताओं की भिन्न-भिन्न मुद्राओं में मूर्तियाँ बनी हैं। दीवाल में दोनों ओर शिला-लेख खुदे हैं।

देवी के पाँचों दक्षिणी भुजाओं में ऊपर की ओर क्रम से खड्ग, चक्र, सर्प, पाश और पात्र हैं। वाम भुजाओं में उसी क्रम से ढाल, शंख, गदा और पद्म हैं तथा एक हाथ खाली है। दुर्गा की आकृति वीर-मुद्रा में है। वह वैताल को मार रही हैं।

दरबार के सम्मुख एक छोटी-सी बावली है। इसमें मकर के मुख से जल गिरता रहता है। मकर-मुख के मूल भाग के ऊपर

विश्वरूप भैरव की मूर्ति तथा नीचे गंगा की मूर्ति है। मकर-मुख पर सर्प और मेढक बालाजी वाले मकर के समान बने हैं। भक्त-नगर में इस प्रकार की छोटी-छोटी बावलियाँ बहुत मिलेंगी; जिनमें आर्य-शैली की मूर्तिकला विद्यमान् है।

राजकीय परिधान में राजा भूपेन्द्रमल्ल स्तम्भ पर दास्य भाव से बैठे हैं। यह मूर्ति भक्तगाँव के सर्वश्रेष्ठ प्रासाद की ओर मानों गम्भीरतापूर्वक देख रही है। दरबार में लकड़ी पर बहुत ही बारीक काम किया गया है। लकड़ियों पर अनेक प्रकार की हिन्दू तथा बौद्धधर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ निर्मित की गई हैं एवं किसी गाथा, किसी घटना, किसी अन्य विशेष बात को लेकर चित्र खोदे गए हैं। पाटन में मूर्तियाँ पत्थर पर खुदी हैं और यहाँ लकड़ी पर खोदी गई हैं। उनपर सफेद रंग लगा दिया गया है, जिससे मूर्तियाँ धूमिल लकड़ियों में न मिलकर स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इन मूर्तियों का भाव निरक्षर व्यक्ति भी, चाहे वह हिन्दू-धर्म अथवा बौद्ध धर्म का हो, अपनी जानकारी और कल्पना के अनुसार निकाल सकता है। कहना न होगा कि कला-कार अपने प्रयत्न में इसलिए अधिक सफल हुआ है कि उसने कला की श्रेष्ठता के साथ ही जनता की धार्मिक भावनाओं को भी सजीवता प्रदान की है, ताकि वहाँ की जनता को धार्मिक ज्ञान बना रहे। यहाँ की वास्तुकला से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय तक नेवारी-जाति की धार्मिक भावना कितनी विक-सितावस्था को प्राप्त हो चुकी थी, जिसका प्रदर्शन उन्होंने ऐसे उत्तम रीति से किया कि संसार की कलाओं में आज दिन वह अपना मौलिक स्थान रखती है।

भक्तगाँव में ऊँची कुर्सी पर मंदिर बनाने की शैली है। पत्थर के मन्दिर यहाँ जितने बने हैं, सभी ऊँची कुर्सी देकर बनाए गए हैं। दरबार के बाईं ओर हिन्दू-शैली का पूरा पाषाण का मंदिर है। मंदिर में शंगतराशी का सुन्दर काम किया गया है। हिन्दू-मन्दिर के समान पहले मण्डप-गर्भगृह और उसके पश्चात् द्वारयुक्त मन्दिर का गर्भगृह है। मण्डप नकाशीदार चौखूटे पत्थर के खम्भे पर स्थित है। भूमितल से मन्दिर की कुर्सी लगभग २० फीट ऊँची होगी। पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। प्रत्येक तीन सीढ़ी के ऊपर फर्श बनता गया है। इस प्रकार ६ फर्श और १६ सीढ़ियाँ हैं। रेलिंग के स्थान पर क्रम से तीन फीट ऊँची सिंह के साथ राजा या सुसज्जित मनुष्य, सुसज्जित अश्व, गैड़ा, शार्दूल और सबसे ऊपर गाय की तरह पशु-मूर्ति है। खेद है कि मंदिर पर पेड़ उग आए हैं, जिससे मन्दिर नष्ट हो रहे हैं। दरबार-प्रांगण में और भी मन्दिर हैं; परन्तु करीब-करीब सभी पेगोड़ा के इस मंदिर-शैली से मिलते हैं, अतएव उनका वर्णन करना व्यर्थ है।

न्यतपोल-देवल के पेगोड़ा का स्थान कला की दृष्टि से नेपाल में सब से महत्व का है। इसकी विशालता आश्चर्यजनक प्रभाव हृदय पर डालती है। अट्ठारहवीं शताब्दि के आरम्भ में राजा भूपेन्द्रमल्ल ने इसे बनवाया था। कहा जाता है कि राजा भूपेन्द्र पाल इसके निर्माण के लिए स्वयं तीन ईंट लाए थे। राजा की अगाध भक्ति एवं प्रेम को देखकर प्रजा में उत्साह फैल गया। जनता ने पाँच दिनों के अन्दर ही मंदिर-निर्माण के लिए पूरा सामान एकत्र किया था। यह पेगोड़ा पाँच मंजिलों का बना है

और दूर से ही दृष्टिगोचर होता है। इसके गर्भगृह में पहुँचने के लिए ३१ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। इसकी कुर्सी भूमि से लगभग ३२ फीट की उँचाई पर है। सीढ़ियों के दोनों ओर रेलिंग के स्थान पर क्रम से जयमल-फत्ता, हाथी, सिंह, शार्दूल एवं बाघिनी, सिंहिनी की चार फीट ऊँची पत्थर की मूर्तियाँ लगी हैं। कुर्सी समाप्त होने के बाद मंदिर के चारों ओर खुलता चौकोर अलिन्द है। खम्भों पर किंचित् नोकदार मेहराब लगा है और उसपर यह पंचमंजिला पेगोड़ा आरम्भ होता है। इसके हर मंजिल की सलामीदार छत पहले मंजिल से छोटी होती गई है; यहाँ तक कि सबसे ऊपर की छत पहलेवाली मंजिल की छत से आधी रह गई है। इस पेगोड़ा की विशालता इस बात को बताती है कि पेगोड़ा-निर्माण की भावना आकाश को केन्द्र मानकर, जहाँ तक ऊँची बनाई जा सके, बनाने की थी। साधारण जनता की भावना भी आकाश में भगवान् के वास की हुआ करती है। इस संसार के ऊपर दूसरा संसार भी माना जाता है। अतः उस दूसरे संसार के जितने समीप पहुँचा जाय उतना ही अच्छा हो, संभवतः इस उद्देश्य से सर्वत्र के धार्मिक मंदिरों को आकाश की ओर अधिक उँचाई तक ले जाने की प्रवृत्ति चल पड़ी है, जिससे लोगों को यह स्मरण बना रहे कि इस संसार के पश्चात् दूसरा संसार है, जहाँ उसे जाना है और भगवान् वहाँ बैठा है।

यहाँ आश्चर्य की दूसरी बात यह है कि न्यतपोल-देवल का पेगोड़ा जापान के होरिंजे-पेगोड़ा से बिल्कुल मिलता है। होरिंजे का पेगोड़ा भक्तगाँव के इस पेगोड़ा से कम-से-कम एक हजार

वर्ष पहले बना था। अतएव इसमें संदेह नहीं कि न्यतपोल-पेगोड़ा उसकी नकल पर बना है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज से १२५० वर्ष पहले लोगों को जापान देश मालूम था। भक्तगाँव के लोग उन दिनों जापान तक पहुँचे थे। यह भी संभव हो सकता है कि जापानी कलाकार भक्तगाँव में आए हों और उन्होंने होरिंजे-पेगोड़ा की कल्पना भूपेन्द्रमल्ल को बतलाई हो, जिसे पसन्दकर राजा ने उस शैली पर अपने देवता का मन्दिर बनाना आरम्भ किया हो।

भक्तगाँव में सकड़ के किनारे एक मन्दिर ईंटों का बना है। उसके मण्डप पर चैत्याकार गुम्बज बना है। गुम्बज में भी तान्त्रिक शैली की पत्थर की सुन्दर मूर्तियाँ लगी हैं। उसके गर्भ-गृह के ऊपर शिखर है और उसमें भी मूर्तियों की सजावट है। बाहर लम्बे बाँस में आकाशदीप लटक रहा था। इस मन्दिर को देखकर काशी के मन्दिरों का स्मरण हो आता है।

गणेशथान में गणेशजी का मन्दिर है। मन्दिर भारतीय ढंग का बना है। इसके प्रवेश-द्वार पर बहुत ही सुन्दर शिल्प-कार्य किया गया है। मंदिर में ठीक सामने एक ऊँचे स्तम्भ पर प्रस्फुटित कमल के ऊपर चलते रूप में मूसक बनाया गया है, जिसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि स्तम्भ पर से वह कूदना ही चाहता है। शिल्पी ने मूसक की गति-विधि का सूक्ष्म प्रदर्शन करते हुए उसकी पूँछ लहरियादार बनाई है और उसके छोटे-छोटे पैरों में गतिशीलता का प्रभाव भी दिखाया है। मंदिर के सम्मुख खुले प्रांगण में बहुत से घण्टे लगे हैं। द्वार के दोनों

ओर हेमरंजित दो पताकाएँ लगी हैं, जिनपर सूर्य-चंद्र के आकार अंकित हैं।

वहाँ के भैरव-मंदिर के द्वार का लकड़ी का काम बहुत ही उत्कृष्ट है। उसमें तांत्रिक शैली पर न जाने कितने प्रकार की मूर्तियाँ बनाई गई हैं। इसी प्रकार यहाँ के भवानी-मंदिर का प्रवेश-द्वार भी अपनी कारीगरी का जोड़ नहीं रखता। यहाँ के प्रायः सभी मंदिरों के द्वार पर कारीगरी देखने योग्य है। उनमें अंकित चित्रों में इतने आध्यात्मिक भाव भरे हुए हैं कि यदि उनपर थोड़ा-थोड़ा भी लिखा जाय तो हजारों पृष्ठ की पुस्तक केवल भक्तगाँव के मंदिरों के संबंध में हो जाय।

दरबार-प्रांगण से करीब दो फरलांग जाने पर दूसरा विस्तृत प्रांगण मिलता है, जिसमें भगवान् दत्तात्रेय का मंदिर है। मंदिर के सम्मुख एक उत्तुङ्ग स्तम्भ पर दास्यभाव से गरुड़ की मूर्ति बैठी है। आगे बढ़ने पर मार्ग में भगवती का एक मंदिर है। काष्ठ के खंभों में, जो ओलती का सहारा देने को बनाए गए हैं, लोकेश्वर की मूर्ति खुदी है। दत्तात्रेय के मंदिर के कुछ अन्तर पर साधुओं का मठ है। मठ की दूसरी मंजिल में पीछे की ओर के एक मोखे में नाचते हुए मोर की मूर्ति लकड़ी में खोदी गई है और उस मोर को केन्द्र बनाकर वहाँ से सीधी लकड़ियाँ वृत्ताकार चक्र में मिलाई गई हैं। चक्र के चारों ओर लकड़ी पर सुंदर फूल-पत्ती का काम बना है। यह मोर बहुत ही सुंदर बना है, जिसे देखते ही बनता है। भक्तगाँव में जानेवालों को अवश्य देखना चाहिए।

भक्तगाँव का अंतिम स्थान नारायण का मंदिर है। यह

पेगोड़ा-शैली पर बना है। उसपर हेमरंजित पीतल चढ़ा हुआ है। घर के भीतर होने के कारण बाहर से नहीं दिखाई देता। इसी मंदिर में अष्टमाताओं की आठ मूर्तियाँ स्थापित हैं, जो जबलपुर के चौंसठयोगिनियों के समान छोटी-छोटी बनी हैं।

यह भक्तगाँव सन् १९३४ ई० के भूकम्प में बहुत क्षतिग्रस्त हो चुका है और उसकी मरम्मत भी की गई है। यहाँ के मकान प्रायः बारामदादार और खिड़कियों से युक्त हुआ करते हैं। खिड़कियों की लकड़ियों में प्रायः सभी स्थानों पर बड़ी ही सुंदर कारीगरी थोड़ी-बहुत दिखाई देती है। मकानों के छाजन की ओलती काफी बाहर तक निकाली जाती है और उसके आधार के लिए लगाए जानेवाले खंभों में देवताओं तथा फूल-पत्तियों के चित्र खुदे रहते हैं।

भक्तगाँव में काठमाण्डू तथा पाटन से अधिक गरमी रहती है। यह नगर काठमाण्डू से करीब ६०० फीट की निचाई पर है, इसलिए यहाँ गर्मी होना स्वाभाविक है। काठमाण्डू और पाटन की तरह यहाँ मच्छड़ नहीं लगते। यहाँ की वायु उक्त नगरों की अपेक्षा उत्तम और स्वास्थ्यकर समझी जाती है। यहाँ की दही प्रसिद्ध है।

ललितपत्तन

'पत्तन' शब्द का अर्थ नगर या पुर होता है। 'पत्तन' से ही अपभ्रंश होकर 'पाटन' बना है और इस प्रकार नगर का नाम 'ललितपाटन' पड़ा। हिमालय-शिखर पर स्थित यह

नगर किसी समय सचमुच ललितकला का केन्द्र था। हिमालय-शिखरवर्ती किसी भी भूमि पर आर्य्य, तिब्बती, चीनी आदि अनेक कलाओं का एक स्थान पर इतना अधिक मौलिक संग्रह न होगा, जितना पाटन में है। पाटन का दरबार-प्रांगण अपनी विशेष मौलिकता रखता है। इस प्रांगण के सरीखा दृश्य संसार में अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई दे सकता है। जिसे कला का थोड़ा भी ज्ञान हो और जिसने हिन्दू-गाथाओं एवं हिन्दूशास्त्र-ग्रंथों का किंचित् भी अध्ययन किया हो तो इसमें संदेह नहीं कि यहाँ की वास्तुकला में भारतीय, तिब्बती और चीनी कलाओं के संमिश्रण से उद्भूत नवीन कला-शैली के जन्म, उसके विकास एवं परमोत्कर्ष-प्राप्ति के समस्त रहस्य देखनेवाले को अवश्य ज्ञात हो जायँगे। बुद्धि स्वयं बतला देगी कि जिस समय भारतवर्ष में मंदिर तोड़े जा रहे थे, धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बह रही थीं वेद-पुराण-ग्रंथ फूँके जा रहे थे, हिंदू कहा जाना अपराध समझा जाता था, हिंदू-घरों में जन्म लेने का अर्थ काफिर होता था एवं बौद्ध धर्म को भारतवर्ष से उखाड़ फेंकने के लिए श्रीशंकराचार्य जिहाद बोल रहे थे उस समय हिंदू-समाज की संकटापूर्ण स्थिति में हिमालय की इस मनोरम उपत्यका में भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पूर्वी एशिया की सभ्यता और संस्कृति के साथ ये पर्वतीय बंधु लकड़ियों और पत्थरों पर अंकितकर उन्हें अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में लाने और सुरक्षित बनाए रखने का सफल प्रयत्न कर रहे थे।

नेपाल की इस उपत्यका की ये तीन नगरियाँ, (१) भक्त-

नगर, (२) ललितपाटन और (३) काठमाण्डू क्रम से विष्णु के शंख, बुद्ध के चक्र तथा मंजुश्री की कृपाण के आकार पर बसाई गई हैं। काठमाण्डू से ललितपाटन तक पक्की सड़क आती है। किसी समय पाटन नेपाल का सबसे बड़ा नगर था और वह काठमाण्डू से दो मील की दूरी पर बसा है। अब भी उसकी विशेषता कम नहीं है। परंतु काठमाण्डू की उन्नति के साथ पाटन की अवनति का होना अनिवार्य था। सन् १९३४ ई० में भूचाल का प्राबल्य यहाँ पर अधिक नहीं रहा। फलस्वरूप मंदिर एवं अन्य दर्शनीय स्थानों को स्पर्श करता हुआ भूचाल निकल गया। जो कुछ क्षति हुई भी थी उसे पूरी कर दी गई। पाटन की वस्तुएँ अपनी प्राचीनता को लिए हुए दर्शकों के देखने योग्य हैं।

काठमाण्डू से जाते समय पाटन की सीमा पर नगर का प्रवेश-द्वार मिलता है। द्वार पर्याप्त ऊँचा एवं आयताकार है। उसके ऊपर दोनों ओर चैत्य के समान चौखूटी मढ़ियाँ बनी हैं और मध्य में तीन मेहराबोंवाला चारों ओर से खुला स्थान उसी प्रकार का बना है, जैसा कि भारतीय राजप्रासादों एवं दुर्ग-द्वारों पर शहनाई बजाने के लिए बना रहता है। छत के चारों कोनों पर सिंह की मूर्तियाँ बैठी हैं। सड़क के दक्षिण पार्श्व में खपरैल का बारह दर का खुला एक बरामदा बना है। बाईं ओर चहारदीवारी खिंची है, जिसमें एक मेहराबदार छोटा द्वार है। देखने से यह भावना साधारणतः जाग्रत हो उठती है कि मानों हम इस प्राचीर से आवृत दिल्ली या अन्य किसी भारतीय प्राचीन नगर में इस द्वार द्वारा प्रवेश कर रहे हों।

दरबार-प्रांगण में पहुँचते ही आँखें सहसा ऊपर उठ जाती हैं। वहाँ गगनचुम्बी सुंदर पेगोड़ाओं की पंक्ति राजपथ के दोनों ओर खड़ी मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों मानव की कलाकार-भावना यहाँ पर मूर्त्तरूप में प्रगट होकर नीलगगन को भेंटती हुई अपने इष्टदेव के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करने के निमित्त जाना चाहती है। अस्तु, कहना न होगा कि काठमांडू के दक्षिण-पूर्व में स्थित नेवार-राजाओं का यह स्थान अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण बनाए हुए है। उसकी सुंदरता अभी तक नष्ट नहीं हुई है। बौद्धों के लिए पराजय का एवं नेवार-राजाओं के लिए विजय का यह नगर है।

बागमती-नदी पर स्थित ईटों के पुल पर से दूर से ही नगर की झाँकी मिलने लगती है और ऐसा प्रतीत होता है कि किसी दिन के इस गौरवशाली नगर में हम केवल उसकी पुरानी गौरव-गाथा सुनने और दिन-दिन अवनति की ओर जाते हुए नगर के खड़हरों एवं भग्न इमारतों का अवलोकन करने जा रहे हैं। भारत के मध्ययुगीय नगर जयपुर के समान ललितपाटन में भी आवास-स्थानों की एकरूपता न मिलेगी। उसमें देखने को जो मिलेगा, वे होंगे एक संग्रहालय के रूप में चैत्यों, पेगोड़ाओं और मंदिरों के समूहों में सुरक्षित भारतीय एवं पूर्वी एशिया की अनेक प्रकार की शिल्प-कलाओं के नमूने। वहाँ की लाल-हरी ईंटें, भूरी लकड़ियाँ, धूमिल पाषाण-खण्ड एवं हेमरंजित पीतल की वस्तुएँ कला-संबंधी अपनी कहानियाँ स्वयं सुनाएँगी। उत्तुङ्ग पाषाण-स्तम्भ पर सुवर्ण के समान चमकती हुई करबद्ध पृथ्वीनारायण शाह की मूर्ति स्वयं कह उठेगी कि भगवान् के सम्मुख राजा और प्रजा

सब समान हैं ।

दूसरे बड़े पाषाण-स्तम्भ पर स्थित एक प्रस्फुटित कमल पर दास्यभाव से बैठे गरुड़ की मूर्ति दिखाई देगी । इस स्तम्भ पर चंद्रमा एवं सूर्य की मूर्तियाँ लाल रंग से रँगी हैं । चंद्रमा के मध्य में सूर्य का चिह्न भारतीय पताकाओं में भी देखा जाता है। अतः हिंदू-राज्य नेपाल में भी इसका महत्व पाया जाता है और प्रत्येक स्थान पर अर्द्धचंद्र के ऊपर सूर्य का चिह्न बना मिलेगा, चाहे वह राजकीय पताका हो अथवा किसी गरीब व्यक्ति के मकान का दरवाजा हो । उक्त स्तम्भ-स्थित गरुड़ की मूर्ति के सम्मुख राधाकृष्ण का मंदिर पेगोड़ा-शैली पर बना है । मंदिर दो कोष्ठों का बना है । इसमें छःपहल पत्थरें पर खुलता बारामदा बना है । इसके प्रथम कोष्ठ में रामायण की कथाओं के चित्र पत्थरें पर खुदे हैं, जिसमें रामसीता के जन्म से लेकर राम-चरित्र के अंत तक की एक-एक कथा के चित्र शिलाओं पर अंकित हैं । इसी प्रकार दूसरे कोष्ठ में महाभारत के चित्र चित्रित हैं । इसमें मूर्तियों तथा दृश्यों के चित्रों का आकार बहुत ही छोटा है, क्योंकि एक ही फेरे में कथा पूरी कर दी गई है । इन चित्रणों में संगतराशी तथा पाटन के शिल्पियों की कला का उत्कृष्ट नमूना विद्यमान् है । खेद है कि मन्दिर की मरम्मत की व्यवस्था ठीक न होने से यह अलभ्य कला नष्टप्राय हो रही है ।

पाटन के पेगोड़ाओं के सामने कहीं सिर की मूर्ति है, कहीं किसी राजा के साथ हाथी की मूर्ति है तथा कहीं सिंह की मूर्ति है । दूर से देखने में यहाँ के पेगोड़ा ऐसे प्रतीत होते हैं मानों किसी असीम सागर में जहाज पाल से उड़ाए चले जा रहे हों ।

पाटन के पेगोड़ों की विशेषता यह है कि इनमें लकड़ी के काम के साथ ही पत्थर का भी काम बना है। यहाँ के पेगोड़ाओं, मन्दिरों और भवनों में पत्थर, ईंट और लकड़ी तीनों ही का उपयोग किया गया है।

ललितपाटन के प्रांगण में पेगोड़ा के साथ-ही-साथ भारत के मंदिरों की शैली पर शिवमंदिर बने मिलते हैं। मंदिरों की शैली काशी अथवा भुवनेश्वर जैसी है तथा शिखरों में अंतर नहीं है; किंतु मंदिर के कलश चैत्य से मिलते-जुलते हैं। यहाँ गणेश का भी एक मंदिर चौकोर पत्थर का बना है। मंदिर छोटा और द्वार मेहराबदार है। बाहर दो मूसे एक हाथ में लड्डू लिए हैं। मूसों के कुछ पीछे हटकर सटे हुए मकरामुख-मिश्रित बैठे सिंह की मूर्तियाँ हैं।

पाटन का राज्यप्रासाद एक दर्शनीय भवन है। उसे देखकर फतहपुरसीकरी का पंचमहल याद आ जाता है। द्वार पर लकड़ी की कारीगरी बहुत श्रेष्ठ की गई है, जिसमें धार्मिक देवताओं के चित्र खोदे गए हैं। द्वार के ऊपर बारामदेदार तीन दर की खिड़कियाँ हैं। नेवार-शिल्पकला का यह उत्कृष्ट नमूना है। बीच की खिड़की का दर बन्द है। उसमें नारायण की मूर्ति प्रतिष्ठित है। मूर्ति के नीचे अनेक हिन्दू-देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। यहाँ की कला देखने ही योग्य है, जिसका वर्णन करना कठिन है।

पाटन में प्रासादों तथा देवस्थानों में कलाओं की उत्कृष्टता से बढ़कर उसका महत्व उसके इतिहास में है। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध यहाँ आए थे। उनकी यात्रा का वर्णन सुनकर सम्राट् अशोक भी यहाँ आए। ईसा के २५० वर्ष पूर्व अशोक

ने भगवान् बुद्ध के आगमन के स्मारक-स्वरूप यहाँ पर पाँच स्तूपों का निर्माण कराया। एक स्तूप तो नगर के मध्य में है और चारों दिशाओं में चार स्तूप बने हैं। एक कहानी यह भी है कि अशोक की कन्या चारुमती यहाँ रही थी और पाटलिपुत्र के आधार पर उसने देवपाटन की रचना कराई थी।

ग्यारहवीं शताब्दि में नान्यदेव दक्षिण से यहाँ आए थे। यह राजपूत थे और मलाबार प्रान्त के नायर-प्रदेश के रहनेवाले थे। उनके साथ उनके साथी भी यहाँ आए हुए थे। उन्होंने नेपाल पर विजय किया और उसे एकसूत्र में बाँधकर भक्तगाँव में अपनी राजधानी बनाई थी। कहा जाता है कि नेपाल की नेवार जाति उन्हीं नायर लोगों की वंशज है।

पन्द्रहवीं शताब्दि के मध्य में यक्षमल्ल ने इस उपत्यका को तीन भागों में; अर्थात् भक्तनगर, ललितपाटन और काठमाण्डू में विभाजित कर दिया था। १५ वीं शताब्दि से लेकर १८ वीं शताब्दि तक पाटन ने अभूतपूर्व उन्नति की थी। पाटन के तत्कालीन राजा की जब हत्या हो गई तो पाटनवालों ने पृथ्वीनारायण शाह को राज्य करने के लिए आमन्त्रित किया था। पृथ्वीनारायण ने स्वयं राज्य लेना अस्वीकार किया; किन्तु अपने छोटे भाई को राज्य के निमित्त नियुक्त कर दिया था। वे भी चार वर्ष पश्चात् गद्दी से उतार दिए गए।

सन् १७६८ ई० में पृथ्वीनारायण तथा उनके गुरखा साथियों ने पाटन को करीब-करीब नष्ट कर दिया। राज्यप्रासाद उजाड़ कर दिया गया। अमीर लोग लूट लिए गए। यहाँ तक कि मंदिरों तक की अप्रतिष्ठा की गई। उस समय की पाटन की

दुरवस्था का चिन्ह उसके ध्वंसावशेष में अभी तक दिखाई देता है। पाटन के जीवन के साथ राजा जयदेव, नन्ददेव, अंशुमान, दलमर्दनशाह, तेजवरसिंह मल्ल, जयप्रकाश एवं हरिहरसिंह के नाम सम्बन्धित रहेंगे। पाटन के राज्यवंश के नाम से यहाँ एक राज्यवंश भी कुछ काल तक चला था, जो कुछ समय पश्चात् ही नष्ट हो गया।

यहाँ जून के आरम्भ में वर्षा आरम्भ होती है, जब कि दक्षिणी-पश्चिमी मानसून चलता है। 'मछेन्द्रयात्रा' पाटन का प्रसिद्ध मेला है। मछेन्द्र का मन्दिर यहाँ पन्द्रहवीं शताब्दि के आरम्भ में शुद्ध बौद्ध धर्म के मंदिर के रूप में निर्मित हुआ था। वास्तव में मछेन्द्रयात्रा एक बौद्ध पर्व है। इसमें हिंदू उसी प्रकार सम्मिलित होते हैं जिस प्रकार बौद्ध। मछेन्द्र की गणना वर्षा के देवता इन्द्र के समान की जाती है। यात्रा के दिन समस्त उपत्यका से दर्शनार्थी एवं यात्री यहाँ आते हैं। मछेन्द्र की मूर्ति लकड़ी की बनी है, जिसपर गहरा लाल रंग चढ़ा रहता है। यह मूर्ति सरलता से उठाई जा सकती है।

मछेन्द्रयात्रा के तीन चरण होते हैं। पहला चरण उस समय होता है जब कि मूर्ति जन-समुदाय के सम्मुख पाटन के मंदिर से बाहर लाई जाती है और उसे स्नान कराया जाता है। दूसरा चरण उस समय आरम्भ होता है जब कि रथ-यात्रा की तरह मूर्ति पाटन नगर के राजपथों पर घुमाई जाती है। अंत में मूर्ति का वस्त्र पुरोहित उतारता और उसे लोगों को दिखाता है। इसके पश्चात् पूजा होती है और मूर्ति पुनः पाटन के समीप निश्चित स्थान पर छः मास के लिए रख दी जाती है।

आषाढ़ मास के आरम्भ में प्रायः समस्त भारतवर्ष में रथ-यात्रा का उत्सव किसी-न-किसी रूप में मनाया जाता है। मछेन्द्र-यात्रा भी रथ-यात्रा का ही रूप मालूम होता है। उत्तरी भारत में रथ-यात्रा के दिन बूँद पड़ना शुभ माना जाता है। वर्ष पर्यन्त मछेन्द्रयात्रा के लिए करीब ७० फीट ऊँचा रथ बनाया जाता है। इतने बड़े रथ के कारण यात्रा बहुत धीरे-धीरे होती है। रथ के चक्रों पर गहरा रंग चढ़ाया जाता है तथा सारा रथ रंगीन होता है। करीब डेढ़ मील की यात्रा में लगभग चार दिन लग जाते हैं। लम्बे रस्से से रथ नागरिक लोग खींचते हैं। नागरिकों के गान-वाद्य के साथ यात्रा आरम्भ होती है। सुस-ज्जित हाथियों के हौदों पर राज्य-वंश के लोग यात्रा के साथ चलते हैं। यात्रा के समय लोगों में अजीव उत्साह और जीवन दिखाई देता है। नारियाँ पुष्पों की मालाएँ तथा रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित होकर राजपथ की खिड़कियों में तथा ऊँचे स्थानों पर बैठती हैं अथवा यात्रा के साथ चलती हैं। पुरुष भी सजधज कर यात्रा में सम्मिलित होते हैं। इस यात्रा में वास्तविक हिन्दू-जीवन दिखाई देता है।

ललितपुर में नारायण, शिव, कृष्ण, तलेजादेव, भीमसेन, बुद्ध भगवान्, मीननाथ, महाबुद्ध, मत्स्येन्द्रनाथ के मंदिर, अशोक-स्तूप तथा मूलचौक दर्शनीय स्थान हैं।

बालाजी

नेपाल में बालाजी नामक स्थान अपने प्राकृतिक दृश्यों के लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। इस स्थान की हरियाली, यहाँ की वनश्री,

स्रोत का पाषाण पर गिरकर मुक्तारूप में छितराना, मीलों फैली निम्नभूमि में लहलहाते खेतों की हरियाली, मकरमुख द्वारा प्रपातित क्षीण जल-धारा की कल-कल ध्वनि, विस्तृत सरोवर में असंख्य मछलियों का स्वच्छन्द विहार, उत्तुङ्ग नागार्जुन-पर्वत की सघन हरित तरु-मालाएँ, उसके चरणतलवर्ती सरोवर द्वय में प्रसरित चारु लहरियाँ आदि देखकर मन आत्म-विभोर हो जाता है।

यहाँ जलप्रपात से युक्त उद्यान में चुपचाप बैठकर समय बिता देने में बड़ा आनंद आता है। लोचन सौंदर्य-पान करते नहीं अघाते और मन प्रकृति की इस हरितस्थली में निर्द्वन्द्व विचरण करना चाहता है। कहना न होगा कि यह स्थान प्रकृति के उपासकों के लिए हर प्रकार से आह्लाद-दायक सिद्ध होगा।

इस स्थान को किसने कब बसाया था, इसे बताना कठिन है। जनश्रुति है कि सहस्त्रों वर्ष पूर्व किसी पवित्रात्मा की प्रेरणा इस तपस्थली के निर्माण में कारण-रूप रही है। यहाँ की अभिरम्यता, मुख्यतः नेपाल की गंदी आबादी से परे, इसकी स्वच्छता में निहित है।

काठमाण्डू से यहाँ तक पक्की सड़क है। सरोवर के बीच तक मोटर पहुँच जाती है। यहाँ नागार्जुन-पर्वत के मूल में करीब चार-पाँच फीट गहरे दो सरोवर आयताकार स्थित हैं। इनकी लम्बाई दो सौ गज और चौड़ाई साठ गज के लगभग होगी। पहला सरोबर १५० फीट लम्बा और ६० फीट चौड़ा होगा। दूसरा सरोवर भी इतना ही चौड़ा; परंतु ७० फीट से अधिक लम्बा न होगा। दोनों सरोवरों की गहराई समान है और

इनका भीतरी जल-संबंध है, अतएव जल समान-तल पर स्थिर रहता है। दोनों सरोवरों में बड़ी-बड़ी काली मछलियाँ भरी हैं। यात्री एवं दर्शकगण मछलियों को मूँगफली, चावल तथा चना खिलाते हैं। दाने की ओर मछलियाँ इतने जोर से दौड़ती हैं कि सहसा चित्रकूट के स्फटिक-शिला की याद आ जाती है, जहाँ मंदाकिनी में मछलियाँ चारा देखते ही एक के ऊपर दूसरी कूदती हुई ऐसा सुंदर दृश्य उपस्थित कर देती हैं कि दर्शक मुग्ध हो उठता है।

नागार्जुन-पर्वत बाँस और जंगली वृक्षों से इतना घना भरा हुआ है कि उसके तमिस्रमय रूप की प्रतिच्छाया वहाँ की हरियाली को दूनी कर देती है। इसी पर्वत से एक झरना छोटे सरोवर में आकर मिल जाता है और वहाँ से जल छोटे और बड़े सरोवरों से होता हुआ मकरमुख फुहारों से रात-दिन गिरता रहता है।

पर्वत-मूल और सरोवर के बीच एक पक्का विश्राम-स्थान बना है। यहीं पर चूने और ईंट के चबूतरे भी बने हैं, जहाँ बैठकर प्रकृति की शोभा निरखी जा सकती है। सरोवर के सम्मुख हरित दूर्वाच्छादित प्रशस्त मैदान है। प्रशस्त मैदान से नीचे जाने के लिए दोनों छोरों पर सीढ़ियाँ लगी हैं। करीब बारह फीट नीचे उतरने पर ऊपर के मैदान का दूना अत्यंत सुंदर दूसरा मैदान मिलता है। इसी मैदान के एक छोटे सरोवर में २१ मकरमुखों द्वारा जल गिरता है। इक्कीस मकरमुखों की पंक्ति के दोनों छोरों पर चार फीट के अंतर पर बनी दो बुर्जियों में स्थित मकरमुखों से भी जल गिरता है। इस प्रकार कुल २३ मकरमुख

बने हैं, जो दिन-रात जल उगला करते हैं।

मकरमुख की पंक्ति में अधिक जल प्रपातित करनेवाला एक बड़ा मुख बीच में है और उसके दाहिनी ओर ग्यारह तथा बाईं ओर नौ मुख बने हैं। प्रपात के सामने विस्तृत मैदान और उसके चारों ओर दस फीट चौड़ा एक सरोवर है। इसमें फुहारे का जल जाता रहता है। मैदान के दाहिनी ओर की पहाड़ी के मूल में दूसरा लम्बा सरोवर है। चारों ओर से घूमता हुआ जल इस सरोवर में आता है। यह सरोवर तीस फीट चौड़ा और साठ फीट लम्बा होगा। सरोवर के दक्षिण पार्श्व में एक संकुचित मैदान है और उसके पश्चात् हरित वृक्ष-श्रेणी है। यहाँ के उद्यान में लगभग दस हजार व्यक्ति उद्यानोत्सव में सम्मिलित हो सकते अथवा वन-भोजन कर सकते हैं।

नेपाल के सभी स्थानों में हम धार्मिकता का रंग चढ़ा हुआ पाते हैं। हिंदुओं के धार्मिक जीवन का जीता-जागता रूप मूर्तियों द्वारा यहाँ उसी प्रकार प्रदर्शित किया गया है, जैसे दिल्ली एवं वृन्दावन के बिड़ला-मंदिर में मूर्तीकार हिन्दू-जीवन की घटनाएँ दिखाई गई हैं। इन चित्रों के प्रदर्शनों का प्रभाव निरक्षर जनता एवं बालकों पर भी अनायास पड़ता है और उनके रहस्य जानने की जिज्ञासा उनमें स्वतः उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन काल के मंदिरों आदि में इस प्रकार की मूर्ति-कला की स्थापना का यही रहस्य है। नेपाल में तो यह बात विशेषरूप में देखी जाती है।

अस्तु, ऊपर वर्णित जलप्रपातों के मध्य का विशाल मकर-मुख देखने में हाथी के मुख के समान मालूम होता है। संभवतः

इस मकरमुख की रचना मन्दिरों में जल निकलने के लिए बने गोमुख के आधार पर की गई है। अधिक संभव है कि यहाँ पर मकरमुख का ग्रहण गज-ग्राह की प्रसिद्ध कथा के आधार पर किया गया हो। क्योंकि ग्राह द्वारा गज जब जल में पकड़ा गया था उस समय उसने सूँड़ उठाकर भगवान् से प्रार्थना की थी और भगवान् ने आकर उसकी रक्षा की थी। यही बात यहाँ के मकरमुख में कुछ विकृत रूप में मिलती है। उसका अग्र भाग हाथी के मुख जैसा है। सूँड़ उठी हुई है। सूँड़ के नीचे दोनों ओर दो बड़े दाँत भी हाथी के दाँत के समान बने हैं। कहना न होगा कि मकर के मुख में हाथी के समान मुख से बाहर निकले हुए दाँत नहीं होते। साथ ही; दूसरा कारण यह भी है कि हाथी के इस मुखाग्र भाग के पीछे ग्राह का स्वरूप भी बना है, जो हाथी पर आक्रमणोद्यत दिखाई देता है।

मकरमुख की इस आकृति का चलन जावा, तिब्बत, बंगाल, दक्षिण भारत एवं चीन में बहुत देखा जाता है। किन्तु जिस प्रकार का मकरमुख इन देशों में दिखाया गया है उस प्रकार का उसका मुख वस्तुतः होता नहीं है और इस प्रकार के जंतु भी आज तक दुनिया में देखे नहीं गए हैं। इसलिए मेरा यह अनुमान पुष्ट होता है कि गज-ग्राह की कथा से ही यह रूप ग्रहण किया गया है, जो भारतवर्ष से चलकर पूर्वी देशों में फैल गया। मैंने इसका नाम मकरमुख ही इसलिए दिया है कि इसी नाम से इसकी प्रसिद्धि है।

बीच के मकरमुख के मूल में ऊपर शंकर-पार्वती की मूर्ति है। शंकर पार्वती माता के साथ बैठे हैं। मूर्ति में कला-सम्बन्धी

कोई विशेषता नहीं है। देखने से यह बहुत पुरानी नहीं प्रतीत होती। मकरमुख के नीचे मूल में नारायण की द्विबाहु मूर्ति है। मूर्ति की मुद्रा में सरल प्रसन्नता है, मानों जल-धारा को देखकर मूर्ति आनन्दित हो रही हो। इस प्रकार मकरमुख के ऊपर शिव तथा नारायण की मूर्ति रखकर वैष्णव और शैव दोनों मतों का आदर किया गया है। मकरमुख के ऊपर दो साँपों के मुखों में मेढक दिखाया गया है। साँपों के किंचित् पीछे मगर की उभड़ी हुई आकृति पत्थर में ही बनाई गई है।

इस मध्यवर्ती मकरमुख के बाईं ओर पाँचवें तथा छठे मकरमुख के ऊपर चतुर्भुज विष्णु की मूर्तियाँ हैं। शंख, चक्र, गदा और पद्म उनके चारों हाथों में हैं। गरुड़ विष्णु को उठाए हुए उड़ने की मुद्रा में प्रदर्शित किए गए हैं। इस मूर्ति के और बाईं बुर्जी के मकरमुख पर गणेश की मूर्ति बनी है। मध्य के मकरमुख के दाहिनी ओर चौथे और पाँचवें मकरमुख के ऊपर चतुर्भुजी दुर्गा की मूर्ति है। दुर्गा के चरण के समीप सिंह बैठा है। ये सब मूर्तियाँ पुश्ते की दीवाल में बने सजे हुए ताख में लगाई गई हैं।

फुहारा के प्रशस्त मैदान में पाकड़ का वृक्ष बाईं ओर लगा है। उसके मूल में गोल चबूतरा बना दिया गया है, ताकि लोग वहाँ बैठकर विश्राम कर सकें। दाहिनी ओर भी तीन-चार वृक्ष हैं, जिनके चारों ओर गोल चबूतरे बने हैं; किन्तु उस ओर गन्दगी विशेष रहती है इसलिए कोई ध्यान नहीं देता।

ऊपर के बड़े सरोवर के वाम पार्श्व में शीतला का मन्दिर है। मन्दिर चीनी शैली का लकड़ी का बना छोटा पेगोडा है।

लकड़ी पर तान्त्रिक चित्र-लेखन किया गया है।

शीतला-मन्दिर के पीछे; अर्थात् उद्यान में जानेवाली सड़क के ठीक दाहिने पार्श्व में शेषशायी विष्णु की मूर्ति है। हमारे साथी डाक्टर रामअनुग्रह सिंह ने विशेषरूप से मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया। यह अद्भुत् दृश्य था। इसे अपने जीवन में जो एक बार देख लेगा, वह उसे कभी न भूल सकेगा।

भूमि की सतह से तीन फीट नीचे वर्गाकार एक छोटा सरोवर है। सरोवर लगभग बीस फीट लम्बा-चौड़ा होगा। इस सरोवर में ऊपर के सरोवर से बराबर जल एक ओर से आता और दूसरी ओर से निकलता जाता है। इसी सरोवर के मध्य में भगवान् विष्णु की दस फीट लम्बी मूर्ति शयन कर रही है।

मूर्ति के चारों कोनों पर पत्थर के चौखूटे चार खंभे खड़े हैं, जिनपर किसी समय मूर्ति को वर्षा एवं धूप से बचाने के लिए छाया रही होगी; परन्तु इस समय कुछ नहीं है। मालूम यह हुआ कि मेला या पूजा के दिन उसपर छाया कर दी जाती है।

सम्भवतः इस सरोवर को क्षीर-सागर बनाने की चेष्टा की गई है। इसकी अपनी अलग एक कहानी ही है। शिवपुरी में नीलकण्ठ की मूर्ति, जो वास्तव में इसी मूर्ति के समान है, जब प्रकट हुई तो नेपाल के महाराज उसके दर्शन के निमित्त जाना चाहते थे। उस समय समस्या यह उत्पन्न हुई कि नेपाल के राजा स्वयं विष्णु के अवतार कहलाते हैं, अतएव एक विष्णु दूसरे विष्णु के पास कैसे जा सकता था? तत्कालीन राजा की प्रबल इच्छा हुई कि नीलकण्ठ का दर्शन मिले। अतएव राज्यपुरोहितों की

मंत्रणा से शिल्पियों ने शिवपुरी की मूर्ति की नकल छोटे रूप में करना आरम्भ किया। कहा जाता है कि जब यहाँ की मूर्ति के शेष का पाँच फण बना तो नीलकण्ठ की मूर्ति का सात फण हो गया। जब यहाँ पुनः सात फण बनाया गया तो वहाँ नौ फण हो गया। जब यहाँ नौ फण बनाया गया तो वहाँ ग्यारह फण हो गया। यह दैवी घटना देखकर लोग महाराज के पास गए। महाराज ने सब सुनकर कहा कि अब फण बनाने की आवश्यकता नहीं। जैसा है उसी को देखने से नीलकण्ठ भगवान् की मौलिक मूर्ति का पता लग जायगा। इस नीलकण्ठ की मौलिक मूर्ति को लोग बूढ़ानीलकण्ठ कहते हैं।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक है। मूर्ति का मुख-भाग छोड़कर शेष भाग जल में तीन इंच नीचे रहता है। पूरी मूर्ति का दर्शन सरोवर के स्फटिक तुल्य स्वच्छ जल से बहुत ही सुंदर एवं चित्ताकर्षक होता है। मूर्ति का पत्थर और सरोवर के पत्थर हरे हैं। सरोवर का जल भी हरा दिखाई देता है। मूर्ति के ऊपर हरित वृक्षों की छाया पड़ती है और जब वृक्ष वायु-स्पर्श से हिलते हैं तो हिलती हुई छाया के कारण मूर्ति पर पड़नेवाली प्रकंपित धूप के पड़ने से वहाँ धूप-छाँह वस्त्र के लहराने का मनोरम दृश्य उपस्थित हो जाता है। मूर्ति पर जब जल हिलोरें लेने लगता है तो विश्व द्वारा विश्ववंद्य भगवान् का अभिषेक किए जाने का दृश्य उपस्थितकर वह किसे आनन्द-विभोर नहीं बना देता है?

भगवान् की मूर्ति शुद्ध आर्य-मूर्तिकला की प्रतीक है। भगवान् शेषशय्या पर सोए हैं। मस्तक पर शेष के फणों की छाया है। भगवान् के चारों हाथों में शंख, चक्र, पद्म और गदा हैं।

उनके विशाल वक्षस्थल पर सुन्दर वनमाला है, आजानुबाहु हैं और पतली कमर है। मस्तक पर मुकुट लगाए आभूषणधारी हैं। कलाकार के अनुपातानुसार मूर्ति का आकार बनाया है। कहीं से किसी प्रकार की कमी-वेशी नहीं मालूम होती। मूर्ति को देखकर कलाकार की कल्पना एवं निपुणता की सराहना किए बिना मन नहीं मानता। मूर्ति की मुखाकृति और मुद्रा बम्बई की एलिफेंटा की गुफा की मूर्ति से बहुत कुछ मिलती-जुलती प्रतीत होती है। एलिफेंटा की मूर्तियाँ नोना लगने के कारण विगलित-सी हो गई हैं; परन्तु उनकी मुखाकृतियाँ अभी रक्षित हैं। अस्तु, सरोवर के चारों ओर दो फीट चौड़ी परिक्रमा है। दर्शनार्थी चारों ओर घूमकर मूर्ति का दर्शन सब दिशाओं से कर सकता है। मूर्ति तक पहुँचने के लिए दो फीट चौड़ा पत्थर का पुल बना है, उसपर खड़े होकर अथवा वैठकर दर्शनार्थी भगवान् के चरणों का स्पर्श कर सकता है।

सबसे बड़े आश्चर्य की बात जो हमने देखी वह यह थी कि मूर्ति के मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगा था, जो केवल शंकर के मस्तक पर लगाया जाता है और शैवों का यह विशेष चिन्ह है। विष्णु के ललाट पर त्रिपुण्ड्र का होना नितान्त असंभव बात है। मालूम होता है कि नेपाल में जिस प्रकार बौद्ध और हिन्दू-धर्मों का समन्वय किया गया है उसी प्रकार वैष्णव और शैव सम्प्रदायों का समन्वय साम्प्रदायिक सहिष्णुता की भावना से किया गया हो, जो शायद नेपाल में ही सम्भव था।

कहना न होगा कि किसी भी धर्म में अतिरेक द्वारा उत्पन्न उसके विकृत रूप को न अपनाकर सार भाग के ग्रहण करने की

चेष्टा करने पर सब धर्मों एवं सम्प्रदायों में एकता दिखाई देगी। इसी आधार पर नेपाल में धर्म के नाम पर लड़ना नहीं; बल्कि प्रेम करना सिखाया गया है और वह नेपाल की देन है। इतिहास के ज्ञाता खुले हृदय से इसे स्वीकार करेंगे कि नेपाल की घाटी में बैठकर, दुनिया के तर्क एवं मायाजाल से दूर रहकर, यहाँ के लोगों ने धर्म के वास्तविक अर्थ को समझकर सभी धर्मों के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की है, जब कि हमारे लिए यह असम्भव-सी बात आज मालूम पड़ती है।

शेषशायी नारायण की पूजा बौद्ध और हिन्दू दोनों समान रूप से करते हैं। पूजा में पुष्पों एवं अक्षत का उपयोग होता है। बौद्ध इतना और करते हैं कि भगवान् की पूजा करने के पश्चात् नागार्जुन-पर्वत पर चले जाते हैं। वहाँ एक बौद्ध चैत्य है। उसकी पूजा करने के पश्चात् उनकी पूजा का क्रम समाप्त होता है। इस प्रकार नेपाल के बौद्धों ने हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-देवताओं का भी उसी प्रकार आदर किया है जिस प्रकार अपने धर्म और धार्मिक स्थानों का करते हैं।

———

गोदावरी

काठमाण्डू से सात मील पूर्व दिशा में राज्योद्यान है। इस उद्यान का नाम गोदावरी है। सम्भवतः इसके नामकरण का आधार चित्रकूट की गुप्तगोदावरी अथवा पयस्विनी के जल में स्थित सफेद पत्थर (मारबल राक) की भाँति यहाँ के पर्वत पर मिलनेवाले सफेद पत्थरों पर से जल की धारा का बहना है।

प्रातःकाल ९॥ बजे गोदावरी के लिए हम लोगों ने प्रस्थान किया। बागमती के लोहे के बने पुल को पारकर सड़क गोदावरी की ओर गई है। बागमती का दृश्य यहाँ पर सुन्दर है। कहीं-कहीं दोनों ओर घाट बने हैं। नगर की ओर करीब पाँच सीढ़ियों का घाट बना है। बीच-बीच में बुर्जियाँ बनी हैं। पुल के दक्षिण ओर राजकीय धर्मशाला है। लम्बे घाटों को देखने से काशी के घाटों की याद आ जाती है। बागमती में विशेष जल नहीं रहता। बरसात होने पर अधिक-से-अधिक चार सीढ़ी जल चढ़ता है और फिर शीघ्र ही उतर जाता है।

घाटों के बीच-बीच में जल को स्पर्श करता घाट की सतह से जल तक कुछ झुकता हुआ सीधा पत्थर लगा है। इस पत्थर के मस्तक पर विष्णु की मूर्ति बनी रहती है। मूर्ति पर कई फण-वाले सर्प की छाया रहती है। इसी पाषाण-शिला पर कुछ स्वाँस रहते मृत्युमुख व्यक्ति को सुला दिया जाता है। उसका मस्तक विष्णु के चरण के नीचे और पैर बागमती के जल में रहता है। उस शिला के सहारे कुछ खड़ा मृत्युमुख व्यक्ति को इस प्रकार प्राण त्यागने में सुख मिलता है या दुःख, इसे नहीं कहा जा सकता; किन्तु इस प्रकार प्राण त्यगना वहाँ बड़ा पुण्यकर समझा जाता है।

मार्ग में परेड का एक छोटा मैदान मिला। उसी के पास अशोक का स्तूप है। हम लोग अनेक उपनगरों को पार करते हुए ग्राम से होकर चले। सड़क के किनारों पर कूप मिलते गए। कहीं-कहीं बावली उसी प्रकार की मिली जैसा भक्तगाँव में एक जगह वर्णन किया गया है। मार्ग असम और ढालुआँ मिला।

गर्मी कुछ बढ़ चली। यहाँ नयी सड़क निकाली गई है, इससे उसके दोनों ओर नए वृक्ष लगाए गए हैं। सड़क के दोनों ओर मेंड़ बाँधकर बनाई गईं धान की क्यारियाँ थीं। क्यारियों में कहीं-कहीं धान रोपा जा चुका था और कहीं-कहीं पंक्तिबद्ध स्त्रियाँ धान रोप रही थीं।

आगे बढ़ने पर क्रमशः जावालखेल नामक स्थान, हरीसिद्धि ग्राम और पाँड़ेगाँव मिला। इस समय हम लोग काठमाण्डू की भूमितल से काफी नीचे आ गए थे। भीमखेड़ी के पश्चात् पाँड़े-गाँव में पहले-पहल पीपल का वृक्ष दिखाई दिया। पीपल के वृक्ष का यहाँ भी महत्व है। उसके मूल में भी कुछ मूर्तियाँ रखी थीं।

मार्ग के ग्रामीण बड़े ही सरल और परिश्रमी थे। यहाँ के मकान ईंटों के बने थे, जिनपर टीन, खपड़ा या फूस की छाजनें थीं। मकान एकमंजिले न थे, सभी दो-तीन मंजिलों के थे। वे हवादार, साफ और सुन्दर थे। उनमें आँगन न था। प्रायः मकानों में दो कमरे नीचे और दो ऊपर थे। यदि बड़ा मकान हुआ तो चार कमरे नीचे और चार ऊपर बने थे। मकानों में खिड़कियाँ चारों तरफ थीं। सड़क के दोनों किनारों पर बीच-बीच में गाँव के छोटे बाजार थे। हम लोगों की मोटर आती देखकर बालक चिल्लाने लगे और प्रसन्न होकर बो-बोकर बोमी पीटने लगे।

गोदावरी ग्राम में हम लोगों ने प्रवेश किया। गोदावरी ग्राम नेपाल की विस्तृत उपत्यका का पूर्वी अन्तिम ग्राम है। ग्राम के पश्चात् पर्वतमाला है। उस दिन वहाँ आकाश में बादल खेल रहे थे।

राज्योद्यान के प्रवेश-द्वार पर पहरा मिला। प्रवेश करते ही उस रक्षित अरण्य का सुन्दर दृश्य सामने आया। उसमें बाँस की बहुत-सी कोठियाँ खड़ी हैं। दूसरे लोगों के भी बाग यहाँ पर हैं। साधारण नागरिकों के लिए उद्यानोत्सव मनाने को अथवा वन-भोजन के लिए फूस की लम्बी झोपड़ियाँ बनी हैं।

यह उद्यान पर्वतमाला के चरण भाग में है। फाटक से अन्दर जानेवाले मार्ग पर ईंटों के खम्भों पर बाँस डालकर कृत्रिम कुञ्ज बनाया गया है। बाग में दो मंजिला राज्यप्रासाद बना है। उसके सम्मुख पहुँचते ही मन प्रसन्न हो उठता है। प्रासाद के सम्मुख काफी बड़ा फुहारा बना है। उसकी दीवाल कम-से-कम पाँच फीट चौड़ी है, जिसपर आनन्द से बैठा, सोया तथा समूह बनाकर खेला जा सकता है। फुहारा रात-दिन तीव्र गति से छूटता रहता है। झरने के जल से फुहारा के पाइप का सम्बन्ध कर दिया गया है। फुहारा की धारा काफी ऊँची जाती है। फुहारा के हौज में कमलदल प्रसरित हैं, जिनपर जल पड़ने से उत्पन्न ध्वनि बड़ी सुहावनी लगती है। फुहारे का जल उद्यान की सिंचाई के काम आता है, इसलिए रात-दिन अबाध गति से चलते रहने पर भी उसका जल-तल सम रहता है। फुहारा के पार्श्व में बैठने के लिए छाया हुआ विश्राम-स्थान बना है, जिसमें दो बेंचें रखी हैं। उनपर बैठकर लोग दृश्यों की अभिरम्यता निरखने का आनन्द लेते हैं।

महाराज के इस उद्यान-प्रासाद का अग्रभाग प्राचीन ग्रीको-रोम-शैली पर बना है। उसमें चार कमरे नीचे और चार ऊपर बने हैं। बिजली का भी प्रबन्ध है। नीचे के दो अग्रिम कमरों

में धार्मिक चित्र बने हैं और शास्त्र-वचन हिन्दी में लिखे हैं। कमरों में कोई खास सजावट न थी। ऊपर की मंजिल में अगले दोनों कमरे के पीछे दो कमरे सोने के लिए बने हैं। प्रासाद से अरण्य की सुन्दरता और पर्वत का दृश्य अत्यन्त सुहावना लगता है।

प्रासाद के ठीक सम्मुखवाले पर्वत पर मटमैले रंग का पत्थर मिलता है। उसपर करीब ५० फीट के वर्ग में एक चट्टान खुदी थी, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि यहाँ का पत्थर किंचित् श्वेत होता है। समस्त पर्वत हरित तरुओं से आच्छादित रहता है। प्रासाद के उद्यान में सुन्दर वृत्त लगे हैं। प्रासाद की सीढ़ियों के पार्श्वों में अखरोट, चिलौन तथा चीड़ के वृत्त हैं। इस उद्यान से ऊपर दूसरा बाग है, उसमें कागजी नीबू, सेव, आलूबोखारा, खुवानी और तिमिला के वृत्त लगे हैं। उद्यान के माली ने आलू-बोखारा, सेव और नीबू से हम लोगों का स्वागत किया। आलू-बोखारा और सेव दोनों ही खट्टे थे। इस उद्यान में कपूर का वृत्त मैंने पहले-पहल देखा। कपूर की पत्तियाँ बहुत हरी, सुन्दर और अत्यन्त घनी होती हैं। पत्तियों को मसलकर सूँघने के बाद वृत्त का भेद खुलता है। उसमें कपूर-जैसी गन्ध आती है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि कपूर यहाँ का एक उद्योग-धन्धा है। पशुपति-नाथ के मन्दिर में देशी कपूर का प्रयोग किया जाता है। पत्तियों से क़पूर तैयार करने का ढंग बहुत ही सरल है। यहाँ का कपूर जापानी कपूर की तरह चमकीला उज्वल नहीं होता। यहाँ वाले कहते हैं कि विदेशी कपूर शुद्ध नहीं होता।

इसमें सन्देह नहीं कि जीवन की शिथिलता से ऊबकर यहाँ

आने पर मनुष्य को आराम अवश्य मिलता है। उसकी थकान दूर हो जाती है और शरीर में स्फूर्ति एवं उत्साह का आभास होने लगता है। यहाँ की विशेषता यहाँ की वनश्री है। यह राज्यो-द्यान तीन ओर पर्वतों से घिरा हुआ है और उसमें राज्यप्रासाद ऐसा प्रतीत होता है मानों पर्वत की गोद में बैठा हो। काठमाण्डू से आनेवाले मार्ग के दोनों ओर की पहाड़ियाँ सूखी रहती हैं। उनपर केवल हरी-हरी घास उगी रहती हैं। यहाँ पहुँचने पर प्राकृतिक छटा और हरियाली देखकर मन प्रसन्न हो जाता है तथा यहाँ की यही विशेषता है। जिस समय बादल पर्वत पर घिरकर क्रीड़ा करने लगते हैं, मदमाती कोयल कूकने लगती है और झींसी की फुहार पड़ती है, उस समय का दृश्य अत्यंत मनमोहक होता है।

गोदावरी-उद्यान से एक फर्लांग के अन्तर पर एक प्राकृतिक झरना है। इसका जल मारबुल पर गिरकर बड़ा भला प्रतीत होता है। इसमें नौ धाराओं से पानी गिरता है। उसके पश्चात् ७, ५, ३, १ धाराएँ एक के बाद दूसरी गिरकर प्रकृति की अभिरम्यता को पराकाष्ठा पर पहुँचा देती हैं। इस उपत्यका का यह सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक दृश्य कहा जा सकता है।

हरिसिद्धि

गोदावरी जाते समय हरिसिद्धि ग्राम मार्ग में पड़ा था। उस समय नहीं मालूम था कि यहाँ लौटना पड़ेगा। पूर्व परि-चित मार्ग जावलखेल, लगनखेल आदि स्थानों को पार करते हुए हम लोग हरिसिद्धि ग्राम के तोरण-द्वार पर पहुँचे।

तोरण-द्वार पर पहुँचते ही श्री तुलसी मेहरजी ने कहा कि जूते उतार दीजिए। ग्राम के अन्दर चर्म का जूता वर्जित था। प्रवेश करते ही मार्ग के दोनों ओर चर्खा कातनेवालों की पंक्ति दिखाई दी।

यह आश्चर्य की बात थी कि एक गाँव में ८०० चरखे एक स्थान पर एक साथ चल रहे थे। मुझे मालूम होने लगा, जैसे मैं स्वप्न देख रहा हूँ। धनुष-चक्र, सावरमती-चक्र, यवरदा-चक्र, और न जाने कितने चक्र जन्म ले चुके हैं। उन सबसे यहाँ का चरखा भिन्न था। केवल डेढ़ फीट की लम्बाई में चर्खे का पूरा ढाँचा था। यह चर्खा अपने ढंग का निराला था। एक फुट के मोटे तख्ते पर एक ओर चक्र और दूसरी ओर तेकुआ का स्थान था। पाँच वर्ष का बालक भी उसे उठा सकता था।

यहाँ का दृश्य अद्भुत था। सभी जनता ग्रामीण थी। किसी सभा या प्रवचन का यहाँ प्रबंध नहीं हुआ था। मार्ग के दोनों ओर बैठा जन-समुदाय सामूहिक रूप में ८०० चर्खे चला रहा था। चर्खों से जरा भी आवाज नहीं निकल रही थी। कातनेवालों में ७० वर्ष की वृद्धा से लेकर ५ वर्ष तक के बालक और बालिकाएँ थीं। युवती, प्रौढ़ा, विवाहिता, अविवाहिता सभी तरह की स्त्रियाँ चर्खा चला रही थीं। किन्तु बालकों के अतिरिक्त युवक कातनेवाले दिखाई न पड़े।

दरिद्रता-देवी का जैसा सामूहिक रूप मैंने यहाँ देखा उतना अपने जीवन में अन्यत्र नहीं देखा था। प्रत्येक चर्खा के साथ दरिद्रता-देवी की जीवित मूर्ति बैठी थी। कहना न होगा कि

पैसे के अभाव में उन चरखा चलानेवाली स्त्रियों के शरीर के फटे-पुराने वस्त्र, उनके सुन्दर शरीरों को कलुषित बनानेवाली गंदगी और उनके मरे हुए मन को देखकर कोई भी सभ्यता बिना रोए न रहेगी।

यहाँ चर्खा चलानेवाली स्त्रियों में कितनों की पीठ पर बच्चे बँधे सो रहे थे, कितनों के बच्चे चर्खे की बगल में बिछी फटी चटाइयों पर सो रहे थे और कितनों की पलथियों पर पड़े हुए बच्चे माँ के सूखे स्तन निचोर रहे थे। उनमें किसी सौभाग्यवती का मस्तक यदि सौभाग्य-चिन्ह से सूना था तो किसी के बाल तेल के अभाव से रूखे हवा में उड़ रहे थे। यदि किसी का स्तन फटे वस्त्र के कारण ढाँका नहीं जा सकता था तो किसी का यौवन दरिद्रता-देवी की उपासना में सूख गया था, किसी का यौवन विकसित होने के पहले ही मुरझा गया था, किसी की हड्डियाँ दिखाई दे रही थीं और कोई गर्भ के भार से दबी हुई धीरे-धीरे चर्खा चला रही थी।

सात सौ नारियों में मैंने किसी के मुख पर प्रसन्नता न देखी। किसी के भी शरीर पर स्वच्छ और सजा वस्त्र दिखाई न दिया। उनके शरीरों पर आभूषणों के नाते झूठे मूँगों की मालाएँ, बछवा बाँधने योग्य गिलट की मोटी सिकड़ियाँ और चीनी मिट्टी की लाल रंग की मालाएँ थीं।

वह था एक स्वतन्त्र-देश नेपाल का दृश्य। अपने औदार्य, त्याग, परोपकार, समदर्शिता आदि स्वाभाविक गुणों के लिए प्रसिद्ध हिन्दू-जाति के सामाजिक जीवन का यदि कहीं पतन देखना हो तो नेपाल में ही इन नारियों के आकार-प्रकार में

देखा जा सकता है और इसमें संदेह नहीं कि उसे देखकर किसी भी सभ्यता को अवश्य मुँह छिपाना पड़ेगा।

अस्तु; वहाँ पर बालक भी दिखाई दिए। उनमें जीवन नहीं था, मानों वे जंगली घास की तरह उत्पन्न हो गए थे। वे यदि जी रहे थे तो दरिद्रता-देवी की सेवा करने के लिए और दुनियाँ को गंदगी, अशिक्षा, दीनता, नैराश्य एवं असंतोष की शिक्षा देने के लिए ही जी रहे थे। नेपाल में न जाने कितने लाल, कितने वीर, कितने पंडित, कितने सुधारक एवं कितने सुकर्मी केवल मरने के लिए जी रहे हैं। उनकी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं है। उनके भोजन के लिए कमाने का कोई साधन नहीं है, जिससे वे निकम्मे रहकर अपने परिवार के लिए भार-रूप हो रहे हैं। ऐसी दशा में यदि वे चर्खा न चलाते तो क्या करते? हिमालय की इस उपत्यका के गावों में चर्खे ही उन्हें दुनियाँ की कुछ खबरें सुना देते हैं, जिसके कारण उनमें कुछ चेतना आ रही है। यहाँ का दृश्य देखकर मुझे महात्मा गांधी का वचन स्मरण हो आया जो उन्होंने आज से सत्ताईस वर्ष पहले कहा था कि गावों में जाकर बस जाओ तो दरिद्रनारायणों के बीच तुम्हें ईश्वर का दर्शन मिलेगा। उन्हीं के बीच तुम्हें शांति-संतोष प्राप्त होगा और इसका ज्ञान होगा कि तुमने अपना जीवन व्यर्थ नहीं खोया। मानवश्रेष्ठ महात्मा गांधी की बात का वास्तविक अर्थ मैंने यहाँ आकर इतने दिनों के बाद समझा कि ग्रामों का स्तर ऊपर उठाने में ही देश का स्तर ऊपर उठेगा और देश की रीढ़ मजबूत होगी। उस अवस्था में देश सचमुच देश होगा और देश में सुख, आनन्द एवं शान्ति को

अभिवृद्धि के साथ मानव अपने को मानव के रूप में देखने का प्रयत्न करेगा।

यहाँ पर मैंने अन्धी लड़कियों को, छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को और अपने शरीर के भार से कम्पित वृद्धा स्त्रियों को चर्खों के साथ अपने जीवन को काटते हुए देखा। अपने पेट के लिए, अपने इस कभी न भरनेवाले खन्दक के लिए मानव क्या नहीं करता, यह बात मेरी समझ में आ गई। अन्धी लड़कियों से पूछने पर उत्तर मिला,' 'और क्या करूँ ?' वृद्धा ने उत्तर दिया—'और काम ही क्या है ?' बालक-बालिकाओं ने कहा—'और किस लायक हूँ ?'

इन उत्तरों को सुनकर मैं उदास हो गया। मुझे सभ्य संसार पर ग्लानि उत्पन्न हो गई। इतने में अचानक बगल में खड़े श्री तुलसी मेहर ने कहा—बाबू, ऊपर त्रिशक्ति का मंदिर है, चलिए !

मैं अपने मन के भरे हुए भार से दबा हुआ ऊपर गया। पुजारी ने हुक्म दिया। लेकिन जीवित देवताओं की दुर्दशा, उनके करुण रूपों को देखकर किसी और देवता की ओर देखने की रुचि न हुई। मन खिन्न था। पुनः नीचे उतर आया। वहाँ खद्दर के थान रखे थे और सूत का ढेर लगा था। यद्यपि उन दरिद्रनारायणों के श्रम एवं त्याग के फलस्वरूप अनेक वस्त्रों की ढेरें उनके सम्मुख लगी थीं; किंतु वे उनके सुख से वंचित थे। क्योंकि उनके साथ सदा खाली रहनेवाला पेट लगा था, उन्हें कोई सहारा देनेवाला न था और उन्हें न कोई विश्वास दिलानेवाला था कि दिन भर भूखे रहने के बाद शाम को उनके

मुखों में अन्न पड़ जायगा। उनका कैसा निराधार जीवन था, कैसी विषम समस्या थी और कितनी दयनीय स्थिति थी?

वहाँ के बने खद्दर भारत की अपेक्षा महँगे पड़ते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि रूई यहाँ वर्धा से मँगाई जाती है, जिससे बहुत व्यय होता है। हिमालय-पर्वत को पारकर रूई की गाँठें लाना साधारण बात नहीं है। यदि नेपाल में रूई का उत्पादन होने लगे तो खद्दर वहाँ बहुत ही सस्ता बिक सकता है। यहाँ पर सूत की कताई चर्खा-संघ के नियमों के अनुसार दी जाती है।

यहाँ पर यह सब देख-सुनकर हम लौटने लगे। इसपर कातनेवालों की आँखें भर आईं। चलते हुए चर्खे अचानक रुक गए। उनकी आँखें सहसा हमारी ओर उठ गईं। हमारी भाषा, हमारे रहन-सहन से अपरिचित जन-समुदाय जो शायद ही अपने गाँव से कभी बाहर निकला होगा, क्या भावनाएँ लेकर नीरव हो गया था—इसे भगवान् ही जानें! हम यहाँ एक क्षण के लिए आए थे और उन्होंने हमें क्षण भर ही देखा। काशी का नाम सुनकर उनके मुख प्रफुल्लित हो गए थे और श्रद्धा-भक्ति से उनकी आँखें नमित हो गई थीं। हम उनकी स्मृति लेकर और अपनी स्मृति वहाँ छोड़कर चल पड़े। कहाँ के हम थे और कहाँ के वे थे? समुद्र में तैरती हुई लकड़ियों की भाँति कहीं पर मिल गए थे और फिर अलग हो गए।

वहाँ से चलकर हमने प्रवेश किया एक नीची छत के दो-मंजिले मकान में। यह स्थान उन कातनेवालों के प्रांगण से पश्चिम ओर था। यहाँ छः-सात वर्ष के बालक शटल-मशीन पर कपड़ा बीन रहे थे। ऊपर साबरमती-चर्खा चलाते हुए पाँच-

छः वर्षों के विद्यार्थियों की पंक्ति बैठी थी। उसी उम्र के लड़के रूई भी धुन रहे थे। मैंने श्री मेहरजी की ओर देखकर पूछा—'क्या नेपाल में युवकों का अकाल है?' मेहरजी की आँखें ऊपर उठ गईं। वह केवल यही कह सके—'आप तो सब देख ही रहे हैं।'

वहाँ से होकर हम तोरण-द्वार पर लौट आए। हम लोग जहाँ जूते छोड़ गए थे, वहाँ से उन्हें उठाकर किसी ने मोटर के पास सजा रखा था। हम चलना ही चाहते थे कि एक गरीब वृद्धा आई और उसने कहा—काशी? मैंने कहा—हाँ। उसने बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़ा। उसकी आँखें भर आई थीं। वह यह असम्भव आशा लिए हुए थी कि क्या वह भी कभी काशी जा सकती है? क्या उसके इतने अच्छे भाग्य हैं? देखें स्वतन्त्र नेपाल से गरीबी का यह कलंक कब दूर होता है?

———

काठमाण्डू

संवत् की दूसरी शताब्दि में मानगृह का निर्माण हुआ था। मानगृह लिच्छवि-राजाओं का राज्यप्रासाद था। उस काल की कोई भी विशिष्ट कला चेगूनारायण की मूर्ति के अतिरिक्त उपलब्ध नहीं है। मानगृह कहाँ था तथा उसका भग्नावशेष कहाँ है, यह नेपाली बन्धुओं के लिए अन्वेषण की वस्तु है।

लिच्छवि-राजा मानदेव द्वितीय के एक शिवाले से प्रतीत होता है कि मानगृह एक प्रासाद था। वह अत्यन्त उत्तुङ्ग प्रासाद था। उसमें अनेक कोष्ठ थे। प्रत्येक कोष्ठ में पूजा-गृह

था। दिवालों पर मूर्तियाँ खुदी हुई थीं। मानगृह की छत ढालू थी और भूमि से ऊपर क्रमशः प्रति कोष्ठ के ऊपर आकार में लघु होती जाती थी। वह वर्णन भरतगाँव के न्यतपोल-शैली से मिलता है।

सन् ४४६ में चीनी प्रतिनिधि-मण्डल भारतवर्ष आया था। मार्ग में नेपाल पड़ा था। इस मण्डल ने ताङ्-इतिहास में अपना संस्मरण लिखा है। नेपाल की राजधानी के विषय में लिखा है—'नेपाल की राजधानी में एक भव्य महल है। महल कई मंजिलों का बना हुआ है। महल ऊँचा एवं परिधि में ४०० फीट है। उसके ऊपरी भाग में दस हजार व्यक्ति रह सकते हैं। उसमें २१ कोष्ठ अर्थात् तल्ले हैं। स्थान-स्थान पर पत्थरों की खुदी मूर्तियों की भरमार है। मूर्तियाँ रत्नों द्वारा सजाई गई हैं।*

काष्ठमण्डप

काठमाण्डू का सबसे प्राचीन नाम मंजुपत्तन है। मंजुश्री के कृपाणाकार पर काठमाण्डू नगर बसा है। कहा जाता है कि मंजुश्री ने काठमाण्डू नगर की नींव डाली थी। कालान्तर में कान्तिपुर भी इसका नाम हो गया था। इसका शुद्ध नाम 'काष्ठ-मण्डप' था, उसका अपभ्रंश काठमाण्डू हो गया। नेवार लोगों का कहना है कि राजा लक्ष्मणसिंह ने सन् १५९६ ई० में दरबार-प्रांगण के दक्षिण-पश्चिम में यात्रियों तथा साधु-संतों आदि के रहने के लिए एक वृक्ष की लकड़ी से पूरी इमारत बनवाई

* 'नेपाल'—दिल्लीरमण रेगमी, पृष्ठ १६.
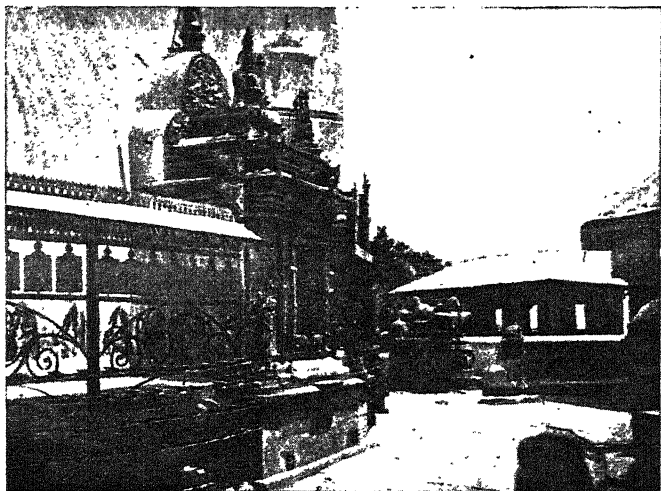
पूर्वीय प्रवेश—स्वयंभू नाथ
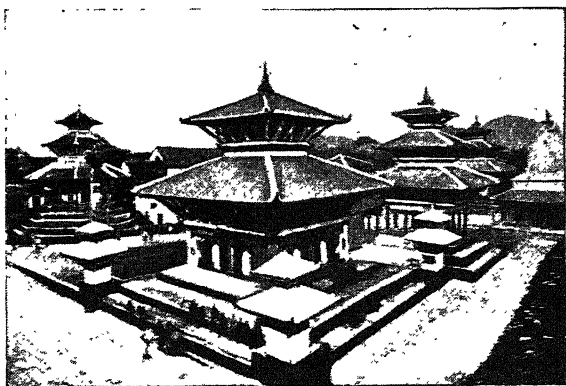
दरवार प्रांगण काठमाण्डू

थी। यह प्राचीन भवन अब तक दरबार-प्रांगण के समीप उपस्थित है। इसी के नाम पर नगर का नाम काठमाण्डू पड़ा था। इमारत में गोरखनाथ की मूर्ति है।

काठमाण्डू पहले एक मील के क्षेत्रफल में बसा था। परन्तु धीरे-धीरे बढ़ता गया और वर्तमान नगर बहुत बड़ा हो गया है। इस समय इसका क्षेत्रफल छः या सात मील से कम न होगा। नगर का मध्य भाग दरबार का प्रांगण है और यहाँ से काशी के समान सकरी गलियाँ और सड़कें अव्यवस्थित रूप से चारों ओर फैली हैं। नगर के बीच में घूमने पर नगर का अत्यन्त गन्दा रूप, किसी समय के उत्तरीय भारत के किसी प्राचीन नगर के प्राचीन भाग से, अच्छा न मिलेगा। मकान पुराने शैली के बने हैं। किसी पर पेगोड़ा-शैली की छत है तो किसी पर साधारण खपड़ा है। दुकानें बहुत ही छोटी-छोटी हैं। मकानों की छतें नीची हैं। मकानों का बाहरी ढाँचा तो बड़ा सुंदर एवं कलापूर्ण रखा जाता है; परन्तु भीतर न तो उतनी सुन्दरता रहती है और न सफाई।

राणा लोगों के आगमनकाल से नेपाल राणाओं की जैसे निजी सम्पत्ति हो गई है। उसे वे अपना गुलाम-देश समझते हैं। आधुनिक नेपाल का कम-से-कम एक-तिहाई भाग राणाओं के महलों, प्रासादों एवं खेल के मैदानों में निकल गया है। प्राचीन नगर के बाहर कुछ नवीन ढंग के भी मकान बने हैं; किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। काठमाण्डू में जहाँ एक ओर राणाओं के यहाँ सोना बरसता है, तो वहाँ दूसरी ओर नगर की कितनी ही वस्त्र-हीन एवं भूखी गरीब प्रजा

दबाकर सो रहती है। पूँजी और गरीबी का जितना अधिक वैषम्य वहाँ मिलेगा, उतना कहीं नहीं पाया जा सकता। मध्यमवर्ग, जो देश का जीवन होता है, नगण्य-सा है। वहाँ केवल दो ही वर्ग हैं—(१) राणावर्ग और (२) सर्वहारावर्ग। कुछ दुकानदार या व्यापारी हैं; किन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि राजनीतिक अथवा सामाजिक क्षेत्र में उनकी कोई आवाज नहीं सुनाई देती है।

(हनुमानढोका)

यह दरबार-प्रांगण का एक प्राचीन स्थान है। प्रांगण में हनुमान्‌जी की मूर्ति चौकोर पत्थर के स्तम्भ पर सिन्दूर से रँगी हुई स्थापित है। मूर्ति के ऊपर छाता लगा हुआ है। मुख को छोड़कर मूर्ति का शरीर वस्त्र से आच्छादित रहता है। मूर्ति के उत्तर पार्श्व में झंडा और कपड़े की छतरी धूप आदि से रक्षा के निमित्त लगी है। इसी स्थान को हनुमानढोका कहते हैं।

(दरबार)

काठमाण्डू का प्रसिद्ध स्थान दरबार-प्रांगण है। यहाँ मल्ल राजाओं का राज्यप्रासाद था। काठमाण्डू में यह सबसे सुंदर इमारत है। दरबार का द्वार हनुमान्‌जी की मूर्ति के वाम पार्श्व में है। द्वार पर दो सिंह बने हैं और उनपर तान्त्रिक शैली की दो चतुर्भुजी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। प्रवेश-द्वार हेमरंजित पीतल के पत्र से मढ़ा हुआ है। भीतर जाते ही बाईं ओर नृसिंह भगवान् की मूर्ति मिलती है तथा मूर्ति के ऊपरी दोनों हाथों में चक्र एवं गदा हैं। नीचे के दोनों हाथों से अपनी जंघाओं पर

लिटाए हुए हिरण्यकश्यप का पेट फाड़ रहे हैं। उसी की बगल में लकड़ी के खंभों से बना प्राचीन ढंग का बारामदा है। बारामदा के दक्षिण पार्श्व में एक चौकी पर गद्दी-मसनद लगी है। वहीं मल्लराजा सम्भवतः बैठकर अपना दरबार करते थे। इस स्थान को गद्दी कहते हैं।

दरवार का प्रांगण आयताकार एवं अत्यन्त विशाल है। चारों ओर प्रासाद बने हैं। स्थान की विशालता एवं चारों ओर बने प्रासादों की सुंदरता देखनेवालों के हृदयों पर अपनी छाप लगा देती है। प्रांगण के मध्य में चौकोर पत्थर का चबूतरा है। प्रांगण का फर्श पत्थर का बना है। प्रांगण के भीतर प्रवेश करना निषिद्ध है, अतएव कोई जा नहीं सकता। प्रांगण के दक्षिण ओर का प्रासाद पेगोड़ा-शैली का बहुत ही ऊँचा आठ मंजिल का बना है। उत्तर कक्ष में स्थित प्रासाद के ऊपर के चार मंजिल ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते गए हैं, जिससे सबसे ऊपरी भाग गोलाकार गुम्बज-सा प्रतीत होता है। इसे देखने से प्राचीन ढंग का राजप्रासाद सचमुच मालूम होता है। कहा जाता है कि सभी प्रासादों को राजा प्रतापमल्ल ने अपने समय में बनवाया था। इसके प्रांगण में शिव-पार्वती एवं विष्णु की मूर्तियाँ हैं।

दरबार के भीतरी प्रांगण के चारों ओर बने प्रासादों में जाने के लिए सब में छोटे-छोटे दरवाजे लगे हैं। ये दरवाजे संभवतः इसलिए लगे हैं कि एक प्रासाद पर आक्रमण होने की अवस्था में दूसरे प्रासाद में शरण लेकर रक्षात्मक युद्ध किया जा सके।

(वसंतपुर-दरबार)

युद्धरोड पर वसंतपुर-दरबार है। यह स्थान आधुनिक दरबार तथा प्राचीन दरबार से सटा हुआ है। इसके भीतर कोई नहीं जा सकता। इमारत बहुत ही भव्य तथा विशाल बनी है। युद्धरोड पर बनी आधुनिक इमारतों से इसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है। कहा जाता है कि राजा लोग वसंतपुर-दरबार के ऊपर से काठमाण्डू के घरों की ओर देखते थे। जिस घर से धुआँ नहीं निकलता था, उसे देखकर समझ जाते थे कि घर में भोजन नहीं बना है और घर का निवासी भूखा है। ऐसी अवस्था में उसके भोजन का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था।

(गद्दी-बैठक)

वर्तमान महाराज के सार्वजनिक दरबार का नाम गद्दी-बैठक है। महाराज विदेशी दूत आदि से वहीं मिलते हैं। दरबार-प्रांगण एवं वसंत-दरबार इन दोनों के बीच में दक्षिण-पश्चिम के कोण पर गद्दी-बैठक है। गद्दी-बैठक में प्रवेश करने के निमित्त पहले से राजाज्ञा लेनी आवश्यक है।

अठारह सीढ़ियाँ चढ़ने के पश्चात् मनुष्य गद्दी-हाल में प्रवेश करता है। हाल की छत बहुत ऊँची है। छत से लटकती हुई सुन्दर चार झाड़ें पूर्व की ओर तथा चार झाड़ें पश्चिम की ओर हैं। बीच में एक वृक्षझाड़ रखी है। अगली चार झाड़ों में मोमबत्ती जलती हैं तथा पिछली चार में बिजलियाँ जलाई जाती हैं। वृक्षझाड़ में भी मोमबत्ती जलाई जाती है। मोम-बत्तियाँ सब कवलों के भीतर लगी थीं। पूर्व की ओर राजा का

सिंहासन रखा है। सिंहासन के दोनों पार्श्वों में दो हेमरंजित कुर्सियाँ, कुर्सियों की बगल में दो कोच रखे हैं। सिंहासन के ऊपर खिड़कियों में रानियों के बैठने के लिए स्थान बना है। पश्चिम ओर लकड़ी का काम किया हुआ अत्यन्त सुन्दर द्वार बना है। हाल में द्वार रखने का कारण समझ में नहीं आता; परन्तु वह उत्कृष्ट कारीगरी का एक नमूना अवश्य है। लकड़ी के काम में दुर्गा, दानव, चन्द्रमा और रथारूढ़ सूर्य को ग्रसने के लिए राहु के दौड़ने आदि का चित्रण बहुत ही सुन्दर किया गया है।

राज्य-सिंहासन लगभग सात फीट लम्बा और चार फीट चौड़ा होगा। सिंहासन पर छत्र, सूर्य, सर्प एवं चामरधारिणी स्त्रियाँ आदि बनी हैं। दक्षिण की ओर दीवाल से सटाकर नौ कोचें तथा उत्तर की ओर छः कोचें रखी हैं, जो सम्भवतः विशिष्ट पुरुषों के बैठने के लिए रखीं गई हैं। उत्तर ओर की दीवाल पर धुर पूर्व में विक्टोरिया का तथा धुर पश्चिम में प्रिंस एलबर्ट का तैलचित्र पूरे कद का लगा है और इनके बीच में महाराजाओं, अब तक के हुए प्रधानमन्त्रियों एवं विशिष्ट राणा लोगों के तैलचित्र पूरे साईज के एक रूप में लगे हैं। सिंहासन के उत्तर ओर वर्तमान महाराज का तथा दक्षिण ओर राणा जंगबहादुर का तैलचित्र पूरे कद का लगा है। चित्र सभी सुंदर, आकर्षक तथा कलापूर्ण हैं। लकड़ी के द्वार के पश्चिम ओर की दीवाल में शायद शिवजी की मूर्ति लगी है।

(दरबार-प्रांगण)

हनुमानढोका के सम्मुख; अर्थात् दरबार के सम्मुख का

स्थान दरबार-प्रांगण कहा जाता है। यहाँ नेपाल-इतिहास से सम्बन्धित न जाने कितनी ही घटनाएँ घट चुकी हैं। प्रांगण आजकल उजड़ा-सा जीवनहीन प्रतीत होता है। प्रांगण में महादेव का मन्दिर ऊँची कुर्सी पर बना है और उसके चारों कोनों पर चार छोटे-छोटे अन्य मन्दिर बने हैं। मन्दिर की कुर्सी के पूर्व भाग में तथा उसके ठीक सम्मुख दीवाल में; अर्थात् दरबार की बाहरी पश्चिमी दीवाल पर राजा प्रतापमल्ल का फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, बँगला, नागरी, नेवारी आदि लिपियों में खुदे हुए शिला-लेख हैं। शिवमन्दिर के उत्तर ओर कृष्ण, भगवती, महादेव आदि के मन्दिर हैं। मन्दिरों के पश्चिम ओर लालथाना है।

(तुलेजादेवी)

दरबार के उत्तर ओर तुलेजादेवी का राज-मन्दिर है। मन्दिर के भीतर राजवंश के अतिरिक्त अन्य किसी का जाना वर्जित है। तुलेजादेवी नेपाल के राजवंश की रक्षक हैं। पृथ्वीनारायण शाह ने जब काठमाण्डू पर विजय प्राप्त की तो मन्दिर में नर-बलि चढ़ाई गई। अनन्तर रात्रि में राजा को स्वप्न हुआ कि मन्दिर में आगे कभी नर-बलि न दी जाय। उस समय से देवी को अब नर-बलि नहीं दी जाती। मन्दिर पंचमंजिला है। कहा जाता है कि देवी का मन्दिर लंका के एक दानव ने बनाया था।

(कोट)

दरबार के दूसरी ओर उत्तर-पश्चिमी कोण पर कोट बना

हुआ है। यहाँ सन् १८४६ ई० में गगनसिंह तथा अन्य प्रतिष्ठित ५५ सरदारों एवं ५०० अन्य लोगों की हत्या की गई थी और राणा जंगबहादुर को राज्य-शक्ति हस्तगत करने का मार्ग साफ हो गया था। नेपाल का यह हत्या-काण्ड इतना अमानुषिक, पाशविक एवं लोमहर्षक हुआ था कि उसकी स्मृतिमात्र से कलेजा काँप उठता है। रानी लक्ष्मीदेवी के प्रिय पुत्रों की हत्या पूजा करते समय की गई। रानी बौखला उठी। निहत्थे सरदारों की हत्या उनके कमरों से खींच-खींचकर की गई। कोट के खुले मैदान में लोग खींच लाए गए और वहाँ बन्दूकों से उड़ा दिए गए। बन्दूक चलानेवाले खिड़कियों पर थे। सारा कोट सेना से घिरा हुआ था; ताकि कोई निकलकर भागने न पावे। प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीदेवी खड़ी-खड़ी गवाक्ष से इस हत्या-काण्ड को देख रही थीं और लोगों को उत्साहित कर रही थीं कि उसके शत्रुओं का संहार कर डालो। मृत-पुरुषों की लाशें कोट के खुले मैदान में एक के ऊपर एक गाज दी गईं। उन लाशों से कोट का चौकोर आँगन भर गया था।

विजयादशमी के पूर्व अष्टमी के दिन कोट के आँगन में दुर्गा को बलि दी जाती है। बधस्थल पर पशु लाया जाता है। इसकी तारीफ यही है कि खुखड़ी के एक ही वार से भैंसे की गरदन कट जानी चाहिए। साफ और सरलतापूर्वक अपनी शक्ति दिखानेवाले को पगड़ी दी जाती है।

(श्वेतमछीन्द्र)

काठमाण्डू में श्वेतमछीन्द्र का मन्दिर शहर के मध्य में है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर एक ऊँचे स्तम्भ पर बुद्ध की मूर्ति

भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठी है। मन्दिर के भीतर बड़ा आँगन है। आँगन के बीच में नेपाली शैली का मन्दिर बना है। मन्दिर के सम्मुख दो या तीन ऊँचे स्तम्भ हैं, जिन पर भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्धादि की मूर्तियाँ बैठी हैं। मन्दिर में तान्त्रिक मूर्तियाँ बहुत लगी हैं। पेगोड़ा के सलामी के खंभों में विष्णु तथा अन्य हिन्दू-देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हैं। मन्दिर की परिक्रमा में मन्दिर की दीवाल में घूमने योग्य एक गोल डब्बा लगा है। डब्बे के ऊपर कुछ लिखा रहता है और भीतर मन्त्र या नाम लिखकर बहुत से कागज भरे रहते हैं। यात्री किंवा दर्शनार्थी लोग परिक्रमा करते समय उसे घुमाते जाते हैं। कहा जाता है कि इस प्रकार कागज में लिखे हुए सब मन्त्रों के उच्चारण करने; अर्थात् जपने का फल उन्हें प्राप्त हो जाता है। जप करने की यह यान्त्रिक शैली नेपालवालों ने तिब्बतवालों से ली है। तिब्बत में एक छोटा गोलाकार चक्र होता है, उसपर भगवान् का नाम अधिक संख्या में, यहाँ तक कि लाखों की संख्या में, लिख दिया जाता है। उस चक्र को एक बार घुमा देने से समझ लिया जाता है कि भक्त ने इतने मन्त्रों का जप कर लिया।

(भैरव)

भैरव की मूर्तियाँ काठमाण्डू में बहुत मिलती हैं। आकाश-भैरव का प्रसिद्ध मन्दिर बाजार में है। वहाँ से कुछ हटकर अन्नपूर्णा का मन्दिर है। दरबार के समीप ही एक दीवाल में दानव की मूर्ति बनी है। दानव की मूर्ति के ऊपर केवल भैरव का एक मुख बना है। मछीन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ के प्रभाव से

योग का एक तान्त्रिक विभाग ही नेपाल की घाटी में उत्पन्न हो गया मालूम पड़ता है। भैरव उनके इष्ट-देवता प्रतीत होते हैं। कला-कौशल की दृष्टि से भी भैरव को अनेक प्रकार से प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है।

(शहर)

काठमाण्डू की जनसंख्या लगभग ७० हजार होगी। हिमालय के शिखर पर काठमाण्डू सबसे बड़ा नगर है। इसकी दिन-दिन उन्नति होती जा रही है। नेपाल-राज्य की राजधानी होने के कारण इसकी शोभा का बढ़ना अवश्यंभावी एवं अनिवार्य है। बिजलीघर, वाटरवर्क्स, चौड़ी सड़कें आदि प्रायः सभी आधुनिक उन्नति में परिगणित होनेवाले साधनों की छायामात्र वहाँ दिखाई देगी। वहाँ के लोगों में राज्य के प्रति बड़ा असन्तोष देखने में आया। लोग राज्य के आतंक से इतने दब गए हैं कि कुछ स्पष्ट कहते नहीं। आग भीतर-भीतर सुलग रही है, जो किसी भी समय भयंकर ज्वाला का रूप धारण कर सकती है।

शहर में कोई विशेषता देखने में नहीं आई। चीजें भारतवर्ष से मँहगी मिलती हैं। गन्दी गलियों के मकानों में लोग रहते हैं। सफाई का कोई प्रबन्ध नहीं है। सड़क के किनारों पर नालियों में पानी भरा रहता है। यदि नगर को भव्य बनाने की ओर समुचित ध्यान दिया जाय तो सचमुच यह हिमालय में एक अच्छा सुन्दर नगर हो सकता है। यहाँ का जल अच्छा नहीं है। पेचिश होने का भय रहता है। बाहर से जानेवालों को

जल गरम कर और छानकर पीना चाहिए। वहाँ मच्छड़ बहुत लगते हैं। बिना मसहरी के सोना कठिन है। यहाँ कोई समाज-समिति, पुस्तकालय, वाचनालय या क्लब नहीं है, जहाँ मनोविनोद तथा विचार-विनिमय किया जा सके। टूड़ीखेल में जब फुटबाल का खेल होता है तो शहर में आमोद का कोई दूसरा साधन न होने से खूब भीड़ होती है। इस आधुनिक युग में भी वहाँ सिनेमा-भवन, नाट्यगृह आदि कुछ नहीं है। इसलिए आधुनिक शिक्षित व्यक्ति का मन कुछ ही दिनों में वहाँ से ऊब जायगा। नेपाल-महाराज के पास ध्वन्यात्मक सिनेमा की मशीन है, जिससे वे अपना मनोविनोद कर लेते हैं। किन्तु जनता के लिए वही वस्तु अनावश्यक समझी गई है। नेपाल में सभ्यता, संस्कृति आदि के अध्ययन की प्रचुर सामग्री होते हुए भी कोई इस ओर उत्साह एवं रुचि नहीं दिखाता।

नगर में सिंहदरबार, त्रिपुरेश्वर-मन्दिर, जंगबहादुर का मन्दिर आदि बहुत से दर्शनीय तथा पर्य्यवेक्षणीय स्थान हैं, जिनका वर्णन स्थानाभाव के कारण यहाँ करना कठिन है। यहाँ की वायु अवश्य अच्छी है। यदि पहुँचने का मार्ग सरल होता तो गर्मियों के लिए यह स्थान मंसूरी या शिमला से कम महत्वपूर्ण न होता, क्योंकि साधारणतः ठंढ सदा बनी रहती है और मामूली कपड़ों से काम चलाया जा सकता है। शरीर में वायु का प्रकोप यहाँ बहुत होता है, इसलिए लोग पेट को पेटी अथवा धोती या कमरबन्द से बाँधे रहते हैं।

इस वर्ष म्युनिस्पेलिटी वहाँ कायम की गई है; किन्तु अभी तक उसका कानून ही नहीं बन पाया है। आशा है कि काठमांडू

आधुनिक प्रगति के साथ वर्तमान श्रेष्ठ नगरों की अच्छाइयों को लेकर उन्नति की ओर अग्रसर होगा।

वीर-पुस्तकालय

श्रीचन्द्रकालेज के भवन में ही 'वीर-पुस्तकालय' है। ग्रंथ-संग्रह, शिक्षा, कला-संग्रह आदि ज्ञानोन्नति के कार्यों से जनरल राणा मृगेन्द्र का विशेष अनुराग है। पुस्तकालय में आप स्वयं उपस्थित थे।

पुस्तकालय में अंग्रेजी, हिन्दी आदि की आधुनिक पुस्तकों के अतिरिक्त १८६११ पुस्तकें प्राचीन हैं। पुरातत्व की दृष्टि से नेपाल का यह पुस्तकालय अपना विशेष महत्व रखता है। नीचे दी गई तालिका से ज्ञात होगा कि इस पुस्तकालय के संग्रह का कितना महत्व है। प्राचीन पुस्तकों की तालिका इस प्रकार है—

विषय	ताड़पत्र पर	कागज पर	तिब्बती और चीनी-भाषा
१. बौद्धधर्म	४००	३०००	×
२. श्रुतिग्रंथ एवं धार्मिक	५०	९५०	१०२
३. साहित्य, संगीत, राजनीति, धनुर्विद्या, कोष	१००	१८९०	३३
४. ज्योतिष, फलित ज्योतिष एवं शिल्प	२५	७००	×
५. स्तोत्र	२००	२६००	२७

६. व्याकरण, न्याय, गणित, योग, दर्शन, मानव-विज्ञान, धर्मज्ञान	२५	१२००	१०८
७. आयुर्वेद (औषधि)	४०	५००	×
८. काव्य-संग्रह	४०	१४८०	×
९. तन्त्र	८००	३७६०	२८१
१०. उपनिषद् एवं वैदिक साहित्य	१०	३००	×
	१६८०	१६३८०	५५१

चरक

बारह सौ वर्ष का पुराना गुप्तकालीन लिपि में लिखा हुआ वैद्यक का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'चरक' है। लगभग तीन इंच चौड़े तथा डेढ़ फीट लम्बे ताड़पत्रों पर यह ग्रंथ लिखा हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि १२०० वर्ष का पुराना होने पर भी इसके ताड़पत्र किंचिन्मात्र बिगड़े नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पत्र किसी प्रकार के मसाले से धोकर लिखे गए होंगे, जिससे उनमें लचक आ गई है। क्योंकि ताड़पत्र में साधारणतः कड़ाई हुआ करती है, जिससे वह थोड़ी असावधानी में ही टूट और फट जाया करता है। यह बात इसमें बिल्कुल नहीं है। अक्षर भी कहीं नहीं फूटे हैं, कागज पर लिखा-सा प्रतीत होता है। लिपि स्पष्ट, सुन्दर और एकरूप है।

स्कन्दपुराण

दूसरा दर्शनीय ग्रंथ ८०० वर्ष का प्राचीन 'स्कन्द-पुराण'

है। इस ग्रंथ के विषय में एक पुस्तिका ही अलग लिखी जा सकती है। रेजना-लिपि में पूरा स्कन्दपुराण लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ नेवारी-कला का एक आदर्श नमूना है। हस्तलिखित होता हुआ भी यह ग्रन्थ दूर से देखने पर मालूम होता है जैसे आज ही छपकर आया है।

साँची पत्रा के रूप में यह ग्रन्थ है। पन्ने ६ इंच चौड़े और डेढ़ फीट लम्बे हैं। इसके पत्र नीले हैं। पत्र की मोटाई पोस्ट-कार्ड से कुछ अधिक होगी। पत्र कागज के बने हैं, जिनकी नीली भूमि पर सुवर्ण के अक्षरों से ग्रन्थ लिखा गया है। प्रत्येक पत्र के मध्य में वर्णित किसी-न-किसी का रंग-विरंगा चित्र चित्रित है। चित्र के दोनों ओर ग्रन्थ लिखा गया है। मैंने बहुत से चित्र देखे हैं; किन्तु इन चित्रों की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। इन्हें देखकर, उस समय की चित्रकला की उन्नति को सोचकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। इन चित्रों की शैली अजन्ता की चित्रशैली के आधार पर है, यद्यपि इनमें तिब्बती एवं नेपाली छाया एवं मुखाकृति भी स्पष्ट दृष्टिगत होती है, जिसका होना स्वाभाविक है। रंग अभी तक ताजा मालूम होता। कलम इतनी बारीक है कि सहसा काशी के उस्ताद श्री रामप्रसाद का स्मरण हो आता है। इन चित्रों के आगे जयपुर, मुगल, पहाड़ी आदि शैलियाँ तथा उनके कलमों की बारीकियाँ हवा हो जाती हैं।

इस पुराणग्रंथ की आधारिका रूप दोनों ओर की काठ की दोनों पटरियों पर भी चित्र बने हैं। लकड़ी पर रंग देकर चित्र चित्रित किया गया है। चित्र में कितने रंगों को भरा गया है,

इसे बताना कठिन है। इस चित्र में शिवलिंग की पूजा, भक्त-मुद्रा में सेवक, सेविका, चतुर्भुज शिव का पार्वती को वाम हस्त से आलिंगन किए सिंहासन पर बैठे रहना, भैरव की कराल मूर्ति आदि इतनी सुन्दरतापूर्वक भावात्मक ढंग से अंकित किए गए हैं कि चित्र की सजीवता को देखकर दर्शक के हृदय में अनायास ही नवीन उत्साह, उमंग एवं भावना उत्पन्न हो जाती है। पुराण के भीतर के पत्रों पर तो इस प्रकार के हजारों चित्र बने हैं।

कागज को नीला बनाने की उस समय की कला भी कुछ समझ में नहीं आती। पत्रे इतने लोचदार हैं कि उन्हें गोला बनाकर छोड़ दीजिए तो पुनः तुरन्त सीधे हो जाते हैं। इतने दिनों तक हाथ लगते रहने पर भी इनकी चमक पहले-जैसी बनी हुई है। पुस्तक में लेखनकाल भी दिया है, इसलिए प्राचीनता के सम्बन्ध में सन्देह करने के लिए स्थान नहीं रह जाता। कागज के शिल्पी, चित्रकार एवं कला-प्रिय लोगों को यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिए और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ उनकी ज्ञानवृद्धि में अवश्य अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

चित्र-पुस्तिका

लगभग तीन इंच चौड़ी तथा आठ इंच लम्बी एक चित्र-पुस्तिका है। पुस्तिका साँची पत्रों के रूप में है। इसका पत्र कागज का स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें संग्रहीत चित्रों में चित्रमय इतिहास के ढंग पर देवताओं के भावों, मुद्राओं एवं कहानी-सम्बन्धी दृश्यों का द्योतन किया है। प्रत्येक पत्र में तीन चित्र बहुरंगे चित्रित हैं। पत्र के पृष्ठ भाग में नागरी तथा अन्य

लिपियों में चित्रों के परिचय दिए हैं। चित्रों में अमोघपाल, मंजुश्री, अवलिकेतेश्वर, वज्रपाणि (इंद्र), वज्रसत्व, बुद्ध, स्वयम्भू आदि धार्मिक एवं पौराणिक देवताओं के चित्र देखने योग्य हैं। शैली अजन्ता के आधार की तिब्बती एवं नेपाली से संमिश्रित है, जो नेवारी-कला की आधारपीठिका है।

महाभारत

लगभग चार इंच चौड़े और तीस फीट लम्बे नेपाली कागज पर अट्ठारह सर्ग महाभारत नागरी-लिपि में हाथों से लिखा गया है, जो मनुष्य के सन्तोष, परिश्रम एवं एकनिष्ठा का जीता-जागता प्रतीक कहा जा सकता है। यह जन्मपत्री के समान दोनों ओर हाशिया छोड़कर लिखा गया है। गोलाकार लपेटकर रख देने से किसी की जन्मपत्री मालूम पड़ती है।

इसमें नागरी लिपि इतनी बारीक कलम से छोटे अक्षरों में लिखी गई है कि परिश्रम से ग्रन्थ पढ़ा जा सकता है। इसके अक्षर गीता-प्रेस के छपे ताबीजी गीता के समान एकाकार हैं। इस ग्रंथ की विशेषता इसके अक्षरों की एकरूपता तथा बारीकी में पाई जाती है। आरम्भ में गणेशजी की मूर्ति चित्रित है। हाशिया एवं चित्रों में अन्य रंगों के साथ सुवर्ण के रंग का भी प्रयोग किया गया है। इसके लेखन का समय मुगलकाल है, क्योंकि श्रीगणेशजी के चित्र की शैली मुगलशैली है। लगभग तीन सौ वर्षों का प्राचीन होने पर ग्रंथ का अत्यन्त पतला कागज कहीं से फटा या टूटा नहीं है। कागज बनाने की कला में नेपाल पहले ही विशेषता प्राप्त कर चुका था; किन्तु महाभारत का कागज

प्रमाणित करता है कि कागज बनाने की प्राचीन कला कितनी अच्छी थी। कागज का रंग तक नहीं बदला है। इतना बारीक अक्षर लिखने पर भी कहीं अक्षर फूटा नहीं है। ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहीं कोई पंक्ति या अक्षर कटा नहीं है; अर्थात् लिखनेवाला इतना सावधान था कि अट्ठारह सर्ग महाभारत लिख जाने पर भी कहीं उसमें एक भी गलती नहीं हुई। यह बात साधारण नहीं है।

पौवा

तिब्बत में पौवा-शैली पर चित्रांकन करने की प्रथा बहुत पुरानी है। पौवा तिब्बती खड़ा झूलता झण्डा है। यह दीवाल पर झूलता हुआ टाँग दिया जाता है। चित्र के सिल्क, वस्त्र या कागज में ऊपर और नीचे दोनों ओर गोली अथवा चौड़ी लकड़ी झण्डे की ध्वजा के समान लगा दी जाती है। नीचे की लकड़ी के भार से चित्र मुड़ता नहीं और सीधा झूलता रहता है। पौवा अधिकतर सिल्क एवं वस्त्र पर चित्रित किया जाता है। पौवा में किसी विशेष घटना का चित्रांकित इतिहास रहता है। तिब्बती पौवा में भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित जीवनचरित्र तथा कहानियाँ रहती हैं। नेपाल में भी मुख्यतया नेवार लोग भैरव, देवी, बुद्ध तथा शिव के चरित्रों के आधार पर पौवा बनाते थे। पौवा बनाने की प्रथा अब नेपाल में प्रायः उठ-सी गई है।

महाकाल-संग्रह

नेपाल सदा से तिब्बत, चीन, जापान अथवा पूर्वीएशिया और भारतवर्ष के लोगों के आवागमन, विचार-विनिमय, आदान-प्रदान आदि का केन्द्र रहा है। पूर्वीएशिया और भारतवर्ष से

नेपाल का वही सम्बन्ध था, जो अमेरिका का यूरोप से और एशिया का मिश्र से था। दोनों देशों के पण्डित बहुधा एकत्र होते रहते थे और पुस्तकें एक दूसरे की भाषा में अनुवाद की जाती थीं अथवा उनकी अनुलिपि ही कर ली जाती थी। कहना न होगा कि मुसलिम-शासन के अभ्युदयकाल में इस राजाज्ञा से कि कुरान के अतिरिक्त अन्य सब पुस्तकें फूँक देने अथवा बरबाद कर देने लायक हैं—भारतवर्ष के कितने ही पुस्तकालय भस्म कर दिए गए। राज-भय के कारण लोगों ने पुस्तकें फूँक दीं। परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष की कितनी ही पुस्तकें लुप्त हो गईं। तिब्बती भाषा में संस्कृत की बहुत-सी पुस्तकें प्रतिलिपि रूप में हैं और बहुतों का तिब्बती भाषा में केवल अनुवादमात्र रह गया है, क्योंकि मूल की प्रतिलिपि नहीं हो सकी थी और भारतवर्ष में भी मूल अब अप्राप्य है।

महाकाल-संग्रह तान्त्रिक ग्रन्थ है। तिब्बती में अनुलिपि थी। भारतवर्ष में मूलग्रन्थ लुप्त है। नेपाल में पुनः तिब्बती से नागरी लिपि में लिखी गई है। यह अनुलिपि इतनी शुद्ध है कि ग्रन्थ में कहीं भी भाषा अथवा व्याकरण की अशुद्धि नहीं है। यदि नेपाली लोग इस कार्य को अपने हाथ में लेकर अन्वेषण का कार्य आरम्भ करें तो हिन्दू-धर्म के कितने ही लुप्त ग्रन्थों का पता चल जायगा। पुस्तकालय में दो ग्रन्थ इस प्रकार से लिखे देखने में आए। यह ग्रन्थ मोटे नेपाली कागज पर देशी स्याही तथा मोटी कलम से नागरी-लिपि में लिखा गया है और व्याघ्रचर्म की जिल्द बनाकर उसकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया है।

———

लिगेशन

तूनीखेल अर्थात् परेड-ग्राउण्ड से लिगेशन करीब डेढ़ मील होगा। भारतीय राजदूत यहाँ रहते हैं। पहले इसे इम्बेसी कहते थे। अब लिगेशन नाम उस समय से दे दिया गया, जब से श्री ५ सरकार को हिजमेजेस्ट्री कहा जाने लगा है। इस समय लिगेशन में केवल कर्नल फोकनर एवं उनके सहायक कर्नल मेकलाइड और लगभग ४० हिन्दुस्तानी रहते हैं। लिगेशन में अस्पताल, डाकखाना, बेतार का तार, टेनिस-ग्राउण्ड, परेड का मैदान आदि सब कुछ है। परेड-ग्राउण्ड के तीन ओर बैरिकें बनी हैं, जिनमें पहले ७५ सैनिकों की एक टुकड़ी ब्रिटिश फौज की रहती थी। परन्तु अब उसके स्थान पर कुछ गुरखे सिपाही रहते हैं, क्योंकि यहीं ब्रिटिश लिगेशन का खजाना रहता है।

लिगेशन में कार्य करनेवाले सभी लोग उत्तरीय हिन्दुस्तान के हैं। इनके स्थान की बदली नहीं होती, अतएव कुछ लोग तो ३० वर्षों से यहीं पड़े हैं। लिगेशन की अपनी एक दुनिया ही अलग है। कर्मचारियों के रहने के लिए क्वार्टर बने हैं। उन्हें वेतन बहुत ही कम मिलता है। उनकी सुविधा का कोई ख्याल रखनेवाला नहीं है।

लिगेशन के प्रधान के रहने के लिए आनुनिक ढंग की बहुत ही सुन्दर भव्य इमारत बनी है। इमारत के चारों ओर लान और सुन्दर बगीचा है। इस स्थान से घाटी का थोड़ा दृश्य बहुत ही अच्छा दिखाई देता है। लिगेशन जिस स्थान पर बना है वह पहले बहुत अस्वास्थ्यकर समझा जाता था; किन्तु वही अब अन्य

स्थानों से अच्छा समझा जाता है। यहाँ के लोगों से नेपाल के लोगों का आदान-प्रदान नहीं होता। लोग अलग-अलग पड़े रहते हैं। नेपाल में सामाजिक विकास के मुख्य साधन विचार-विनिमय की बहुत कमी है। लिगेशनवाले नेपालियों द्वारा कुछ सन्देह की दृष्टि से देखे जाते रहे हैं। नेपाली स्वयं लिगेशनवालों से मिलना नहीं पसन्द करते थे, क्योंकि उन्हें राणा लोगों का डर लगा रहता है कि कहीं उनसे मिलने का दूसरा अर्थ न लगाया जाय।

यहाँ के कर्मचारियों ने एक क्लब भी खोला है। उसमें एक छोटी-सी लाइब्रेरी, वाचनालय तथा खेलने का सामान रहता है। यहाँ आने पर भारतीय वातावरण और अपनेपन का अनुभव होने लगता है।

लिगेशन के डाकखाने में ब्रिटिश-भारत का पोस्टकार्ड, लिफाफा आदि लगता है और भारतीय पोस्टआफिसों के ढंग पर काम होता है। लिगेशन में डाक छोड़ने में कुछ भी पैसा अधिक नहीं देना पड़ता; लेकिन नेपाल के पोस्टआफिसों में डाक छोड़ने या उनके द्वारा कार्य लेने में अधिक पैसा देना पड़ता है। उनमें नेपाल के पोस्टकार्ड. एवं लिफाफा का प्रयोग करना पड़ता है, जिसके लिए अधिक पैसा देना पड़ता है।

लिगेशन का तार डाक से रक्सौल भेजा जाता है, और फिर वहाँ से तार द्वारा गन्तव्य स्थान की ओर रवाना होता है। नेपाल के तारघर द्वारा तार भेजने से एक पैसा प्रति अक्षर के हिसाब से वह टेलीफोन द्वारा पहले रक्सौल भेजा जाता है, और फिर वहाँ से तार द्वारा गन्तव्य स्थान की ओर रवाना होता है। फोन

और तार दोनों का पैसा नेपाल के पोस्टआफिस में ही ले लिया जाता है।

लिगेशन के पास राणा लोगों के प्रासाद हैं, जो ईंटों की ऊँची-ऊँची चहारदीवारियों से घिरे हैं। उनके भीतर क्या है, क्या हो रहा है अथवा क्या होने को है, इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं चलता। प्रत्येक प्रासाद बड़े-बड़े बगीचे के बीच बना है। कहा जाता है कि उनमें प्रचुर धन एवं सजावट के सामान विद्यमान् हैं। प्रासादों की ऊँची-ऊँची चहारदीवारियों का यह फल अवश्य है कि सड़क बिल्कुल सूनी मालूम होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सड़क के दोनों किनारों पर मनहूस जेलखाने बने हुए हैं।

जातीय कलाशाला

नेपाल-सरकार ने अपने म्युजियम अथवा संग्रहालय का 'जुद्ध जातीय कलाशाला' नाम रखा है। कला-भवन, संग्रहालय आदि प्रचलित नामों की अपेक्षा मुझे यह नाम अधिक समीचीन जान पड़ता है। वर्तमान श्री ३ सरकार श्री पद्मशमशेरजंगबहादुर राणा के पूर्व श्री जुद्धशमशेरजंगबहादुर राणा नेपाल के श्री ३ सरकार थे।

'जातीय कलाशाला' काठमाण्डू से लगभग दो मील दूर कुछ ऊँचाई पर बनी है। कलाशाला के दो भाग हैं। एक को ललितकला-संग्रहालय कहा जा सकता है और दूसरे को शस्त्र-संग्रहालय। संग्रह की हुई वस्तुएँ एक नवीन सुन्दर भवन में

सजाई गई हैं। इसका प्रवेश-द्वार प्रसिद्ध साँची-स्तूप के प्रवेश-द्वार की नकल पर बनाया गया है। इसमें भी साँची-द्वार के चित्रों का चित्रण विस्तारपूर्वक किया गया है। लकड़ी के द्वार पर विष्णु की मूर्ति बनी है। इस कलाशाला के प्रधान श्री मृगेन्द्रशमशेर-जंगबहादुर राणा निरीक्षण के समय हम लोगों के साथ थे और स्वयं संग्रहीत वस्तुओं का परिचय करा रहे थे।

संग्रहालय में नेपाल की खोदाई में प्राप्त वस्तुएँ तथा पीतल और ताँबे की बहुत-सी मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। भिन्न-भिन्न रुचि की चित्रकारियाँ भी प्रदर्शित की गई हैं, जिनमें तिब्बती, चीनी तथा नेपाली शैली की बहुलता है। कुछ चित्र तो बहुत ही मौलिक हैं और संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रों में उनकी गणना होगी। इसी प्रकार का एक चित्र लामा का है। चित्र सिल्क पर इतने स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया गया है कि मालूम पड़ता है कि लामा अपनी गम्भीर एवं शान्त मुद्रा में कुछ कहना ही चाहता है। यहाँ भगवान् बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी कितने ही तिब्बती तथा नेपाली शैली के तैलचित्र तथा जलचित्र मिलेंगे।

संग्रहालय में सबसे अधिक संख्या में पीतल तथा ताँबे की मूर्तियाँ देखने को मिलेंगी। बुद्ध भगवान् की अनेक मुद्राओंवाली मूर्तियाँ, जिनमें अभयदान एवं भूमिस्पर्श मुद्राएँ अधिक हैं, बहुत दिखाई देंगी। भगवान् बुद्ध की पाषाणमूर्तियाँ भी हैं, जो नेपाल के भिन्न स्थानों में पाई गई हैं। इन मूर्तियों में मंगोल आर्य, मंगोल नेपाली, तिब्बती मंगोल, तिब्बती नेपाली, आर्य तिब्बती, आर्य नेपाली, मंगोल तिब्बती और नेपाली मूर्ति-कला-शैलियों की पाषाणमूर्तियाँ मिलेंगी। इन मूर्तियों के सूक्ष्म अंतरों

को सावधानी एवं सतर्क दृष्टि से देखने पर विभिन्न समयों के जल-वायु, वातावरण, सभ्यता, संस्कृतियों, मूर्तिकला एवं उसके विकास-क्रम आदि का पता आसानी से चल जाता है।

संग्रहालय में हिन्दूधर्म-संबंधी बहुत से देवताओं की, जिनमें विष्णु, शिव, भैरव, दुर्गा आदि हैं, मूर्तियाँ अधिक हैं। तांत्रिक शैली की मूर्तियों की भी भरमार है। नेपाल के कुछ राजाओं तथा अन्य राणाओं के भी चित्र हैं। ऊपर की मंजिल में वर्तमान श्री ५ सरकार का तैलचित्र सुन्दर बना है। इस कलामन्दिर में वसुन्धरा, सहस्त्र तारा, वाराह, नृत्यनाथ, नटराज, महिषासुर-मर्दनी दुर्गा की कासायमूर्ति देखने योग्य है। कलाशाला की तीसरी मंजिल पर पहुँचने के लिए सीढ़ी लगी है। सीढ़ी के द्वारा कोई भी ऊपर पहुँच सकता है। यहाँ से समस्त नेपाल की उपत्यका का बड़ा सुन्दर दृश्य दृष्टिगत होता है। यहाँ के पर्वतीय ऊपर आना नहीं पसन्द करते थे, क्योंकि पर्वतीय दृश्यों को देखते-देखते वे ऊब गए हैं। इसलिए श्री मृगेन्द्रशमशेरबहादुर राणा ने चारों ओर से शीशे से घेरकर श्री पशुपतिनाथ की मूर्ति रख दी है। इस मूर्ति के दर्शन के बहाने लोग ऊपर आते हैं और जिन्हें दृश्य देखने का शौक नहीं है, वे श्री पशुपतिनाथ की मूर्ति का दर्शन कर सन्तोष प्राप्त करते हैं।

कलाशाला के ठीक सामने शस्त्र-शाला है। वास्तव में यह देखने योग्य है। अस्त्र-शस्त्रों का इतना सुन्दर संग्रह भारतवर्ष में कहीं अन्यत्र देखने को न मिलेगा। गोरखा किंवा नेपाली जाति ने अपनी परम्परा ही सैनिक बना ली है। यदि कौटिल्य के शब्दों में इन्हें आयुधजीवी कहें तो असंगत न होगा। प्रत्येक नेपाली का

अस्त्र-शस्त्र उसका प्राण है, वह अपनी खुखड़ी का कभी त्याग नहीं करता। खुखड़ी नेपाल का राष्ट्रीय अस्त्र है। अन्य वर्तमान अस्त्र-शस्त्रों को चलाने में अथवा आधुनिक युग के प्रचलित यन्त्रों की लड़ाई में भी नेपालियों ने जो गौरव प्राप्त किया है, वह अबतक भारतवर्ष में किसी दूसरी जाति को उपलब्ध नहीं हो सका है। यह जाति अपनी वीरता की छाप संसार में लगा चुकी है। प्रत्येक देश इनकी वीरता, गम्भीरता और सच्चाई का आदर करता है। इस जाति का प्रत्येक सैनिक वीर होता है। वीर-पुरुष कभी असत्य भाषण नहीं करता। वह ओछा नहीं होता। यह बात स्वाभाविक है। इसमें कहीं कुछ अपवाद भी मिल सकता है, यह बात दूसरी है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि जिस जाति का प्रतीक आयुध है, जिसकी सखा रण-भूमि है, जिसका गौरव विजय है उस जाति की शस्त्र-शाला को देखकर यदि मैं अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली समझूँ तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

कलाशाला दो मंजिल की है। पहली मंजिल में नाना प्रकार की तोपें, प्राचीनकाल से लेकर आज तक की रखी हैं। एक तोप सन् १८१५ ई० की बनी है, जिसमें चार मुख हैं और एक व्यक्ति अकेला उन्हें एक साथ छोड़ सकता है। आज से सवा सौ वर्ष पहले नेपाल इस दिशा में बहुत आगे बढ़ चुका था। किसी देश ने आज तक चार मुखोंवाली तोप की रचना नहीं की है। इस तोप का प्रयोग अंग्रेजों के साथ हुए नेपाल-युद्ध में किया गया था; परन्तु हिन्दुओं की कलंकित विश्वासघात की परम्परा-स्वरूप एक देश-द्रोही के शत्रु से मिल जाने के कारण नेपालवालों को

सन्धि के लिए बाध्य होना पड़ा था। यहाँ पर उस समय के तोप के गोले आदि रखे हैं। दूसरी ओर आधुनिक तोपें, मशीनगनें आदि रखी हैं। इसी संग्रहालय में पत्थर की कुछ मूर्तियाँ, जो खुदाई में प्राप्त होने से अथवा अन्य तरह से संग्रह के योग्य समझी गईं, रखी हैं।

इस संग्रहालय का विशेष दर्शनीय भाग दूसरी मंजिल है। शस्त्रों की सजावट यहाँ देखते ही बनती है। छतों तक में कलापूर्ण ढंग से संगीनें लगाई गई हैं। यहाँ का पूरा दृश्य ही अस्त्र-शस्त्रमय होने से वीरत्व की भावना भरनेवाला है। टीपू सुलतान की वह तलवार भी वहाँ देखने को मिली, जो खून से लिपटी हुई मरने पर भी उसकी मुट्ठी में मिली थी। यह तलवार कमर में बाँधी जा सकती है। इसके दोनों सिरे मिल जाते हैं। यहीं पर फ्रांस के अन्तिम सम्राट् नेपोलियन तृतीय की भी तलवार दिखाई पड़ी, जिसपर उसका नाम लिखा है।

इसमें नेपाल के प्रायः सब प्रसिद्ध वीरों के शस्त्रास्त्रों का संग्रह किया गया है। एक तलवार लगभग नौ फीट की थी, जब कि उसका चलानेवाला कठिनता से साढ़े पाँच फीट का रहा होगा। स्वर्गीय राणा जंगबहादुर का झिल्लम तथा उनके व्यवहार के अस्त्र-शस्त्र भी यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं। समय-समय की बन्दूकें किरचों के साथ चक्राकार सजाकर बीच में किसी-न-किसी देवता की पत्थर की मूर्ति दीवालों में स्थापित कर दी गई है। यहाँ की यह सजावट देखने योग्य है। पिस्तौल और प्राचीन काल से आज तक के प्रसिद्ध हथियार यहाँ यत्नपूर्वक रखे गए हैं। नेपाल का राष्ट्रीय शस्त्र आधुनिक खुखड़ी का विकास कैसे हुआ,

यह भी उनके संग्रह द्वारा ही दिखाया गया है। खंग, खाड़ा, बर्छा, बल्लम आदि की तो जैसे वहाँ कोई गिनती ही नहीं है, क्योंकि बड़े अस्त्र-शस्त्रों के बीच वे दबे-से दिखाई देते हैं।

नेपालियों ने जिन युद्धों में विजय प्राप्तकर शत्रुओं की पताकाएँ छीनी थीं, वे पताकाएँ तथा महाराज ५ सरकार, ३ सरकार, सेनापति तथा लाट की पताकाएँ और नेपाल-राज्य की जातीय पताकाएँ वहाँ दर्शनीय रूप में रखी हैं। यदि नेपाली सैनिकों की वीर-प्रियता एवं उनके आयुधीय जीवन का जीता-जागता ज्वलन्त रूप देखना हो तो इस संग्रहालय द्वारा देखा जा सकता है।

कलाशाला का स्थान भी बड़ा ही रमणीय है। उसके सम्मुख सैकड़ों बीघे का दूर्वापूर्ण मैदान है। पीछे की ओर हरित पर्वत-माला है और नीचे की ओर बीसों मील फैली हुई काठमाण्डू की घाटी है, जिसमें कीर्तिनगर, भक्तनगर, ललितपाटन, चण्डू-नारायण, शम्भूनाथ, बोधनाथ आदि नगर दिखाई पड़ते हैं। काठमाण्डू का जितना सुन्दर और पूर्ण दृश्य यहाँ से दिखाई देता है, उतना अन्य किसी स्थल से नहीं। संग्रहालय के समीप-वर्ती मैदान में हम लोग दो दिन गए थे। वहाँ चुपचाप बैठकर सूर्यास्त के समय की शोभा एवं तदनन्तर क्रमशः घनीभूत होते अन्धकार के दृश्य और शनैः-शनैः बहनेवाली ठण्ढी हवा के सेवन से हम लोग इतने आह्लादित हुए कि उसका वर्णन करना कठिन है। यह मैदान इतना विस्तृत है कि हवाईजहाज का अड्डा बनाने योग्य है, जिसकी इस समय नेपाल को बड़ी आव-श्यकता है। यहाँ फौज की एक टुकड़ी रहती है और परेड होता

है। मैदान से होकर जो सड़क कलाशाला में जाती है, उसके दोनों ओर खत्तियों में चौकोर तालाब बनाकर कमल लगाए जा रहे हैं। हम लोग वहाँ से जब लौटे तो यही सोचते हुए लौटे कि वस्तुतः गोरखा नेपाली स्पार्टावालों के समान जन्म से ही सैनिक होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सैनिक परम्परा उनके खून में मिलकर उनके जीवन की अभिन्न अंग बन गई है।

टूडोखेल

काठमाण्डू शहर का हृदय टूडीखेल है। संभवतः किसी पर्वत पर दूर्वाच्छादित इतना विशाल और समतल मैदान न दिखाई देगा। संसार के पर्वतीय मैदानों में यह सबसे महत्व-पूर्ण एवं प्राकृतिक दृश्यों से युक्त है। राणा लोग इस मैदान को सुरक्षित रखने तथा दर्शनीय बनाने में सदा से सचेष्ट रहते आए हैं। यह मैदान पश्चिम ओर त्रिपुरासुन्दरी के मन्दिर से आरम्भ होकर धुर दक्षिण में महाराज पृथ्वीविक्रमशाह की मूर्ति तक चला गया है। यही सड़क आगे जाकर बृटिश-लिगेशन से मिल गई है। सड़क के दोनों ओर सुन्दर वृक्षावली और पश्चिम ओर सुन्दर बँगले, भीमसेन का धरहरा, सैनिकों की बैरिकें, सिविल, जनाना एवं सैनिक अस्पताल, गर्ल्सस्कूल आदि की इमारतें बनी हैं। दक्षिण पार्श्व में प्रधान न्यायालय, राजकीय श्री ३ चन्द्र-कालेज, पीछे की ओर श्री त्रिचन्द्र-ज्योतिशाला; अर्थात् बिजली एवं पावर हाउस, सेना की बैरिकें तथा तत्सम्बन्धित अन्य इमारतें बनी हैं। यहाँ भी कलकत्ता के मैदान की भाँति मैदान के बीच में सड़कें

निकाली गईं हैं और चौराहों पर महाराज तथा ३ सरकार की मूर्तियाँ स्थापित हैं। त्रिपुरासुन्दरी के चौराहे पर महाराज त्रिभुवनवीरविक्रम की पूरे साइज की खड़ी उज्वल मूर्ति चार खम्भों से बने मण्डप के नीचे स्थापित है। मूर्ति क्रमशः ऊँची होती हुई दक्षिण दिशागामी सड़क की ओर देखती खड़ी है। टूडीखेल का मैदान दो भागों में विभक्त है—(१) उत्तर का निचला भाग और (२) दक्षिण का ऊँचा विशाल मैदान। निचले भाग में कलकत्ते के मैदान के समान चौकोर सरोवर बनाकर कमल लगाए गए हैं। मृणाल तथा कमलपत्र जितने सुंदर मैंने यहाँ देखे उतने सुंदर अब तक कहीं नहीं देखने में आए थे। इस समय कमल खिले नहीं थे, अन्यथा सौन्दर्य और भी सजीव दिखाई देता। मैदान में परेड, चाँदमारी तथा फुटबाल का खेल हुआ करता है। इसमें दक्षिण की ओर करीब २५ फीट की उँचाई पर टूडीखेल का विस्तृत मैदान आरम्भ होता है। इस मैदान के पूर्व और उत्तर पार्श्वों में सैनिकों की बैरकें हैं।

टूडीखेल मैदान के उत्तर ओर मिलिटरी-एकाडेमी, मिलिटरी आफिस, परराष्ट्र-विभाग एवं कुछ अन्य राजकीय इमारतें हैं। मैदान के पश्चिमवाली सड़क के प्रथम चौराहे पर श्री राणा जंगबहादुर की सैनिक वेश में अश्वारूढ़ मूर्ति है। मूर्ति आक्रमणोद्यत वीर-मुद्रा में है। ऐसा प्रतीत होता है कि अश्वारूढ़ राजा अपने कृपाण द्वारा दक्षिण पार्श्व में स्थित आगत शत्रुओं का संहार करते हुए अपनी सेना के साथ आगे बढ़ रहे हैं। दूसरे चौराहे पर धीरशमशेर की अश्वारूढ़ मूर्ति है। इस चौराहे से काठमाण्डू की सबसे प्रसिद्ध सड़क जुद्धरोड, टूडीखेल से वसन्तपुर-

दरबार तक, जाती है। इस सड़क पर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई कलकत्ते की चौरंगीस्ट्रीट पर खड़ा है। सड़क के दोनों ओर ऊँचे खम्भों पर बिजली की नीली रोशनी होती है। जुद्ध-रोड सन् १९३४ के भूकम्प के पश्चात् बनी है। इस सड़क के पश्चिमी चौराहे पर युद्धशमशेर की खड़ी मूर्ति है। उत्तर ओर भूकम्प की स्मृति में बना स्क्वायर है। स्क्वायर के मध्य में स्थित स्मृति-स्तम्भ पर भूमण्डल का मानचित्र गोल पत्थर का बना है और उसपर शंकर का मन्दिर है।

श्री धीरशमशेर के चौराहे से आगे बढ़ने पर चौथे चौराहे पर श्री चन्द्रशमशेर की अश्वारूढ़ मूर्ति मिलती है। मूर्ति वीरमुद्रा में है। घोड़ा भागा जा रहा है। वेग में वह अपने पिछले दोनों पैरों पर खड़ा हो गया है और उसकी पूँछ तक भूमि से लग गई है। किन्तु मूर्ति के हाथ में तलवार नहीं है, जिससे प्रगट होता है कि अश्वारोही अपनी सेना का संचालन करता हुआ उसे आगे बढ़ने को ललकार रहा है अथवा अश्वारोहण की अपनी विशेष पटुता का प्रदर्शन कर रहा है। कहा जाता है कि श्री राणा जंगबहादुर के पश्चात् श्री चन्द्रशमशेर सबसे अधिक प्रतिभाशाली श्री ३ सरकार हुए हैं। अनन्तर अन्तिम चौराहे पर गम्भीर मुद्रा में अश्वारूढ़ श्री महाराज पृथ्वीविक्रम की मूर्ति है।

टूडीखेल के मैदान के मध्य में एक हरा ऊँचा खड़ी एवं कावस का एक ही पेड़ी में मिला वृक्ष है। वृक्ष की जगत भूमि से लगभग बारह फीट ऊँची गोलाकार है। उसकी चारों दिशाओं में चार विक्टोरियाक्रास-प्राप्त सैनिक गुरखों की मूर्तियाँ सावधानी से भूमि पर बन्दूक रखे खड़ी हैं। ऊँचाई के क्रम से

तीन फर्शें वृक्ष के नीचे हैं, पहला ६ फीट, दूसरा १ फीट, तीसरा २॥ फीट और चौथा ३ फीट। यहीं से राणा जंगबहादुर ने पहली घोषणा की थी। उस समय से अब तक जितनी राजकीय घोषणाएँ होती हैं, सब यहीं से की जाती हैं। महाराज तथा राणा लोग यहीं से सेना की सलामी लेते हैं।

रानीपोखरी

वृक्ष के दोनों ओर काफी फासले पर उत्तर ओर तेज नीली और दक्षिण ओर किंचित् लाल रंग की बिजली की रोशनी खम्भों पर लगी हैं। इन्हीं खम्भों पर परेड के समय झण्डा लगा दिया जाता है।

सड़क के पूर्व ओर सटे मैदान में महाकालेश्वर का मन्दिर है। मन्दिर में भैरव की विकराल काली मूर्ति स्थापित है। इससे कुछ आगे बढ़ने पर अमृतसर-गुरुद्वारा की शैली पर बना शिवजी का मन्दिर है। यह मंदिर और सरोवर आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व श्री प्रतापमल्ल की रानी रायमती द्वारा बनवाया गया है। मन्दिर सड़क से सटा पूर्व ओर है। सड़क से मन्दिर तक पहुँचने के लिए ईंटों का पुल बना है। सरोवर सदा हरा-भरा रहता है। स्थान सुन्दर है; परन्तु इस ओर राज्य का ध्यान कम मालूम होता है। यदि यह स्थान आधुनिक शैली पर सुन्दरतापूर्वक सजाया जाय और फलस्वरूप सरोवर में स्थान-स्थान पर फुहारे लगाकर बिजली की रोशनी का कलात्मक प्रबन्ध किया जाय तो काठमाण्डू में यह एक

विशेष दर्शनीय स्थान बन जायगा। इस ओर राज्य का ध्यान सम्भव है कि इसलिए न जाता हो कि एक राजा दूसरे की कीर्ति को स्थायी बनाने की अपेक्षा उसे अपनी ही कीर्ति को स्थायी बनाने की रात-दिन की चिंता से अवकाश न मिलता हो। कहना न होगा कि यह भावना अब बहुत पुरानी हो गई है। वर्तमान उदारता के युग में उदार-दृष्टि से विचार करना चाहिए।

भीमसेनथापा-धरहरा

सेनापति भीमसेनथापा नेपाल के सन् १८०६ से १८३७ ई० तक प्रधानमंत्री थे। अंग्रेजों के वे भारी प्राण-शत्रु थे। उन्होंने अपने समय में नेपाल-राज्य को सुसंगठित एवं शक्तिशाली बनाने का सराहनीय प्रयत्न किया था। पश्चिम में काँगड़ा की घाटी और पूर्व में शिकम तक सब पर्वतीय क्षेत्रों को उन्होंने संघटित किया था। उस समय नेपाल अपने अनुभवी एवं सुयोग्य प्रधानमंत्री की संरक्षता में राजनीतिक उन्नति की चरम सीमा पर था। सन् १८०४ से १८१२ ई० तक गुरखा-फौज ने तराई में प्रवेशकर ब्रिटिश अमलदारी के सैकड़ों गाँवों को जीतकर नेपाल-राज्य में मिला लिया। फल यह हुआ कि नेपाली और ब्रिटिश दोनों का एक सम्मिलित कमीशन बैठा। कमीशन ने निश्चय किया कि ब्रिटिश की जो जमीन भीमसेन ने जीती है, उसे लौटा दी जाय। किन्तु भीमसेन ने जीता हुआ देश लौटाना स्वीकार नहीं किया। अंग्रेजों ने पहली नवम्बर सन् १८१४ ई० को युद्ध-घोषणा कर दी। लार्ड हेस्टिंगस् ने स्वयं युद्ध की स्ट्रेटेजी तैयार की थी। अंग्रेजी चार सेनाओं में से, तीन सेनाओं पर गुरखा

लोगों ने पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। केवल कुमायूँ में अंग्रेजों को कुछ सफलता मिली; किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। अन्त में सन् १८१५ ई० में जनरल डाक्टर लोनी चुरिया-पास के पास पहुँचा तो अमरसिंह थापा ने अपने ही दल के कुछ कुल-कलंकों के कारण विराम-संधि के लिए निवेदन किया। परिणाम यह हुआ कि कमायूँ, गढ़वाल और शिमला, जो जीतकर नेपाल-राज्य में तीस वर्षों से संघटित किए गए थे, अंग्रेजों को मिल गए। उस समय अमरसिंह थापा के सिपाही अंग्रेजी झण्डे के नीचे आए और उन्हें भरती करके पहली गुरखा-फौज बनाई गई। इस समय नेपाल की राजनीतिक स्थिति बहुत डाँवाडोल थी। दरबार में नानाप्रकार के कुचक्र चलते रहे, जिसके कारण राणा जंगबहादुर का उदय हुआ।

भीमसेन ने तूनीखेल का धरहरा, नेपाल के गौरव में उसका विजय-स्तम्भ स्वरूप, १५० फीट ऊँचा बनवाया था। अंग्रेज-लेखक इसे भीमसेन की मूर्खता और गरीब नेपालियों पर अपनी धाक जमाने के लिए एक जरिया बताते हैं; किन्तु वास्तव में यह धरहरा सहज वीर-जाति नेपालियों के शूरत्व का प्रतीक है। सन् १९३४ ई० के भूकम्प में धरहरा गिर गया था। अब नेपाल-सरकार ने अपने जातीय गौरव की रक्षा के निमित्त उसे २०० फीट ऊँचा बनवा दिया है। यहाँ पर यह बता देना अनुचित न होगा कि भीमसिंह थापा नेपाल का अन्तिम वीर पुरुष था; जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे। उसने नेपाल-राज्य का जितना विस्तार कर दिया था, उतना उसके बाद न हो सका और न होने की संभावना ही है।

सुनधारा

धरहरा के दक्षिण-पश्चिम के कोण पर सुनधारा है। यह प्राकृतिक जलस्रोत विकसित कमल के आकार का है। यह ऊपर से चौखूटा सरोवर-सा प्रतीत होता है; किन्तु लगभग बीस फीट गहरा है। इसमें इक्कीस सीढ़ियाँ लगी हैं। पाँच-पाँच सीढ़ियों के पश्चात् एक-एक तल है। अन्तिम तल से सरोवर का तल सात सीढ़ी नीचे है। इसमें भरा जल नहीं रहता। अन्तिम भूमि-तल पर पाँच धाराएँ सरोवर में गिरती हैं। उत्तर ओर से स्रोत तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। समस्त सरोवर पत्थर का बना हुआ है। इसमें भूमि से करीब तीन फीट ऊँचे से धारा गिरती है। दक्षिण की ओर तीन धाराएँ गिरती हैं। मध्य की धारा अधिक मोटी गिरती है। जल निर्मल तथा ठण्ढा रहता है। पीतल के ठोस बने हेमरंजित मकरमुख से जल गिरता है। मकरमुख के निम्नभाग में शंख लिए हुए गरुड़ की मूर्ति है। मध्य-प्रपात के पश्चिम-उत्तर के कोण पर एक छोटा जल-प्रपात भी मकरमुख से गिरता है। मुख के ऊपर दुर्गा की चतुर्भुज मूर्ति स्थापित है। मूर्ति के हाथो में चक्र, शंख, धनुष और वाण हैं तथा चरण के समीप दो सिंह बैठे हैं। वक्षस्थल में मुण्डों की माला है। दर्शकों को इस मूर्ति में धनुष-वाण के होने से राम की चतुर्भुजी मूर्ति का भ्रम हो सकता है।

मध्य-प्रपात के पूर्व-उत्तर की ओर भैरव की मूर्ति है। मूर्ति के चरणों के समीप दो श्वान बने हैं और मकरमुख से क्षीण जल-धारा नीचे गिरती है। पूर्व की ओर गणेशजी की मूर्ति

स्थापित है तथा उसके नीचे भी इसी प्रकार मकरमुख से मंद जल-धारा गिरती है, मानों गणेशजी ने प्रपात का जल अपने लम्बोदर में रख लिया हो। पश्चिम ओर सूर्य की मूर्ति घोड़ों के रथ पर है। मूर्ति के नीचे यहाँ मकरमुख से बूँद-बूँद जल टपकता था मानों इस प्रपात का जल सूर्य ने सुखा दिया हो। ये सभी जलप्रपात कमल की एक-एक पँखड़ियों पर बने हैं। उत्तर की ओर सीढ़ी है, इसलिए कोई जल-प्रपात इस ओर नहीं है। सरोवर के ठीक पीछे; अर्थात् दक्षिण ओर गोरखा-सैनिकों की बैरकें हैं।

होली

काठमाण्डू में महाल-महाल या चौराहों पर होली नहीं लगाई जाती। हनुमानढोका के समीप समस्त नगर की होली लगती है। होलिका-दहन के आठ दिन पहले होलिका लगाई जाती है। होलिका-दहन के निश्चित समय पर समस्त नागरिक वहाँ उपस्थित रहते हैं। दहन के पहले गुलाल खूब लगा दिया जाता है। सार्वजनिक रूप से रंग नहीं खेला जाता है। लोग अपने घरों में रंग खेल सकते हैं।

विजयदशमी

विजयदशमी का उत्सव यहाँ बड़े उत्साह से मनाया जाता है। नेपाली लोगों का यह सर्वश्रेष्ठ पर्व माना जाता है। यहाँ के सभी हिन्दू राजा बड़े धूमधाम से दशहरा का उत्सव करते हैं। नेपाल में सप्तमी के दिन सायंकाल के कुछ पूर्व राज्य की सेना टूडीखेल के मैदान में झण्डों और बैण्ड के साथ आती है।

श्री ३ सरकार, सेनापति एवं अन्य उच्च कर्मचारीगण, राणा लोग और श्रेष्ठ नागरिक—सभी टूडीखेल के खड़ी वृक्ष के नीचे आते हैं। सब लोग अपने उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित रहते हैं। नेपाल में ऐसी आशा की जाती है कि आज के दिन सभी नर-नारी, सैनिक आदि मैदान में अवश्य उपस्थित रहेंगे।

नागरिक लोग मैदान के किनारे खड़े हो जाते हैं। सेना का सम्मिलित बैण्ड निश्चित स्थान पर रहता है। अपने-अपने झण्डों के साथ रेजिमेंटें खड़ी रहती हैं। महाराज श्री ५ सरकार की सवारी आते ही सेनापति की आज्ञा पाकर बैण्ड राष्ट्रीय गान गा उठते हैं। चारों ओर उमंग एवं उत्साह की लहर फैल जाती है। महाराज उस वृक्ष के नीचे जाते हैं। सेना राजा का अभिवादन करती है। इसके पश्चात् बीस मिनटों तक बन्दूकें दगती हैं, मशीनगनें चिल्लाती हैं और तोपें गरजती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों भयंकर युद्ध हो रहा है। आकाश धूम्राच्छन्न हो उठता है। मैदान में उस समय की गर्जन से कान के परदे फटने लगते हैं; किन्तु वीर नेपालियों का उत्साह, उनका जोश इसे कुछ नहीं समझता। उनके हृदय इस दृश्य में युद्ध के एक नजारे का अनुभव कर नाच उठते हैं। आवाज यकायक रुक जाती है, महाराज चले जाते हैं और इस प्रकार सप्तमी का कार्य समाप्त हो जाता है।

सैनिक-परेड

हम लोगों का आतिथ्य भवन टूडीखेल के परेड-मैदान से ५० कदम के अन्तर पर था। प्रातःकाल होते ही बिगुल की ध्वनि

से दिग्मण्डल गूँज उठता था, यों तो बिगुल सीखनेवाले प्रायः दिन भर पों-पों किया करते थे। संभव है कि यदि दूसरा देश होता तो जनता हल्ला मचाने लगती कि इससे हम लोगों के कार्य में बाधा पहुँचती है। किन्तु नेपाल की परम्परा सैनिक है। सेना नेपाल का सबसे बड़ा उद्योग-धन्धा है। लगभग चालीस हजार सैनिक नेपाल-वाहिनी में हैं। राणावंश का प्रत्येक व्यक्ति कोई-न-कोई अधिकारी होता है। मेजर-जेनरल, जेनरल की तो भरमार है। कम-से-कम २६ व्यक्ति मेजर-जनरल और जनरल के पद पर होंगे। जर्मनी समस्त युद्ध में इतने जेनरल न बना सका। उसने इतने बड़े युद्ध में जितने जेनरल नहीं बनाए, उससे दूने जेनरल नेपाल के राणावंश में जन्म लेकर बन गए। कर्नलों की तो कोई बात ही नहीं है। इसका रहस्य चाहे जो कुछ भा हो; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सैनिक शिक्षा ग्रहण करने की वहाँ परम्परा हो गई है। प्रत्येक नेपाली सेना में तथा सैनिक कला में उत्साहपूर्वक भाग लेता है।

नेपाल में बेकारी की समस्या आज तक गई ही नहीं। अंग्रेज लोग यहाँ से रँगरूट भर्ती करते हैं। नेपाल-सरकार भी अपनी फौज अलग बनाती है। फल यह होता है कि १५ वर्ष का युवक होते ही वह फौज में भरती हो जाता है। उसे नौकरी खोजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परेड के मैदान में परेड करना नेपाली अधिक पसन्द करते हैं। वे उसे अपने गौरव की बात समझते हैं। नेपाल में समय की पावन्दी और अनुशासन का निर्वाह चारों ओर जितना अधिक मिलता है उतना जर्मनी को छोड़कर शायद ही कहीं मिल सके। यह सत्य है कि नेपाली

सैनिक आज्ञा मिलने पर अपने भाई तक को बिना हिचक मार सकता है। चाहे यह नैतिक दृष्टि से भले ही बुरा हो; परन्तु अनुशासन की दृष्टि से बहुत ही अच्छी चीज समझी जाती है। क्योंकि बिना अनुशासन के न राज्य चल सकता है और न तो सेना संघटित की जा सकती है। बिना अनुशासन की कड़ाई के किसी सैनिक अथवा व्यक्ति को मरने के लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता। अनुशासन की ही यह देन है कि पन्द्रह रुपये की नौकरी करके गोरखा-सिपाही डटकर मर जाता है; परन्तु अपने स्थान से हटता नहीं। उस समय उसका आदर्श महीने में मिलने-वाला पंद्रह रुपया नहीं होता; बल्कि 'कर्त्तव्य' होता है। यही कारण है कि नेपाली सैनिक युद्ध करने में, मोर्चा लेने में, टिके रहने में, भारतीय सैनिकों में ही नहीं, संसार के सैनिकों में सर्व-श्रेष्ठ समझा जाता है। यद्यपि कभी-कभी भारतीय इस बात का बड़ा दुःख अनुभव करते हैं कि गुरखा-सैनिक बिना सोचे-विचारे गोली चला देता है। यह ठीक है। किन्तु साथ ही; यह भी ठीक है कि नेपाल एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। यह भी ठीक है कि गुरखा अंग्रेजों के लिए बन्दूक उठाता है। किन्तु यदि कोई सैनिक अनु-शासन-पालन के समय तर्क करने लगे अथवा अपने उच्च अधि-कारी की आज्ञा को अपनी विचार-बुद्धि से तौलने लगे तो वह सैनिक सैनिक नहीं रह सकता और इस प्रकार दुनिया की कोई भी सेना संघटित नहीं की जा सकती। उस समय उसकी स्थिति एक सैनिक की स्थिति न रह कर एक राजनीतिक विचारक जैसी हो जायगी। फिर तो उसका स्थान सेना न होकर, सार्वजनिक रंगमंच होना चाहिए।

मुझे प्रारम्भ से ही सैनिक जीवन पसन्द है। मुझे जब कभी सेना के प्रदर्शन अथवा सैनिक बैण्ड बजने की सूचना मिलती है तो मैं अवश्य देखने और सुनने की चेष्टा करता हूँ। 'शहर कांग्रेस-कमेटी' में मैंने स्वयं-सेवकों का संघटन भी किया था। बैण्ड-पार्टी बनाकर स्वयं बाजा बजाता था। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम हिंदुस्थानियों में दलबन्दी के पारस्परिक मनोमालिन्य ने इतना स्थान कर लिया है कि कोई भी रचनात्मक और ठोस काम चलने ही नहीं पाता। केवल बड़ी बड़ी सभाएँ करके, माला पहनकर, एसेम्बलियों, डिस्ट्रिक्ट एवं म्युनिसिपल बोर्डों के मेम्बर होकर लोग देश के नेता बन जाना चाहते हैं। किन्तु यदि अब भी भारतीय अपनी यह नीति नहीं बदलेंगे तो अपने साथ समाज को ले मरेंगे। उन्हें मिली हुई शक्ति नष्ट हो जायगी, और फिर हमें किसी-न-किसी का गुलाम बनना पड़ेगा।

प्रातःकाल का समय था। ठण्ढी हवा शनैः-शनैः बह रही थी। हम टहलने निकले। टूडीखेल की सड़क पर आते ही खाकी वर्दी से सारा मैदान मैंने भरा पाया। सड़क पर अफसर तथा सैनिक घूम रहे थे। स्थान-स्थान पर सैनिक शिक्षा दी जा रही थी। खड़ी वृक्ष के उत्तरवाले बिजली के खम्भे पर झण्डा टँगा था। वहीं नेपाली स्वर में बैण्ड बज रहा था। मैदान में तीन-चार स्थानों पर और भी बैण्ड बज रहे थे। मैंने भारतीय स्वर में पहले-पहल आजाद-हिन्द-फौज का गाना मेरठ-काँग्रेस के अवसर पर सुना था और आज टूडीखेल में सुना। मैं यह दृश्य देखकर मुग्ध हो गया। अपने-अपने झण्डों के साथ छोटी-छोटी

सैनिक टुकड़ियाँ मार्च कर रही थीं। उन्हें नानाप्रकार के आदेश दिए जा रहे थे। कहीं टुकड़ी संगीन-चार्ज कर रही थी। कहीं एक टुकड़ी दूसरी टुकड़ी पर घेरा डाल रही थी। कहीं डबल-मार्च हो रहा था और कहीं सैनिक सावधान खड़े आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दूसरे दिन रँगरूट खाकी वर्दी में नहीं थे। वे नंगे पैर अपने ही देशी पहनावे में परेड कर रहे थे। उनमें कुछ सैनिक वर्दी भी पहने थे; किन्तु वे भी नंगे पैर थे। टूडीखेल के मैदान में इतनी अच्छी घास लगी है कि पैदल चलने में बड़ा आनन्द आता है। इस दृश्य को देखकर मैं समझ गया कि नेपाली लोग किस कठिनता से अपना आयुध-जीवन बना पाते है। भारतवर्ष में इस प्रकार का टूड़ीखेल जब तक हम प्रत्येक शहर में न बना पाएँगे तब तक हमें समझना चाहिए कि हमारी स्वतन्त्रता सुरक्षित एवं स्थिर न रह सकेगी।

काठमाण्डू की सीमा पर छोटे-छोटे मैदान बहुत दिखाई पड़ते हैं। भक्तगाँव में, पाटन में, गोदावरी के मार्ग में, कलाशाला के पास, न जाने कितने ही स्थानों में, अरुणोदय काल में चालीस हजार नेपाली सैनिक सैनिक वेष में देव-सेनापति स्वामिकार्तिक को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए निकल आते हैं। सब सैनिक श्री पशुपतिनाथ का स्मरणकर अपने सैनिक जीवन का आरम्भ और अन्त करते हैं। पशुपतिनाथ एक केन्द्र है, जहाँ राजा से लेकर एक साधारण सैनिक तक केवल सैनिक रूप से संघटित होकर हथियार ग्रहण करता है।

——

सैनिक अस्पताल

टूडीखेल की पश्चिम दिशा में महाकाल के मन्दिर में समीप 'श्री त्रिभुवनचन्द्र मिलिटरी-अस्पताल' है। अस्पताल का भवन तीन मंजिलों का है। यों तो सभी फौजी बैरिकों के पास अस्पताल है; किन्तु गम्भीर बीमारी के सैनिक यहाँ भेज दिए जाते हैं। अस्पताल के प्रवेश-द्वार से घूमते ही आधुनिक ढङ्ग का एक शिलालेख गोलाकार प्लेटफार्म पर मिलता है। शिलालेख के ऊपर श्रीपशुपतिनाथ की मूर्ति है। अस्पताल का साइनबोर्ड आकर्षक मालूम हुआ। अंग्रेजी तथा नागरी लिपि में लिखा था—'श्री १०८ पशुपतिनाथ का चरणकमल मो शिर धारिये। हस्पताल संवत् १९७१.........।' इस लेख से नेपाल की धार्मिक भावना लक्षित होती है। श्री पशुपतिनाथ को ही अर्पितकर यह आदर्श सामने रखा गया है कि भगवान् को अर्पितकर काम किया जा रहा है, फलों की आकांक्षा नहीं है। निष्काम कर्म को इस प्रकार परोक्षरूप से आदर्श बनाया गया है। अस्पताल की इमारत पर भी मोटे अक्षरों में लिखकर नर-रूप नारायण की जीती-जागती दुःखी मूर्ति की सेवा करने के लिए अस्पतालवालों का ध्यान दिलाया गया है। दुःखी रोगी को भी भगवान् की याद दिलाई गई है कि मनुष्य का अधिकार कर्तव्य करने का है और फल भगवान् देगा।

अस्पताल के प्रबन्ध के लिए एक ट्रस्टी-बोर्ड है। इसके लिए कोष का रुपया जमा है तथा वार्षिक सरकारी सहायता भी मिलती है। ट्रस्टी लोग यहाँ का प्रबन्ध करते हैं। उनके लिए एक आफिस, जिसे 'कोठा' कहते हैं, अलग बना है। अस्पताल में

एक्स-रे आदि आधुनिक वस्तुएँ संग्रहीत हैं। नेपाल में सर्वत्र नागरी-लिपि में काम होता है; परन्तु अस्पताल में अंग्रेजी को स्थान ग्रहण किए देखकर दुःख होता है। रोग-सूचना-पट्ट (वेड-हेड टिकट) आदि नागरी-लिपि में ही होना चाहिए; ताकि रोगी अपनी अवस्था स्वयं जान सके कि उसका क्रम कैसा चल रहा है ?

अस्पताल के सम्मुख ही महाकालेश्वर के मन्दिर को देखकर एक विचित्र भावना मन में उत्पन्न होती है। काठमाण्डू के तीनों अस्पताल; अर्थात् सिविल, मिलिटरी और जनाना अस्पताल एक ही पंक्ति में हैं। उनके सम्मुख महाकालेश्वर की विकराल काली मूर्ति को देखकर स्वभावतः यह भावना जाग्रत हो उठती है कि मानों अस्पतालों के निर्माणकर्ताओं ने इसलिए यहाँ मन्दिर बनवाया है कि महाकाल को अस्पताल तक आने में कष्ट न उठाना पड़े, किंवा रोगी महाकाल की प्रार्थना किया करे जिससे उनकी दृष्टि उसकी ओर न घूमने पाए।

सिविल अस्पताल

सैनिक अस्पताल से लगा हुआ ६० वर्ष का पुराना 'सिविल वीर-अस्पताल' है। उस समय श्री ३ सरकार वीरशमशेरजंग-बहादुर राणा यहाँ के प्रधानमन्त्री थे। उन्हीं के नाम पर यह अस्पताल बना है। 'धीर-डिस्पेन्सरी' भी उसी के साथ सम्बन्धित है। इसमें १०० रोगियों के रहने के लिए स्थान है। विभिन्न प्रकार के रोगियों के लिए निश्चित स्थान बने हैं। अस्पताल की इमारत पुरानी है। यहाँ का प्रबन्ध 'मिलिटरी-अस्पताल' से

अच्छा मालूम हुआ। सब से अधिक आश्चर्य मुझे उस समय हुआ जब मैंने एक विभाग में यह लिखा हुआ पढ़ा—'पानी न चलने को वार्ड।' मैंने डाक्टर साहब से पूछा, जिसपर उत्तर मिला कि जिन लोगों का स्पर्श किया हुआ जल नहीं ग्रहण किया जाता; अर्थात् अछूतों के लिए यह अलग वार्ड रखा गया है। नेपाल के राजन्यवर्ग को चाहिए कि हिंदूजाति के इस कलंक-पूर्ण असमानता को शीघ्र दूर कर दें। कम-से-कम सार्वजनिक स्थान, शिक्षालयों एवं अस्पतालों में इस प्रकार की असमानता का रहना विशेष चिंतनीय है। क्योंकि माता सरस्वती के सब संतान हैं। विद्या दैवी वस्तु हैं, इसलिए जल, रोशनी, हवा के समान उसे प्राप्त करने का सभी को अधिकार है। मनुष्य तो मनुष्य ही होता है, सब ईश्वर की संतान हैं। भारत के सुप्रसिद्ध जगन्नाथजी के मन्दिर में चाण्डाल एवं ब्राह्मण एक साथ प्रवेश करते तथा प्रसाद पाते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि भगवान् के सम्मुख सब बराबर हैं। आशा है कि नेपाल-सरकार इस भेद-भाव को शीघ्र मिटाकर हिन्दूमात्र को एक भाई-चारे के सूत्र में बाँधकर हिन्दू-धर्म की उदारता की रक्षा करेगी।

जनाना अस्पताल

अस्पतालों की पंक्ति में ही 'जनाना अस्पताल' भी है। सब अस्पतालों को एक ही स्थान पर रखकर बुद्धिमानी की गई है। टूड़ीखेल का विशाल मैदान सामने होने के कारण शुद्ध वायु का सेवनकर एवं प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता को निरखता हुआ रोगी अपना आधा रोग बिना दवा के ही आराम कर

सकता है। इस अस्पताल का नाम भी 'वीर शमशेर फीमेल अस्पताल' रखा गया है। इस अस्पताल का प्रबन्ध अच्छा दिखाई पड़ा। स्त्री-रोगियों को तथा उनके अस्पताल को देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। इस अस्पताल को देखकर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। इस अस्पताल का प्रबन्ध डा० श्रीमती राणा, जिनके पति का नाम कर्नल खड़गबहादुर राणा है, करती हैं। यह लाहौर-विश्वविद्यलय की स्नातक हैं। यह नेपाली नहीं हैं। इनका व्यवहार तथा रोगियों की सुश्रूषा कुलीन घरों की स्त्रियों के लिए आदर्श-स्वरूप है। जिस समय शिक्षित महिलाओं की देश को आवश्यकता है उस समय बी० ए० और एम० ए० पास कर कितनी ही महिलाएँ वर की दुलहिन बनकर कोनों में बैठी हैं और उनकी विद्या, शक्ति एवं अनुभव के लाभ से देश वंचित हो रहा है। इस प्रकार की देश की महिलाओं को श्रीमती राणा के कार्यों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यहाँ की दूसरी डाक्टर श्रीमती सेठी हैं। इन्होंने अपना जीवन ही नेपाल में बिता दिया है। कुछ ही वर्ष पूर्व इन्होंने चालीस हजार का एक मकान लाहौर में खरीदा था कि वह अपनी जन्म-भूमि में जाकर शेष जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत करेंगी। परन्तु पाकिस्तानी दानव ने मकान को खँडहर बना दिया। सम्बन्धियों का पता भी तार, चिट्ठी आदि देने पर दो महीनों से कुछ नहीं लगता रहा। वे इतनी दुखी हैं कि उनकी करुण कहानी सुनने से आँखों में बरबस आँसू आए बिना नहीं रहते। श्री श्रीप्रकाशजी ने उनका पता लिखकर उनको आश्वासन दिय कि उनके सम्बन्धियों का पता लगाया जायगा। मैंने पाकिस्तान एवं हिन्दुस्तान

का प्रश्न वहाँ छिड़ने पर नेपाल-निवासियों को शांत एवं गम्भीर हो जाते देखा। हम लोगों की तरह वे बहस करना नहीं जानते। कट्टर हिंदू एवं परंपरागत सैनिक जाति के होने के कारण वे एक स्वतन्त्र और जिम्मेदार देश के नागरिकों की तरह विचार करने लगते हैं और उसके परिणाम को देखते हैं। कोई नेपाली पाकिस्तान-हिन्दुस्तान का उच्चारण नहीं करता। वह सुनकर मुख फेरता हुआ गम्भीर मुद्रा बना लेता है। देखना है कि संसार का एकमात्र स्वतन्त्र हिन्दू-देश नेपाल इस सम्बन्ध में क्या करता है?

सुन्दरीजल

काठमाण्डू की बिजली सुन्दरीजल से आती है। सुन्दरीजल काठमांडू से आठ मील की दूरी पर है। बागमती और नागमती नदियों को वहाँ बाँधा गया है। उन्हीं की जलशक्ति से बिजली उत्पन्न की जाती है। बाँध पर्वत के ऊपर है और 'हाइड्रो इलेक्ट्रिक' का कारखाना पर्वत के नीचे बागमती के दक्षिण तट पर स्थित है। काठमाण्डू से, बागमती के किनारे से, सड़क सुंदरीजल तक जाती है। बिजली के कारखाने से पर्वत के ऊपर जाने का मार्ग बड़ा ही सुहावना है। चढ़ाई खड़ी है। बागमती का यहाँ भयंकर रूप दिखाई पड़ता है। वह पर्वत पर से अपनी क्षीण धारा के साथ पतित होती है। उसके पेटे में इतनी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं कि विन्ध्याचल का कोई नदी-श्रोत स्मरण हो आता है। काठमाण्डू से सुन्दरीजल तक का पर्वत पत्थरमय नहीं है। सुन्दरीजल के कारखाने के ऊपर चट्टानें मिलनी आरंभ हो जाती हैं। पर्वत पर से चंगूनारायण-पहाड़ी तथा समस्त

काठमाण्डू-घाटी का बड़ा ही सुंदर दृश्य देखने को मिलता है। स्थान काठमाण्डू से दूर अवश्य है; परन्तु देखने योग्य है। कारखाने में तीन डाइनोमा लगे हैं। बिजली का उत्पादन इतना अधिक नहीं होता कि काम ठीक से चल जाय। दिन में दो डाइनोमा और रात में तीन चलते हैं। यह बिजलीघर सन् १९३४-३५ ई० में बना था। यहाँ के इंचार्ज श्री काशीराज्य उपाध्याय हैं। आप काशी-विश्वविद्यालय के स्नातक हैं।

चारुदेवी

काठमाण्डू से सुन्दरीजल के मार्ग में पहला गाँव चारुहिल पड़ता है। हिमालय-पर्वत पर सब से प्राचीन स्तूप यहीं पर बना है। कहा जाता है कि अशोक की कन्या चारुदेवी यहीं पर रहती थीं। उन्हीं के नाम पर ग्राम का नाम 'चारुहिल' पड़ा था, जो अब 'चावहिल' कहा जाता है। स्तूप देखने से ही अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। यह पत्थर का बना है। मालूम होता है, जैसे गोल कटोरा किसी ने उलटकर रख दिया हो। स्तूप भूमितल से मिला है। अन्य स्तूपों के समान इसमें कुर्सी नहीं है। स्तूप के समीप चार-पाँच पत्थर के ठोस चैत्य हैं।

गणेश को बलि

अब तक यही सुनने में आया था कि गणेशजी 'मोदक प्रिय मुद-मंगल दाता' हैं। परन्तु नेपाल में गणेशजी को अन्य देवियों की भाँति भैंसा, बकरा आदि की बलि भी बड़े उत्साह एवं समारोह के साथ चढ़ाई जाती है। चावहिल के बाजार में एक मन्दिर के सम्मुख मैंने समारोह देखा। मन्दिर सजाया गया

था। मन्दिर के सम्मुख प्रांगण में बिछौना बिछा था। कागज की झंडियों और तोरणों से स्थान सजा था। फाटक भी बनाया गया था। लाउडस्पीकर से रिकार्डों को बजाया जा रहा था। गाँव की स्त्रियाँ हाथों में पुष्प लेकर चारों ओर से आ रही थीं। डालियों में अढ़उल के पुष्प अधिक देखने में आए। पूछने से मालूम हुआ कि वर्षा न होने के कारण गणेश की पूजा एवं उनके लिए पशुबलि दी जायगी।

बौद्धनाथ

बागमती के दक्षिण ओर बौद्धनाथ का स्तूप और वाम तट पर गुह्येश्वरी का मन्दिर है।

रावण-यज्ञभूमि

बागमती नदी के दक्षिण तट पर गोकर्णनाथ का मन्दिर है। वाम तट पर ऊँची पहाड़ी पर किसी गढ़ के समान 'गोगढ़' बसा है। बौद्धनाथ से आगे बढ़ने पर बड़ी सुंदर घाटी मिलती है। बागमती के दक्षिण तट पर खूब खेती होती है। वाम तट पर राज्य-रक्षित वन है। यह वन चारों ओर चहारदीवारी से घिरा है और इसके भीतर कोई नहीं जाने पाता। वन एक छोटी पहाड़ी पर है। यह बहुत ही घना है। राजा यहाँ शिकार खेलते हैं।

इस वन के ठीक दूसरी ओर बागमती के दक्षिण तट पर गोकर्णनाथ के मन्दिर के समीप एक पहाड़ी है। चारों ओर की हरी-भरी पहाड़ियों में केवल यही एक पहाड़ी ऐसी थी, जिसपर एक छोटा-सा पौधा तक नहीं उगा था। यह समस्त पहाड़ी सूखी और समतल थी। विशेष ऊँची भी न थी। फिर भी समतल

भूमि में खेती न हो, यह मुझे बड़े आश्चर्य की बात दिखाई दी। मैंने इसका रहस्य पूछा। विदित हुआ कि हिमालय में रावण के तपस्या करने की जो बात वर्णित है, यह वही स्थान है। यहीं पर रावण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया था। यहीं उसने शिवजी को सन्तुष्ट कर वर प्राप्त किया था। ग्रामीण बताते हैं कि अब तक भूमि खोदने पर वहाँ काली मिट्टी मिलती है। पहाड़ के कुछ खुदे हुए भाग में प्राचीन काल की ईंटों के टुकड़े भी देखने को मिले। अतएव स्थान की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं है। किन्तु इस बात का आश्चर्य अवश्य है कि चारों ओर के हरे-भरे मैदान एवं पर्वतमालाओं के बीच समतल भूमि होने पर भी यहाँ वृक्ष नहीं उगते। ग्रामीणों ने बताया कि मिट्टी अच्छी और जल का सुपास होता हुआ भी यहाँ इस महँगी के जमाने में खेती का बहुत कुछ प्रयत्न किया गया; किन्तु कोई फल न हुआ। इस सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक ही निर्णय दे सकता है।

वज्रयोगिनी

गोकर्णनाथ से कुछ पहले एक तिरमुहानी पड़ती है। यहाँ से दक्षिण ओर नीची होती हुई एक सड़क चली गई है, जो वज्रयोगिनी को जाती है। वज्रयोगिनी का मन्दिर एक पहाड़ी पर बना है। यहीं से मार्ग नेपाल की सीमा पार करता हुआ तिब्बत को चला जाता है। मन्दिर में विशेष कोई बात देखने योग्य नहीं दिखाई दी।

गोकर्णनाथ

बागमती के दक्षिण तट पर गोकर्णनाथ का मन्दिर चार मंजिले पेगोड़ा-शैली पर लकड़ी और ईंट का बना है। मन्दिर के दक्षिण पार्श्व में घण्टा तथा वाम पार्श्व में शिवजी का विशाल त्रिशूल गड़ा है। त्रिशूल में डमरू, फरसा एवं सर्प लगा है। त्रिशूल के वाम पार्श्व में खुला बरामदा है। मैंने यहाँ देखा कि ग्राम की स्त्रियाँ कथा सुन रही थीं और एक पण्डितजी बड़े प्रेम से कथा बाँच रहे थे। मन्दिर सड़क से लगभग बारह फीट नीचे होगा। मन्दिर से बागमती के तट तक पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। बागमती यहाँ पतली होकर दर्रे-जैसे पतले स्थान से होकर बहती है। एक ओर गोकर्णनाथ के मन्दिर का पक्का घाट और दूसरी ओर गोगढ़ की पहाड़ी है। मन्दिर के आसपास बहुत से ठोस और छोटे-छोटे चैत्य बने हैं। इस स्थान से आगे बढ़ने पर बहुत ही सुन्दर घाटी मिलती है। यहाँ पीपल, अमरूत, नींबू आदि के वृक्ष और फल-फूल मिलते हैं, क्योंकि काठमाण्डू की सतह से नीची भूमि होने के कारण गर्मी पड़ती है। किन्तु आम का पेड़ मैंने कहीं नहीं देखा।

आरसनल

सुंदरीजल से लगभग एक मील इधर ही नेपाल-राज्य का आरसनल है। यहाँ आधुनिक ढंग के अस्त्र-शस्त्र तथा धूम्ररहित बारूद तैयार होता है। कारखानों का काम बन्द रहने के कारण हम लोग भीतर न जा सके। आरसनल बागमती के दक्षिण

तट पर बना है। इमारतें काफी हैं। थोड़ी दूर पर आरसनल के रक्षक या अधिकारी का बड़ा सुंदर बँगला बना है।

बोधनाथ

बोधनाथ का स्तूप सुंदरीजल के मार्ग में स्थित है। चारुमती किंवा चारुदेवी के स्तूप से थोड़ा आगे बढ़ने पर यह स्तूप मिलता है। बागमती के दक्षिण तट पर गुह्येश्वरी देवी का मन्दिर और वाम तट पर यह स्तूप स्थित है। नदी से स्तूप का अन्तर चार फरलांग के लगभग होगा।

पर्वतीय समतल भूमि में नेपाल का यह सब से बड़ा स्तूप है। कहना न होगा कि समय की गति और विदेशी शासन में पड़कर भारतवर्ष के कितने ही स्तूप नष्ट हो गए और कितने जीर्ण-शीर्ण अवस्था में बिना मरम्मत के पड़े हुए हैं; किन्तु नेपाल में बोधनाथ का स्तूप अपनी पूर्वावस्था में अक्षुण्ण बना हुआ है। इसके प्रबन्ध का भार कुछ अंश तक तिब्बत के लामा लोगों के ऊपर भी है।

बुद्ध भगवान् के चारों स्थान; अर्थात् लुम्बिनी, गया, सारनाथ एवं कसिया के स्तूपों को मैं देख चुका हूँ। साँची आदि स्थानों का भी स्तूप मैंने देखा है; किन्तु बौद्धनाथ का स्तूप सब से विशाल और विशेष प्रसरित है। किसी अन्य स्तूप पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं लगी हैं; किन्तु बुद्धनाथ-स्तूप पर लोग ऊपर तक जाते हैं। छोटी-छोटी सीढ़ियों से स्तूप के शिखर तक, जहाँ से चौकोर मन्दिर के आकार की रचना आरम्भ होती है, दर्शनार्थी जा सकता है।

वोधनाथ

स्तूप के अवलोकन से उसकी विशालता दर्शकों के हृदयों पर अपनी गम्भीर छाप लगा देती है। इसके चौकोर तोरण पर से चारों ओर देखने में दर्शकों के हृदयों में अनायास भय का संचार होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों यह सुविशाल स्तूप नागरिकों को सावधान करता हुआ कह रहा हो कि देखो तुम्हारे जीवन का पाप-पुण्य कुछ भी हम से छिपा नहीं है और हम यहाँ बैठकर निरन्तर तुम्हारा चरित्र देख रहे हैं। स्यात् इसी लिए क्या मानव-समूह श्रद्धा-भक्ति के साथ उसकी अर्चना के लिए नित्य प्रति अग्रसर हुआ करता है?

अस्तु, यह स्तूप बहुत ही विस्तृत प्रांगण में स्थित है। स्तूप के चारों ओर छोटी चहारदीवारी है। चहारदीवारी में चारों ओर द्वार बने हैं। तीन ऊँची चौकोर कुर्सियों के ऊपर विशाल स्तूप उलटे हुए गोल कटोरे-जैसा प्रतीत होता है। इसके सिर पर मुकुट के समान मानों हेमरंजित हिन्दू-मन्दिर किसी ने उठाकर रख दिया हो; क्योंकि चौकोर भाग के ऊपर तीक्ष्णाग्र होता मन्दिर का चौकोर भाग क्रमशः आकाश की ओर क्षीण होता गया है। स्वयम्भूनाथ का यह भाग वहाँ गोला है; परन्तु यहाँ चौकोर है; अर्थात् शैली में यह हिन्दू-मन्दिरों के अधिक समीप है। क्षीणाग्र भाग में तेरह चौकोर भाग हैं। ऐसा मालूम होता है कि एक वर्गाकार रचना के ऊपर दूसरा वर्गाकार उससे छोटा रखा गया है। अन्त में चौकोर कलश रखकर यह वर्गाकार रचना समाप्त की गई है। अन्तिम वर्ग के चारों कोनों में चार दण्डों पर लगी गोली छतरियाँ हैं। छतरियों के ऊपर नेपाली शैली का कलश है। स्तूप के ऊपरवाला मन्दिराकार भाग नीचे

से ऊपर तक हेमरंजित है। ऐसा मालूम पड़ता है कि पीतल या ताँबे का पत्र लगाकर उसपर सोने का रंग चढ़ाया गया है।

स्तूप के चारों कोनों पर चैत्य-शैली के छोटे चार गुम्बज बने हैं। स्तूप की मेखला में चारों ओर पत्थर की तान्त्रिक मूर्तियाँ लगाई गई हैं। स्तूप की प्रदक्षिणा के लिए उसके चारों ओर दस फीट चौड़ा पत्थर का फर्श बिछा है। फर्श के बाहर चारों ओर बड़ा मैदान पड़ा है और उसके बाद लोगों के मकान बने हैं। सब के बाहर फाटक बना हुआ है। इस प्रकार इस स्तूप की और उसके मुहल्ले की एक दुनिया इस फाटक के भीतर अलग ही बसती है।

तिब्बती यात्रियों एवं लामा लोगों के लिए यह स्तूप उनके सर्वश्रेष्ठ तीर्थों में से एक है। यहाँ प्रति वर्ष शीत-ऋतु में तिब्बती यात्री आते हैं। उनका डेरा खेतों में गड़ता है। ये बड़े उत्साह एवं भक्ति के साथ बोधनाथ की पूजा एवं परिक्रमा करते हैं। यहाँ साधारण तिब्बती तथा नेपाली बौद्धधर्मावलम्बी गृहस्थ अपनी-अपनी मनोकामना-सिद्धि के लिए नानाप्रकार की मनौतियाँ मनाते हैं और पूजा के समय अपने कामनानुसार पूजा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय एवं तिब्बती संस्कृतियों के आदान-प्रदान का सूचक यह स्तूप बड़े महत्व का है। बोधनाथ का यह स्तूप ही बतला रहा है कि हिन्दू और बौद्ध शैलियों का संमिश्रण ही इस स्तूप का जनक है।

बुद्धनाथ के समीप किसी प्रकार का प्राकृतिक सुन्दर दृश्य नहीं है। यहाँ छोटा-सा एक बाजार है, जहाँ उपयोगी वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। ग्रामीण जनता बहुत ही गरीब है।

स्वयम्भू

काठमाण्डू के पश्चिम ओर, एक मील के अन्तर पर, हरित पर्वतमाला के मध्य में जैसे दो आँखें समस्त घाटी की ओर देखती हुई दिखाई देती हैं। ध्यानपूर्वक देखने से हरित पादपाच्छादित हरिताभ पर्वत-शिखर पर अखण्ड ज्योति-सा हेमरंजित तीक्ष्णाग्र वृत्ताकार मन्दिर दृष्टिगोचर होगा। इसके दर्शनमात्र से ही यह कौतूहल उत्पन्न होता है कि पर्वत के विशाल नेत्र अनवरत रूप से अपने चरणतल की उपत्यका में रात-दिन क्या देखते रहते हैं ? इस प्रकार की आश्चर्य-मिश्रित भक्ति-भावना से आगे बढ़ने पर पर्वतमूल में पहुँचते ही ५०० सीढ़ियाँ पर्वत-शिखर तक उठी हुई दृष्टिगोचर होती हैं। दो-चार सीढ़ियों पर चढ़ने के साथ ही आसनमारे भूमिस्पर्श-मुद्रा में भगवान् बुद्ध की तीन विशाल मूर्तियाँ मिलती हैं मानों वे दर्शनार्थी यात्रियों का स्वागत करती हुई कह रहीं हों—'हमने शताब्दियों से लोगों को आते-जाते देखा है। हमने शताब्दियों से इन सीढ़ियों पर भक्तों को अनेक कामनाओं एवं भावनाओं के साथ शिथिल होते हुए चढ़ते देखा है। सब चले गए। फिर भी यह पहाड़ी मानव-जगत् के उथल-पुथल, विकाश और पतन का दृश्य देखती हुई साक्षी-रूप से खड़ी है। इन सीढ़ियों में शताब्दियों का इतिहास निहित है। जाओ, यात्री ! अपने जीवन की मधुर कामनामय कहानी सुनाते भवसागर से ऊपर उठने की कोशिश करो।'

पर्वत-मूल से शिखर तक सोपानों पर पादपों की कुञ्ज सदृश्य शीतल छाया है। यात्री को किंचित् मात्र धूप से कष्ट नहीं

होता । सोपान-मार्ग में जहाँ मूर्तियाँ मिल जाती हैं, उससे दक्षिण चलने के लिए मार्ग घुमाकर आगे मूल-मार्ग से मिला दिया गया है; ताकि दर्शनार्थी भूल से पवित्र मूर्तियों के वाम भाग से न गमन करे ।

कुछ ऊपर पहुँचने पर दक्षिण ओर गणेश तथा वाम भाग में स्वामिकार्तिकेय की मूर्तियाँ हैं । यहाँ पहुँचते-पहुँचते आगन्तुक का श्वास फूलने लगता है और अनायास उसकी आँखें ऊपर की ओर उठ जाती हैं । थोड़ा और आगे बढ़ने पर नीचे-जैसी भगवान् की तीन चैत्य मूर्तियाँ पुनः दृष्टिगत होती हैं और मानों यात्रियों की ओर देखती हुई कहती हैं—'शान्त हो जाओ ! यह फूलता श्वास-प्रश्वास क्षणिक है । अनन्त की ओर बढ़ते चलो !' यात्री पुनः बढ़ने लगता है । चढ़ाई कठिन मालूम होती है । सम्मुख वाम ओर मयूर और दक्षिण ओर गरुड़ की मूर्तियाँ मिलकर मानों कहती हैं—'हे मन, उड़कर भगवान् के चरणों में पहुँच चलो ।' कुछ और आगे बढ़ने पर दोनों ओर अश्व मिलते हैं मानों वे बतला रहे हों कि थकान को शिथिलता मानव को पीछे छोड़ देती है । यात्री फिर अग्रसर होने लगता है । उसकी रानें भर जाती हैं और पसीना आ जाता है तथा घबड़ाकर ऊपर देखने लगता है । आगे दोनों ओर दो गज मिलते हैं । वे मुस्कराकर कहते हैं—'यदि तुममें बल है तो बढ़े चलो ।' दर्शनार्थी यह सब देखता हुआ भी उसकी आँखें मुख्यतः सीढ़ियों का अन्त देखना चाहती हैं । इस प्रकार वह ऊपर चढ़ता है तथा उसे दोनों ओर सिंह वीरासन-मुद्रा में बैठे दिखाई देते हैं मानों दर्शनार्थी के श्रम की सफलता की बधाई देने को यहाँ

रखे गए हों।

सब से ऊपर की अंतिम सीढ़ी के मध्य भाग में हेमरंजित वज्र एक धातु-मंडल पर रखा है। वह मानों याद दिलाता है कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त वज्र-सरीखे कठोर होने पर भी हेम-सदृश सुन्दरता का अभाव मनुष्य में न होना चाहिए। वज्र में भी शोभा हुआ करती है। शोभा ही मानवीय श्रेष्ठ गुण है। अशोभन वस्तुओं का वज्र द्वारा नाशकर यहाँ आओ, तुम्हें शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

तीन फीट ऊँचे धर्म-धातुमण्डल की वृत्ताकार भूमितल पर वज्र चढ़नेवालों की ओर देख रहा है। धर्म-धातुमण्डल में, उसके निर्जीव पाषाण में बारह पशुओं के चित्र, यथा—गाय, वाराह, श्वान, मेंढ़ा, गैंड़ा, मोर, सिंह आदि बने हैं। ये स्मरण दिलाते हैं कि धर्म से पशु भी परे नहीं हैं। उनकी रक्षा यदि मानव नहीं तो दैवी वज्र करेगा।

बारहों पशु तिब्बत के बारह मासों की भावना को लिए हुए गोलाकार धर्म-धातुमण्डल में बने हुए मानों बतला रहे हैं कि हम घूम-घूमकर यह देखने आते हैं कि दुनिया मानव-विकास की ओर कितनी अग्रसर हो रही है।

स्तूप के नीचे भूमि में पत्थर का फर्श बिछा है। चारों ओर अनेक प्रकार के चैत्य एवं मन्दिरों की विचित्र-विचित्र शैलियाँ अनेक शताब्दियों की मानवीय भावनाओं की प्रतीक-स्वरूप यहाँ विद्यमान् हैं। स्तूप का व्यास ६० फीट है। ३० फीट उन्नत है। गोलाकार स्तूप के शिरोभाग से वर्ग सदृश्य चौकोर कुर्सी ऊपर उठी है। कुर्सी करीब दस फीट होगी। चौकोर कुर्सी में ही

चारों तरफ आँखें बनी चारों दिशाओं की ओर पर्य्यवेक्षण करती हैं। वे जैसे कह रही हैं—'हम से तुम्हारी बातें नहीं छिपी हैं। स्मरण रखना एक दिन तुम्हें कहीं पहुँचना है।' कुर्सी के कारनिस पर अर्द्धवृत्ताकार त्रिकोण-पट्ट पर भूमिस्पर्श-मुद्रा में बुद्ध की और उसके नीचे की पंक्ति में चार ध्यानावस्थित बुद्ध की पीतल पर उभड़ी हुई हेमरंजित मूर्तियाँ बनी हैं। कुर्सी के ऊपर छाता के सदृश डेढ़ फीट ऊँचे वृत्ताकार, जिनके बीच में एक-एक फ़ीट के स्थान छूटे हैं, तीक्ष्णोर्ध्व बने हैं। ये तेरह छाते तेरह बोधि-सत्वों का स्मरण दिलाते हैं। इनके ऊपर आदिबुद्ध हैं। वहाँ से छत्र की पाँच तीलियाँ पाँच आधारबुद्ध को प्रकट करती हैं। सब से ऊपर छत्र एवं कलश है। स्तूप के वृत्ताकार शिरोभाग से कलश तक सब कुछ पीतल पर सुवर्ण का मुलम्मा किया हुआ है। सूर्य की प्रखर रश्मि पड़ने पर ये चमक उठते हैं, मानों बतलाते हैं कि ऊपरी दुनिया की चमक कुछ नहीं है। वह मानव-कृत एवं क्षणिक है। गम्भीरतापूर्वक देखने पर सब शून्य प्रकट होगा। सम्भवतः बौद्ध संप्रदाय के शून्यवाद सिद्धान्त की दार्शनिक भावना को मूर्तिमत् करने के निमित्त ही छत्र से आरम्भ होकर स्तूप के अन्त तक केवल वृत्ताकार रचना की गई है। क्योंकि शून्य का आकार वृत्ताकार होता है, अतएव सभी स्तूप बौद्ध दर्शन के मूल-सिद्धान्त को दिखाने के लिए वृत्ताकर बनते हैं।

स्वयम्भूनाथ तथा बोधनाथ के स्तूपों पर मन्दिराकार रचना, सम्भव हो सकता है, बाद की हो। बहुत सम्भव है कि हिन्दू-धर्म के पुनः अभ्युदय होने पर किसी राजा ने हिन्दू-धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए इन पर मन्दिराकार रचना करा दी

हो अथवा इस प्रकार बौद्ध धर्म एवं हिन्दू-धर्म की एकता प्रमाणित करने की चेष्टा की गई हो।

कहा जाता है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व नेपाल के राजा गोरदस ने इस स्तूप का निर्माण कराया था। इस स्थान पर बन्दर बहुत हैं। सामान उठाकर बन्दर ले जाते हैं; किन्तु किसी पर आक्रमण नहीं करते।

नेपाल में बौद्धों का यह सर्वश्रेष्ठ तीर्थ-स्थान है। तिब्बत के बौद्ध प्रति वर्ष यहाँ दर्शन करने आते हैं। उनकी दृष्टि में स्वयम्भू तथा बौद्धनाथ के तीर्थों का बड़ा ही महत्व है।

वज्र-स्थान के दोनों पार्श्वों में हिन्दू-शैली के दो मन्दिर हैं। मन्दिर बन्द थे और पूछने पर मालूम हुआ कि इन मन्दिरों के अन्दर से सुरंग बहुत दूर; अर्थात् चीन तक गई है। किन्तु यह सब किंवदन्ती है। सम्भव हो सकता है कि बौद्ध योगियों ने योग-साधना के लिए गुफा का निर्माण किया हो जो कालान्तर में अनेक किंवदन्तियों की जनक हो गई हो। उत्तर दिशा के मन्दिर के पीछे हरित माता का एक छोटा-सा मन्दिर है। वहाँ पर मनौती की पूजा हो रही थी। हवनादि तथा पूजा की विधि हम लोगों की ही भाँति थी। स्तूप के पश्चिम-दक्षिण को गया वसुन्धरा का मन्दिर है। इसके चारों ओर चैत्यों की भरमार है। चैत्य स्वयम्भू-स्तूप की शैली के बने हैं। चैत्यों के चौकोर तोरणों पर विष्णु, शिव, भैरव, दुर्गा आदि की मूर्तियाँ प्रायः देखने में आईं। इस प्रकार हिन्दू तथा बौद्ध दोनों धर्मों का समन्वय नेपाल की विशेषता है।

स्तूप के चारों ओर बुद्ध की तथा तारा की भिन्न-भिन्न

मुद्राओं में एक के पश्चात् दूसरे की हेमरंजित मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ कलापूर्ण एवं आकर्षक हैं। उनकी मुखाकृति आर्य है। मूर्तियाँ स्तूप से सटकर बने हुए छोटे-छोटे मन्दिरों में रखी हैं। मन्दिरों में लोहे के छड़ लगे हैं।

स्तूप के ठीक पीछे की ओर तारा की तीन फीट ऊँची दो हेमरंजित धातु-प्रतिमाएँ स्तूप की ओर मुख किए खड़ी हैं, जो नेवरियों द्वारा प्रचारित भारतीय मूर्तिकला की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। मैंने भारतवर्ष में वहुत से मन्दिरों एवं संग्रहालयों में कितनी ही प्रतिमाएँ देखीं; किन्तु इनकी भावमुद्रा, मुखाकृति, बनावट आदि में जो अनोखापन पाया, वह निःसंकोच कला का प्रत्यक्ष साकार रूप कहा जा सकता है। बौद्धनाथ के स्तूप के ईंट-पत्थरों में जिन्हें कोई रस न आता हो या जो केवल स्तूप देखने के लिए वहाँ न जाना चाहें, उन्हें तारा की इन दोनों मूर्तियों को देखने के लिए अवश्य जाना चाहिए। उन्हें जितनी ही बार गम्भीरता से अवलोकन किया जायगा उतनी ही बार उनमें नवीनता दिखाई देगी। उनको देखता हुआ कोई शिथिल नहीं हो सकता। जिसे मूर्तिकला का थोड़ा भी ज्ञान होगा वह मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा करता हुआ अपना परिश्रम सफल समझेगा। कलाकार ने इतनी सुडौल आकृति बनाई है कि देखते ही बनता है। दोनों मूर्तियों के शरीरों पर महीन वस्त्रों का परिधान, उनकी सिकुड़न, मुखों की गम्भीर मुद्रा, अधोमय नेत्रों की विचारमय मुद्रा, दोनों हाथों की उँगलियों की भावनामय मुद्रा, उत्फुल्ल कमल, कुण्डल, मुकुट, जानुस्पर्शिनी पुष्प माला, कण्ठाभरण आदि देखते ही बनते हैं। इसे हम धातुमूर्ति की कला की पूर्णता कह सकते हैं।

स्तूप के प्रांगण के धुर पश्चिम 'गुम्बा' नाम का एक मंदिर बना है। मन्दिर की ऊपरी मंजिल पर पहुँचते ही पाँच मुद्राओं में बुद्ध की हेमरंजित मूर्तियाँ ऊँचे सिंहासनों पर प्रतिष्ठित दिखाई देती हैं। मूर्ति का स्पर्श कोई नहीं कर सकता। मन्दिर-प्रवेश के द्वार के पूर्वीय पार्श्व में बहुत बड़े मणिपद्म में 'हुम्' का यंत्र लिखा रखा है, जिसे एक बार घुमा देने से २।। लाख जप का फल प्राप्त होता है।

स्तूप के उत्तर ओर 'शान्तिवास' नामक मन्दिर है। इसे स्थानीय लोग तिलस्म के नाम से सम्बोधित करते हैं और कहते हैं कि इसमें से एक सुरंग चीन तक चली गई है। मन्दिर के द्वार के दोनों ओर डमरू, वज्र, पात्र आदि लिए चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों को 'काका शाह' और 'उल्का शाह' कहते हैं।

स्तूप की मेखला में चारों ओर पत्थर की छोटी-छोटी तांत्रिक मूर्तियाँ लगी हैं। यह स्तूप पत्थर का नहीं है; किन्तु ईंट और चूने का है। स्तूप पहाड़ी के शिखर पर होने के कारण भव्य मालूम होता है।

कहा जाता है कि मंजुश्री जब यहाँ पधारे तो समस्त घाटी 'नागवास' नामक जलपूर्ण सरोवर के रूप में थी। उसमें केवल एक पद्म तैर रहा था। मंजुश्री ने सरोवर का जल सुखाया और सरोवर सूखकर आधुनिक उपत्यका के रूप में हो गया। सरोवर में कमल जहाँ पर आकर स्थिर हो गया, वही स्तूप का स्थान है। अतएव स्वयम्भू भगवान् की संस्मृति में इस स्तूप की रचना की गई है।

यह स्थान अनादिज्योति का स्थान कहा जाता है, जो सदा जला करती है। लोगों की धारणा है कि वही ज्योति यहाँ पर है। तिब्बत के लामा लोगों का यहाँ के प्रबन्ध में विशेष हाथ है। आज भी वहाँ अखण्ड ज्योति जलाए रखने का उचित प्रबन्ध है।

स्वयम्भूनाथ के स्तूप के आधार एवं शैली पर बने बहुत से स्तूप मिलेंगे। वर्णित स्तूप के पश्चिमी ओर भी दो बड़े स्तूप इसी शैली के बने हैं।

इस पहाड़ी के और पश्चिम लगी हुई दूसरी पहाड़ी है, जिसे 'सरस्वतीस्थान' कहते हैं। सरस्वतीस्थान में सरस्वती की मूर्ति मुझे दिखाई न पड़ी। कारुणिक मुद्रा में एक मूर्ति वहाँ अवश्य है, जिसके एक हाथ में मृणाल-सहित कमल है और दूसरा हाथ उलटा जानु से लगा हुआ है। आर्य-शैली के अनुसार मूर्ति कटि के पास से एक ओर झुकी है।

यह स्थान मंजुश्री का स्थान कहा जाता है। मंजुश्री यहीं निवास करते थे। किन्तु यहाँ मंजुश्री की कोई मूर्ति नहीं है। काठमाण्डू के 'जुद्ध-कलाशाला' में मंजुश्री की मूर्ति अवश्य देखने में आई, जो ताँबे की हेमरंजित चतुर्भुज है। इस प्रकार की मूर्तियाँ काठमाण्डू की गलियों एवं आसपास के फैले हुए स्थानों में हजारों की संख्या में किसी भी चैत्य, मन्दिर अथवा पेगोड़ा में खुदी मिलेंगी। इन मूर्तियों के दक्षिण हाथों में खंग और तीर तथा वाम हस्तों में धनुष और पुस्तक हैं। मस्तक पर मुकुट, ललाट पर गोल टीका, गले में नाभिस्पर्श करती माला एवं अन्य कण्ठाभूषण, कलाइयों में कड़ा, भुजाओं में भुजबन्द तथा स्कन्धों

से झूलता हुआ दुपट्टा फरफराता दिखाया गया है। मूर्ति प्रस्फुटित कमल पर पद्मासन लगाए बैठी है।

स्वयम्भूनाथ पर वर्मावालों तथा तिब्बतवालों को ठहरने के लिए विहार बने हैं। यहाँ के पर्वत-शिखर से समस्त काठमाण्डू का दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है। चंगूनारायण, गोदावरी, भक्तपुर, कीर्तिपुर, पाटन तथा समस्त काठमाण्डू का दृश्य यहाँ से ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। स्वयम्भूनाथ की पहाड़ी हरित वृक्षों से इतनी सघन आच्छादित है कि धूप छनकर कठिनता से आती है। यहाँ से समस्त उपत्यका का आकाशीय दृश्य बड़ा मोहक प्रतीत होता है। स्तूप के चारों ओर मणिपद्मों में 'हुम्' के घूमते हुए गोले लगे हैं, जिन्हें मनमाना घुमाकर भक्तों की धारणा के अनुसार अमित पुण्य लूटा जा सकता है।

स्वयम्भूनाथ को जाने में जिस मार्ग से ऊपर चढ़ा जाता है उसके पीछेवाले दूसरे मार्ग से उतरा जाता है। नगर के समीप यह स्थान बड़ा ही रमणीय एवं दर्शनीय है। पहाड़ी के मूल के समीप नेपाल-सरकार का 'आरसनल'; अर्थात् गोला-बारूद का कारखाना है।

श्री पद्मदीनाश्रम

मंजुश्री-पहाड़ी के पूर्व ढाल पर श्री पद्मदीनाश्रम है। यहाँ श्री फतेहबहादुरसिंह एक कर्मठ कार्यकर्ता हैं। पाँच वर्ष की कारागार-यातना भोग चुके हैं। उनके नेत्रों में मैंने क्रान्ति की वह शान्त अग्नि देखी जो राख के नीचे जाग्रत रहती है। उन्होंने

अपना जीवन लोक-सेवा में दे दिया है। अपना घर छोड़कर आश्रम में ही रहते हैं। श्री तुलसीमेहर के समान चर्खा का काम अपने हाथ में लिए हुए हैं। अपने विचारों को आप बड़ी अच्छी तरह व्यक्त करते हैं। हमें खेद है कि इनकी सेवाओं का सविस्तार उल्लेख करने में हम यहाँ असमर्थ हैं।

आपके आश्रम में इस समय ४० चर्खे चल रहे हैं। चर्खे नेपाली ढंग के नहीं; बल्कि आधुनिक साबरमती-आश्रम के ढंग के हैं। आपका कहना है कि नेपाल का चर्खा छोटा होने के कारण सूत पर ठीक ऐंठन नहीं पड़ती, अतएव आपने नवीन चर्खों का प्रयोग करना आरम्भ किया है। रुई धुनना आदि भी सिखाया जाता है। यह आश्रम अभी शैशवावस्था में है।

मैंने हरिसिद्धि में कितने ही दरिद्रनारायणों को देखा, ललितपाटन में मैंने मानव-उमंग देखा और दीनाश्रम में मुझे विचारों की गम्भीरता, सुख-स्वप्न एवं भावी नेपाल के सुन्दर खाके की झाँकी मिली। मैं यहाँ अकेला आया था। हमारे अन्य साथी दूसरे कामों में लगे रहने के कारण न आ सके। यहाँ से लौटकर मुझे ठीक ४॥ बजे श्री ३ सरकार के यहाँ बिदाई में जाना था। मैं पैदल आया था और पैदल ही लौटना था। तीन बजे दिन में पहुँचा था। जल्दी थी, अतः इस शीघ्रता में मैं अधिक देख न सका।

यहाँ मैंने पठित नेपाली युवकों का समूह देखा। सब वर्तमान अवस्था जानना चाहते थे। सबके मन में अपने देश को सुसंघटित एवं उन्नतशील बनाने की भावना थी। सब शान्त थे और अपने देश की वर्तमान अवस्था में भावी कार्यक्रम को जानना

चाहते थे। मैं राजकीय अतिथि होने के कारण इस सम्बन्ध में कुछ कह न सका। कुछ इधर-उधर की बातें हुईं। श्री फतेहबहादुरजी ने कहा—'स्वामीजी का भी दर्शन कर लीजिए।' मैं उस ओर चल पड़ा।

मैंने एक छोटी-सी पर्णकुटी देखी। कुटिया तीन ओर से खुली थी। बाँस की शय्या पर एक युवक संन्यासी-मूर्ति बैठी थी जिसके मुख पर गम्भीरता, नेत्रों में शान्ति और युवकजन्य स्वाभाविक चंचलता के स्थान पर स्थिरता थी। मैं जमीन पर बिछी चटाई पर बैठ गया। मेरे साथ राष्ट्रीय सेवा-संघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री ओंप्रकाशजी तथा श्री प्रभाशचन्द्र ठाकुर थे। स्वामीजी हिन्दी खूब बोल लेते हैं और उन्हें संस्कृत का भी ज्ञान है।

मेरी स्वामीजी से 'हिन्दुत्व' पर बातें होने लगीं। श्री ओंप्रकाशजी संभवतः 'हिन्दुत्व' के सम्बन्ध की श्री रामदास गौड़वाली संस्कृत-परिभाषा का भाष्य कर रहे थे। मैं चुप था, क्योंकि मुझे स्वामीजी की गम्भीर मुद्रा एवं उनके दिव्य दर्शन में विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा था। स्वामीजी का परिधान शुद्ध खद्दर का गेरुआ रंग का था। बहस के अन्त में स्वामीजी ने कहा—'हिन्दुस्थान को जो अपना देश समझे वही हिन्दू है। मुझे स्वामीजी की यह परिभाषा बहुत रुचिकर प्रतीत हुई। मुझे इस बात का अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि भारत से सैकड़ों मील दूर हिमालय की चोटी के अगम्य स्थान में निवास करनेवाले स्वामीजी आधुनिक युग के कितने समीप हैं। मैं बहुत कुछ बातें करना चाहता था; किन्तु समय न था। चलने के समय मैंने

कहा—'स्वामीजी ! स्मरण रखिएगा कि हिन्दुस्थान एक है ? आप और आपका देश हमसे अलग नहीं हो सकता। वह भी समय भारतीय इतिहास में आ सकता है, जब केवल हिन्दू नाम पर हमें संघटित होना पड़े।' स्वामीजी इसपर मुसकुरा उठे। मैं काठमाण्डू की ओर लौट पड़ा।

मार्ग में श्री फतेहबहादुरजी से बातें होने लगीं। मैंने दीना-श्रम का इतिहास पूछा। क्योंकि मैं उन्हीं के मुख से सुनना चाहता था कि अहिंसा, सत्य, प्रेम, चर्खा और लोक-सेवा की ओर उनके हृदय का परिवर्तन कैसे हुआ, जब कि वहाँ का युवक-समुदाय इन बातों पर हँसता है।

श्री फतेहबहादुरजी ने अपनी जीवन-कहानी इस प्रकार आरम्भ की। उन्होंने कहा कि मैं जेल में था। मंजुश्री-पर्वत के नीचे की घनी आबादी उन लोगों की है जिनके पास खेत नहीं हैं, जिससे वे ग्राम में रहकर भी खेत जोत-बोकर अपना दिन बिता सकें। अत: वे जमीन से लाल मिट्टी निकालकर बेचते थे और वही उनकी जीविका थी। जेल में ज्यादातर कैदी इन्हीं ग्रामों के थे। मैंने उन्हें जेल में बहुत समझाया; किन्तु वे कहते थे कि परिस्थितियाँ विवश करती हैं। मैंने उसी समय निश्चय कर लिया कि यदि जीता रहूँगा तो इन गरीबों की सेवा करने की चेष्टा अवश्य करूँगा। मैं जेल से छूटा। मुझे आदेश दिया गया कि मैं नेपाल से बाहर नहीं जा सकता। मैंने इसे भगवान् का आशीर्वाद समझा। मैं यहाँ आया और मैंने निश्चय किया कि उनके बीच में ही बैठकर काम करूँगा।

जिस समय मैं यहाँ आया, अवस्था भयंकर थी। पारस्परिक

मनोमालिन्य-स्वरूप अविश्वास एवं गाली-गलौज करना, गन्दगी का होना, वस्त्रों का अभाव, फाँकेकशी आदि दरिद्रता के जितने भी चिह्न हो सकते हैं, सब यहाँ विद्यमान् थे। अस्तु; मैं काम में लग गया। चर्खा के दर्शन यहाँ के लोग कभी किए भी न थे। अतः मैंने बड़ों को छोड़कर, चरखा कात सकनेवाले बालकों से कार्य आरम्भ किया। श्री ब्रह्मशमशेर राणा ने मेरा काम बहुत पसन्द किया और मैं उन्हीं के बनवाए हुए छोटे से आश्रम में आकर टिक गया। मेरा कोई घर यहाँ नहीं है। मैं यहाँ पड़ा हूँ और इन गरीबों की सेवा कुछ कर सका, भगवान् के आशीर्वाद से इन्हें मानवता की झलक दिखा सका, इनके अंगों को वस्त्रों से ढँक सका और नेपाली नागरिकों को यह ज्ञान करा सका कि वे उस नेपाल के नागरिक हैं, जिसे दुनियाँ में बहुत कुछ करना है, आदि। रह गई बात राजनीतिक उन्नति की, सो मैं किसी प्रकार का सम्मान नहीं चाहता। मुझे कोई पद नहीं चाहिए। मैं तो इन गरीबों में बैठकर नेपाल के उन्नत भवन की नींव की निर्जीव ईंटमात्र बना रह जाना चाहता हूँ।

वीर सिपाही फतेहबहादुरजी की बातें मेरे उत्तर की अपेक्षित न थीं। फिर भी मैंने कहा—'यदि नेपाल आप-जैसे कुछ अन्य देश-सेवकों को और उत्पन्न कर दे तो वह दिन दूर नहीं जब कि नेपाल में कोई नंगा न रह जायगा।' इसपर फतेहबहादुरजी मुसकुराकर बोले—'यह भारतवर्ष नहीं है।' मैंने कहा—'नेपाल वह देश है जिसपर कोई रंग चढ़ा नहीं है। अतः जो रंग आप चढ़ाइएगा, वही चढ़ेगा।' इसपर वे कुछ न बोले और गम्भीर हो गए। आतुरता में हम आगे बढ़ आए। हमारे साथी

पीछे छूट गए। विलम्ब हो रहा था। केवल ४५ मिनट बाकी थे। फतेहबहादुरजी व्यग्र दिखाई दिए। एक वयस्क विद्यार्थी मेरे समीप ही था। मैंने बिना सभ्यता का विचार किए उससे कहा—मुझे त्रिपुरेश्वर तक पहुँचा दीजिए। वह तैयार हो गया। पैदल नदी पारकर जब मैं श्री ३ सरकार पद्मशमशेर जंगबहादुर राणा के यहाँ पहुँचा तो मैंने देखा कि राणाओं की भीड़ लगी थी।। उनके चमक-दमक का कहना ही क्या था।

ललितपत्तन की सभा

पत्तन की ईंटों, पत्थरों और लकड़ियों को हम देख गए थे और देख गए थे उसकी उजड़ी हुई विभूति, दरबार-प्रांगण की श्रीहत शोभा और गिरते हुए पत्तन की एक झलक। लेकिन इस बार हमने देखा उसी दरबार-प्रांगण में एवं वहाँ की ईंटों में, पत्थरों में, सुन्दर प्रासादों में, वेश्मों में और साथ ही उन श्रीहत मन्दिरों के आरोहणों, मण्डपों एवं अलिन्दों में मुसकुराता हुआ ललितपत्तन।

ललितपत्तन वस्तुतः ललित था। गुप्तसाम्राज्य-वर्णित किसी समृद्ध पत्तन की मनोरम दृश्यावली को लिए खड़ा था। किन्तु इस समय वहाँ नेपाल-राज्य की निरंकुश नीति, नेपाल-राज्य की स्वार्थपरक संकुचित मनोवृत्ति तथा जाग्रत जनता के जागर्तित्रास की आशंका ने सभा, समिति, सार्वजनिक स्वागतायोजन, लोक-सम्मेलनादि कार्यों को वर्जित कर रखा था। षड्यन्त्र की आशंका ने निरवधि काल के लिए वहाँ प्रतिदिन ११ बजे रात्रि से कर्फ्यू
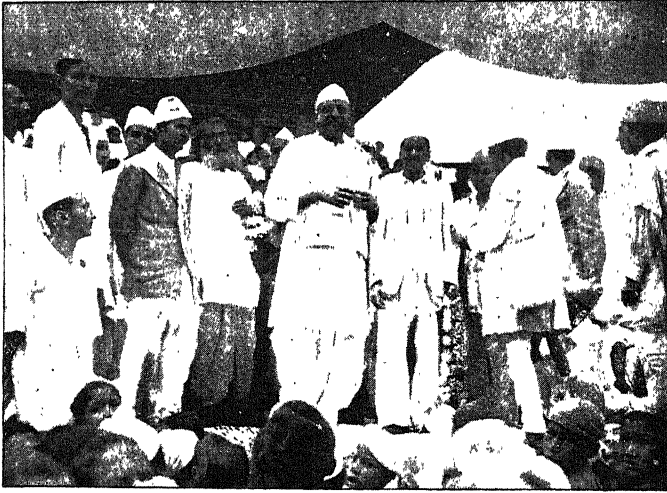
ललित पत्तन की सभा

श्री तुलसी मेहर द्वारा श्रीप्रकाश जी को मानपत्र

ललित पत्तन की सभा
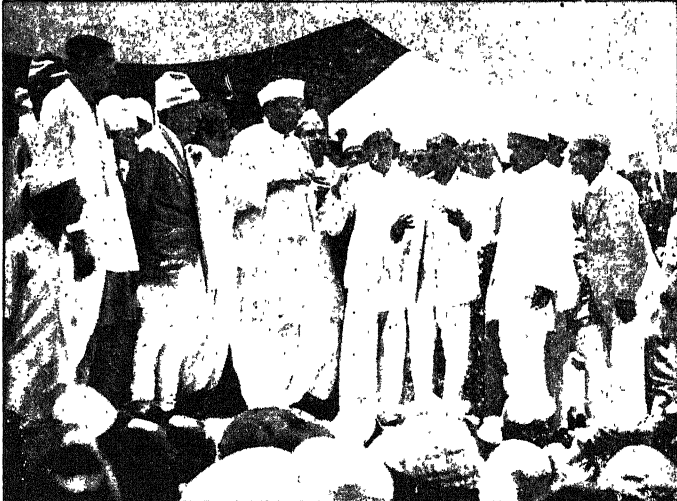
लगा रखा था और समस्त सामूहिक कार्यों पर राज्य की ओर से प्रतिरोध लगा हुआ था। इन विषम परिस्थितियों के होते हुए भी ललितपुर के प्रजाजन दरबार-प्रांगण में निर्भीकतापूर्वक एकत्र थे।

इस प्राचीन ललितपत्तन के प्रासादों के सिंहपौरों पर, प्रकोष्ठों में, वातायनों में लावण्यपूर्ण ललनाएँ बैठी हुई थीं। वहाँ की अट्टालिकाओं पर मांगलिक सौभाग्य-चिह्नों से युक्त भव्य परिधानों से वेष्टित सुन्दरियाँ प्रफुल्लित कुमुदिनी की भाँति उस अपार जनसमूह-रूप जलराशि के बीच सुशोभित थीं। उनके अभिरम्य आननों पर उमंग की हल्की लाली और हृदयों में अभिनन्दन की मञ्जु भावना थी। उनके उल्लास से श्रद्धा और भावुकता से स्नेह प्रकट हो रहा था। वे कुछ सुनने को आई थीं। राजाज्ञा की भी उपेक्षाकर वे आई थीं, किसी सन्देश के पाने की आकांक्षा में।

पश्चिमी कुरीतियों तथा साधनों से दूर, पर्दा-प्रथा से रहित एवं अर्वाचीन वेष-भूषा से पृथक् विशुद्ध हिन्दू-जगत् की प्रतीक-स्वरूप उन ललनाओं को देखकर आँखें भर आईं। उस समय राजस्थान की वीरांगनाओं की गौरव-गाथाएँ स्मरण हो आईं, महाभारत-काल की हिन्दू-संस्कृति का ध्यान हो आया और रामायण-काल के हिन्दू-आदर्श का जीता-जागता रूप सामने आ गया। इसमें सन्देह नहीं कि गुप्तकालीन संस्कृत-कवियों द्वारा वर्णित हिन्दू-नारी की जिस मर्यादा और स्वरूप को हम केवल कवियों की कल्पना समझे बैठे थे और उनके प्रत्यक्षीकरण की कभी स्वप्न में भी आशा न थी, उसे आज प्रप्यक्ष देखकर मन उमंगित हो उठा।

ऊपर वर्णित प्रांगण के मध्य, नारायण के मन्दिर के सम्मुख, सभामंच स्थित था। एक ओर कृष्णमन्दिर था, दूसरी ओर शिव-मंदिर। इन मंदिरों की बारह फीट ऊँची कुरसी थी। उनके आरोहणों पर उत्सुक बालिकाएँ पुष्पांजलि बाँधे खड़ी थीं। ललनाओं के करकमलों में मालिकाएँ सुशोभित थीं। साथ ही; उन सुन्दरियों के मुखों पर कोमल मुसकान और उनके हृदयों में स्वागत की भावना भरी थी।

वहाँ का वायुमण्डल स्निग्ध था, वातावरण शान्त था और मन्दिरों की छाया पवित्र थी। वहाँ एकत्र विशाल जन-समूह की भावनाओं के बीच पवित्रता की पवित्र छाया अनुप्राणित थी। सभा-स्थल लोगों से खचाखच भरा पड़ा था। लोगों के माथों पर नेपाली टोपी विद्यमान् थी और चौबन्दी की मिरजई पहने मस्तक पर कस्तूरी, केसर एवं चंदन का मिश्रित बड़ा गोल टीका लगाए हुए थे। वे जिस प्रतीक्षा में घंटों से नीरव खड़े थे, उससे उनके अभिनन्दन की जीवित भावना प्रकट होती थी और परिस्थिति की गम्भीरता के कारण उनके मुखों पर उदासी छाई थी। हम लोगों को देखते ही उनके बद्धकर ललाटों से लग गए, अनायास मस्तक झुक पड़े; किन्तु किसी प्रकार की जयध्वनि नहीं हुई। घोष सुनाई नहीं दिया। शान्ति पहले ही-जैसी सर्वत्र विराजती रही। किसी प्रकार का उनमें उतावलापन दिखाई न दिया। इतने विशाल समारोह में भी अव्यवस्था तथा विशृंखलता का कहीं पता न चला। सभी जैसे-के-तैसे मुग्ध खड़े रहे।

वहाँ के राणाओं द्वारा आतंकित जनता बहुत दिनों बाद आज बाहर निकली थी। उनके मुखों पर आज वीरोल्लास की

मूर्तिवती शान्त भावना विद्यमान् थी। उनमें दृढ़ता लक्षित होती थी। नैतिक विकास की आकांक्षा का आभास मिलता था। स्नेह का प्रदर्शन पाया जाता था। यह उनकी प्रसुप्त भावनाओं का जागरण काल था। अतः स्वभावतः सबके मुखों पर मंद; किन्तु मर्मिक मुसकान थी।

यह नारायणमन्दिर, यह कृष्णमन्दिर और यह शिव-मन्दिर—वे ही मन्दिर थे, अतीत काल में जहाँ के अधिवासियों ने उसी प्रांगण में अनेक साम्राज्यों के उत्थान-पतन को देखे थे और अनेक अत्याचारियों की कृपाणों को टूक-टूक होते निरखा था। जिन मन्दिरों के निर्जीव पत्थरों पर रामायण एवं महाभारत का चित्रमय इतिहास अंकित कर हिन्दुत्व के आदर्शों को सदैव सजीव रखने का सफल प्रयत्न किसी समय किया गया था, जो आज भी सुरक्षित है। जहाँ के अधिवासियों ने किसी समय भगवान् बुद्ध का सन्देश सुना था, जहाँ की मोहकता ने सम्राट् अशोक की पुत्री चारुमती को समृद्ध पाटलिपुत्र का मोह त्यागकर वहीं रह जाने के लिए विवश किया था तथा प्रसिद्ध संत नरसीभक्त को भी मोहित करने में जो भूमि किसी समय समर्थ हुई थी, कहना न होगा कि आजदिन वहाँ के अधिवासी यदि इस प्रकार निर्भीक एवं शान्त न दिखाई देते नो कहाँ के देते ?

नारायणमन्दिर के सम्मुख शुभ्र खद्दर का वितान तना हुआ था। मन्दिर-सोपानों पर कुमारिकाएँ करबद्ध स्थित थीं। वाम पार्श्व में दूसरे मन्दिर के आरोहणों पर सैकड़ों चर्खे चल रहे थे। दक्षिण पार्श्व में जन-समुदाय बैठा था। कहीं शब्द का नाम नहीं था। चर्खों से भी ध्वनि नहीं हो रही थी। सब को जैसे अनुशा-

सन-पालन का स्वतः ज्ञान था। कोई किसी को आदेश नहीं दे रहा था। सबको अपने कर्तव्य मालूम थे। किसी यन्त्र के समान सब कार्य आप-से-आप समयानुसार सम्पन्न होते जाते थे।

हम लोगों की मोटर यहाँ पहुँचते ही रुक पड़ी। करतल-ध्वनि न हुई। किसी प्रकार का उद्घोष भी न हुआ। उत्थित नमन-शील जनता ने सरलतापूर्वक मार्ग दे दिया। अलिन्दों, वातायनों एवं अटारियों में स्थित अंगनाओं की स्वर्णकर्णिकाओं, कर्णवेष्टनों, कंकणों, वलयों, केयूरों, नासिकाभरणों, उरसूत्रिकाओं, उर्मिकाओं एवं कण्ठाभरणों में दामिनी मुसकुरा उठी। पुष्पमालिकाओं से वेष्टित कुंतलधारिणी रमणियों के मुख पूर्ण शशि सदृश्य निकल आए। उनके मुखों पर स्वागत की कौतूहलपूर्ण उमंग थी। उनके स्नेह-भरे मन्द मुसकान में मैंने हिन्दूजाति, हिन्दूधर्म, हिन्दू-संस्कृति एवं आर्य-सभ्यता को एकसूत्र में बाँध रखने की क्षीण रेखा देखी। अनजान देश में, अनजान भाषा-भाषियों के बीच, अगम्य स्थान में, दुर्भेद्य उपत्यका में हमें केवल एक कोमल मृणाल-तन्तु ने बाँध रखा था, वह था हिन्दुत्व। कहना न होगा कि हिन्दुत्व की इसी भावना ने हम लोगों को शताब्दियों से चली आती हुई भिन्नता में भी अब तक भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर स्थित एकता के सूत्र में बाँध रखा है और हम लोग अपने पवित्र प्रणों को लिए हुए आज भी जीवित दिखाई दे रहे हैं।

उस एकता का प्राचीन शिखर आज भग्नप्राय होता दिखाई दे रहा था। हिन्दू-सभ्यता के इस प्राचीन किले के तोरण में घुन लग रहे थे। आर्य-संस्कृति की परम्परा विश्रृंखलित करने की

ललित पत्तन की सभा
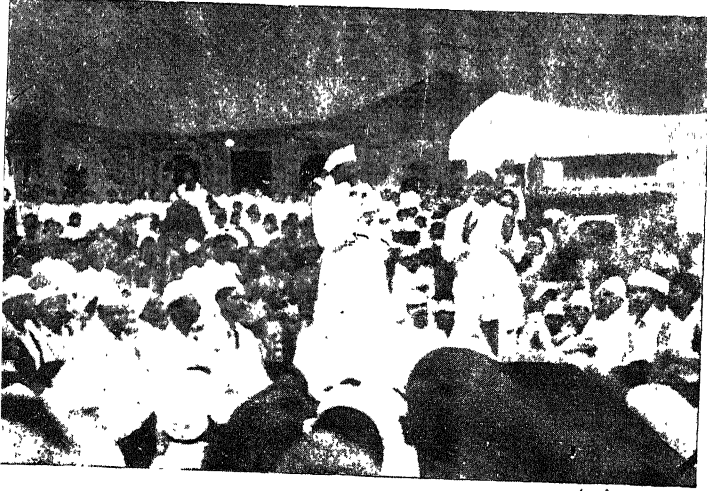
श्री श्रीप्रकाश जी भाषण दे रहे हैं जिसका अनुवाद
श्री तुलसी मेहर कर रहे हैं।

ललित पत्तन की सभा

चेष्टा की जा रही थी। वहाँ के अधिवासी एक जाति के थे। उनका ही समूचा वह देश था। उनकी एक संस्कृति थी। एक ही सभ्यता थी। एक ही धर्म था। सुतरां कहा जा सकता है कि एक ही हिन्दूगौरव-रूप वृक्ष की शाखाएँ वहाँ फैली थीं, जिनकी शीतल छाया में सबको शान्ति मिलती थी। किन्तु समय की गति के वैषम्य ने विदेशी संस्कृति, सभ्यता एवं विचार-धारा का उनपर प्रत्यक्ष प्रभाव डालकर उन्हें एवं विशेषतः उस एकता की अविच्छिन्न चली आती हुई परम्परा में परिवर्तन करने के लिए आज लोगों को बाध्य कर रखा है। यही कारण था कि ललित-पुर के स्वाभाविक उल्लास में कुछ उदासी लिपटी हुई मालूम हो रही थी। उस उदासी पर वे अपने स्नेह के प्रदर्शन से पर्दा डालना चाहते थे। वे हमसे कुछ पूछना चाहते थे; किन्तु हिचक रहे थे, जिससे उनकी बातें जिह्वा पर आकर रुक जाती थीं। वे अपनी शिष्टता एवं सौजन्य का कभी-कभी गहरा आवरण देकर अपनी प्रच्छन्न भावनाओं को छिपा हुआ रखने का प्रयत्न करते थे; किन्तु ललितपुर की जनता की वास्तविक अवस्था हम से छिपी न थी। उनके हृदयों पर भारत के विभाजन की, हमसे कहीं अधिक चोट लगी थी। क्योंकि वे शुद्ध हिन्दू थे। उनके विचारों तक में संकरता न आई थी। इसके विपरीत हम अपनी सुधार एवं प्रगतिशील भावनाओं के कारण हिन्दुत्व की बहुत-सी बातों को धीरे-धीरे खो चुके हैं। लोगों की दृष्टि में सहिष्णु एवं उदार बनने की कामना के चक्कर में पड़कर हिन्दू-धर्म की सीमा का उल्लंघन भी कर चुके हैं। किन्तु वे हिन्दू-संस्कृति एवं हिन्दू-धर्म के लिए अपनी जिम्मेदारी को समझते थे। उनकी भावना

यह प्रकट कर रही थी, जैसे भगवान् के सम्मुख हिन्दू-धर्म के लिए वे जिम्मेदार थे। उनसे यह छिपा न था कि भारतवर्ष में मुसलमानों की बढ़ी संख्या एवं विशाल हिन्दू-धर्म से फूटकर निकले हुए विभिन्न सम्प्रदायों को अपनी स्वतन्त्र सत्ता समझना और उसके फलस्वरूप हिन्दू-धर्म से अलग होकर सम्प्रदाय-विशेष को महत्व देते हुए बराबरी के स्थान की माँग करना भारतीय एकता की परम्परा में परिवर्तन करने के लिए बाध्य करना है। इस प्रकार वे भलीभाँति समझ रहे थे कि भारतवर्ष में राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन के बीच एक नया अध्याय खुलने जा रहा है।

ललितपुर का जन-समुदाय एक भावना, एक संस्कृति, एक सभ्यता, एक जागर्ति, एक विचार-धारा के आधार पर स्थित था। उनके विचारों एवं भावनाओं में विशृंखला न थी; बल्कि वे एकरूप थे। एकरूपता सदा हृदयग्राही होती है। अतएव वे देखने में प्रियदर्शन प्रतीत होते थे। उनकी सरलता तथा भोलेपन में आकर्षण था। उनमें मानवता का सच्चा रूप विराज रहा था, जिसने सभा-स्थल को अत्यन्त पवित्र एवं प्रिय बना रखा था। वहाँ उपस्थित नर-नारियों की मुद्रा, भाव एवं उल्लास द्वारा प्रकट हो रहा था हमारा स्वागत, प्रकट हो रही थी उनकी चेतना और प्रकट थी उनकी दृढ़ता। हम उनके दुःख को अपना दुःख और उनकी समस्या को अपनी समस्या समझकर वहाँ गए थे, इस लिए उनकी मूक-मुद्रा में कृतज्ञता भरी थी। वे बहुत कुछ कहना चाहते थे और केवल अपनी आँखें बिछाकर, हृदय खोलकर, मूक बनकर वे सब कुछ कह गए।

विशाल जन-समुदाय से मार्ग अवरुद्ध होने के कारण निद्धी-

रित सभा-स्थान पर हम न पहुँचकर आगे बढ़ गए, क्योंकि ध्वनिप्रसारकयंत्र (लाउडस्पीकर) का प्रबन्ध वहाँ नहीं था। संकेत करने के साथ ही प्रशस्त राजपथ पर लोग बैठ गए। हम लोगों की दृष्टि जिधर घूमती थी, उधर की उपस्थित जनता के बद्धकरों पर उनके मस्तक नत हो जाते थे। नन्हें-नन्हें बालक-बालिकाएँ लज्जायुक्त हो बाल-सुलभ मुसकान के साथ हाथ जोड़ने लगती थीं।

हम लोगों के लिए कोई स्वागत-गान नहीं गाया गया। परिचयरूप में भी कुछ नहीं कहा गया। व्यर्थ समय नष्ट न कर पुष्पमालाओं से हमारा वक्षस्थल भर दिया गया। उनमें से दो व्यक्तियों ने सबसे मालाएँ लेकर हमें पहना दीं। श्री तुलसी-मेहर ने एक मिनट में सबका संक्षेप में परिचय दिया। अनंतर श्री श्रीप्रकाशजी ने बोलना आरम्भ किया।

रात्रि के परिश्रम के कारण उनका गला फँस गया था। वे अधिक बोल न सके। पांच मिनट तक कुछ कहा। अनन्तर श्री तुलसीमेहर ने उनके उस संक्षिप्त भाषण का नेपाली भाषा में अनुवाद कर सुनाया। उनका स्वर इतना मन्द था कि १०-१५ गज से अधिक दूर न जा सकता था। किन्तु वहाँ किसी प्रकार का कोलाहल न था। जो जहाँ स्थित था, वहीं स्थिर रहा, शांत रहा। नारियाँ उल्लास एवं कौतूहलमय मुद्रा से झरोखों, अलिंदों, वातायनों एवं मन्दिरों के सोपानों पर मुग्ध बैठी हुई हम लोगों की ओर देख रही थीं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों मानव, मानव की बात समझ रहा हो।

चारों ओर मन्दिरों से वेष्टित स्थल पर, भगवान् के सम्मुख,

अनन्त निर्मलाकाश के नीचे, शीतल लोल मरुत द्वारा प्रसारित देवार्पित सुगन्धित द्रव्य के धूम्र से आच्छादित पवित्र एवं शुद्ध भूमि में बैठा हुआ एक मानव दूसरे मानव के विशुद्ध विचारों को भला कैसे नहीं समझ सकता था ? जब कि अबोल पशु-पक्षी तक हमसे दूर रहकर हमारी बातें समझना चाहते हैं तो हमारे बीच में बसकर ललितपत्तन की जनता, जिसने कितनी ही ऐतिहासिक गाथाओं को जन्म दिया है एवं शताब्दियों की उथल-पुथल को देखा है, जिसकी मूक सूचना आज भी वहाँ के साक्षी-स्वरूप खड़ी ईंट, पत्थर और काष्ठ दे रहे हैं, भला हमारी बातों को कैसे नहीं समझ सकती थी ? कहना न होगा कि चाहे सब सब कुछ भले ही क्यों न नष्ट हो जाय; किन्तु मानव-भावना कभी नहीं नष्ट हो सकती है। अस्तु; श्री श्रीप्रकाशजी बोलकर बैठ गए। मेरे भी मन में आया कि कुछ बोलूँ। किन्तु हृदय उछल-कूदकर रह गया; क्योंकि हम यहाँ विशेष राजकीय कार्य से आए थे।

सभा समाप्त हुई। लोगों के उल्लासमय मुख पर विरह की वेदना छा गई। स्त्रियों के शिरोपुष्प मानों कुम्हला गए। उनके शशिमुखों पर मानों विछोह के बादल की छाया छा गई। आगे की ओर उनके झुके हुए मुखमण्डल किंचित् पीछे की ओर सहसा झुक गए। हम लोग उठे। फिर भी पूर्ण शान्ति विराज रही थी। हम लोग देवतुलेजा के भव्य मन्दिर में श्री तुलसीमेहर के चर्खा-कर्घा-कार्यालय एवं उनके रचनात्मक कार्यशैली को देखने के लिए चले।

एक घण्टा के पश्चात् वहाँ आकर हम लोगों ने पुनः देखा

दरबार प्रांगण
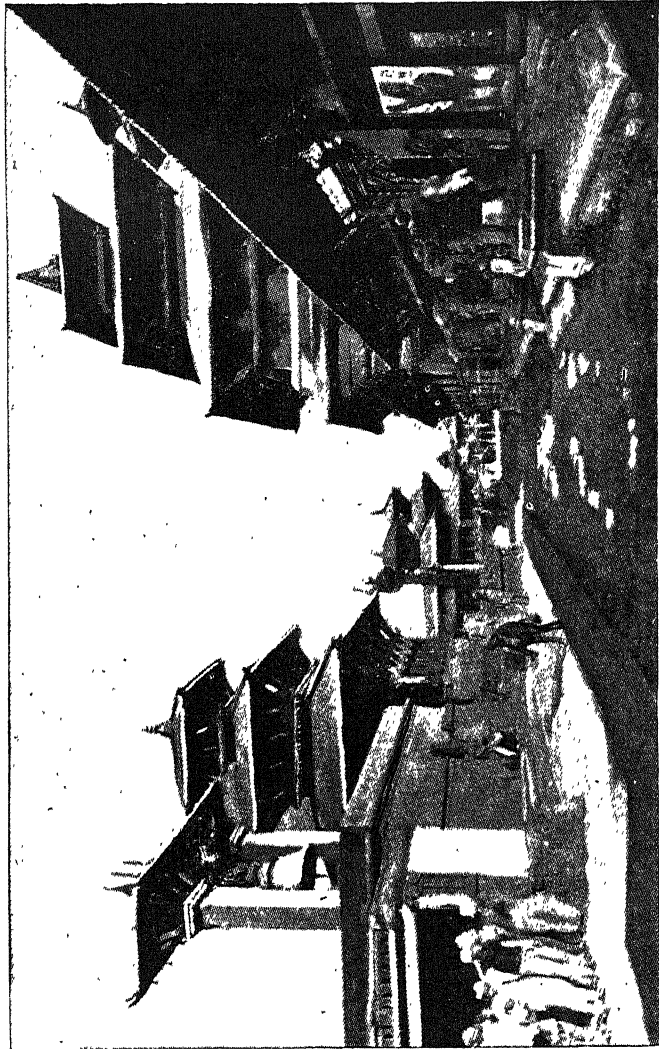
ललित पत्तन

कि जनता अडिग बैठी थी मानों वहाँ से न हटने का उन्होंने प्रण कर लिया हो। उनके आकार-प्रकार से ऐसा विदित हो रहा था, जैसे वे पीछे पैर न रखकर जाग्रत जनप्रकाश में आगे बढ़ने के लिए उत्सुक हैं। बलिदान के लिए प्रस्तुत उन वीर नेपाली देश-सेवकों पर प्रकृति प्रसन्न होकर मुसकुरा रही थी। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वे वीर नागरिक जिस किसी समय भी अपनी स्वाधीनता की ध्वजा को उत्तोलित करते हुए आगे बढ़ चलेंगे।

बालिकाएँ हाथ जोड़े खड़ी थीं। स्त्री-पुरुष हाथ जोड़-जोड़-कर नमस्कार कर रहे थे। हम लोगों की बिदाई में कोई जय-घोष न हुआ। किसी प्रकार का कोलाहल न मचा। लोग दौड़ते-धूपते दिखाई न दिए, जिससे किसी प्रकार की विश्रृंखलता वहाँ उत्पन्न न हुई। जो जहाँ था, वहीं रह गया। हम लोगों को बैठा कर मोटर काठमाण्डू की ओर चली। पीछे अनंत आँखें मोटर का गमन देख रही थीं। उनकी आँखें भरी थीं। हमारा हृदय भरा था। हम मार्ग में एक दूसरे से बोल न सके। केवल मोटर के पहियों की ध्वनि, इंजन की साँय-साँय आवाज, बूँदों की हलकी फुहार एवं मरुत के मन्द स्पन्दन का अनुभव करते-करते हमारी पलकें आप-से-आप मिल गईं। आँखें जब खुलीं तो हमने देखा अपने आतिथ्याश्रयगृह का द्वार।

ग्राम्य जीवन

युवकों का अकाल

नेपाल में तीन दिनों तक मैं डाड़ी से चला। काठमाण्डू के समीपस्थ स्थानों एवं उपत्यका की सीमा पर बसे हुए गाँवों तक में मैं पहुँचा; किन्तु सभी स्थानों में युवक नहीं दिखाई दिए। अम-लेखगंज से थानकोट तक-जैसे लम्बे मार्ग में भी अनेक गाँव पड़े, अनेक बाजार पड़े; परन्तु युवकों का दर्शन नहीं हुआ। केवल दो तरह के लोग मिले—१० वर्ष तक के लड़के और ४५ वर्ष से ऊपर के प्रौढ़ मनुष्य। हरिसिद्धि में भी मैंने यही बात देखी। करघा चलानेवाले, सब काम करनेवाले बालक ही थे। हाँ, ललितपत्तन, काठमाण्डू और भक्तगाँग में अवश्य कुछ युवकों के दर्शन हुए, जो दुकानदारों अथवा कुलीन वर्ग के लड़के या राज्यकर्मचारी थे। इसका कारण यह है कि नेवार लोग फौज में भर्ती नहीं किए जाते। फौज में गुरखे ही भर्ती किए जाते हैं। नेवार अपनी निम्न-जाति बताकर ही भर्ती होता है; क्योंकि ब्राह्मण या श्रेष्ठ जाति के नेवारों के लिए फौज का द्वार बन्द है और शहरों में नेवार लोगों की ही आबादी है। अत-एव कुछ युवक चलते-फिरते दिखाई पड़ जाते हैं; किन्तु यह अपवादमात्र है। अस्तु, विवेचना करने पर यह निष्कर्ष निक-लता है कि नेपाल में युवक रह नहीं सकते। ग्रामीण जीवन का परिश्रममय कार्य करते हुए रूखे-सूखे अन्न पर जीवन-निर्वाह करना उन्हें पसन्द नहीं आ सकता। अतः वहाँ युवकों के न

होने का कारण स्पष्ट है कि सेना में नेपाली युवकों की माँग बहुत बढ़ गई है और यहाँ तक बढ़ गई है कि नेपाल इस समय युवकों को प्रस्तुत (सप्लाई) करने में पूर्ण असमर्थ हो रहा है।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक कुछ बोध होते ही वहाँ के लड़कों का मन ग्रामीण जीवन से ऊब जाता है। उन्हें अपने फटे वस्त्र, नंगे पैर और अधिकारियों की फटकार अच्छी नहीं लगती। वे पढ़े-लिखे होते ही नहीं, अतः उन्हें फौज अपनी ओर आकर्षण करती है। क्योंकि पुलिस तथा राज्य की नौकरियों में कम-से-कम पहनने को बिना फटा साफ कपड़ा, जूता और रहने को पक्का घर मिल जाता है।

अंग्रेज लोग अपनी सेना के लिए रँगरूट यहाँ से अधिक भर्ती करना चाहते हैं। नेपाल-सरकार ने उन्हें रँगरूट भर्ती करने की आज्ञा दे दी है। उससे जो बचत होती है, सैनिक के योग्य युवक नेपाल-सरकार की चालीस हजार फौज, पुलिस, पहरेदार तथा अन्य कार्यों में खप जाते हैं। इससे भी जो बच जाते हैं, वे अपनी घरवाली को साथ लेकर हिन्दुस्थान में उतर आते हैं और पहरेदार, चौकीदार के रूप में चारों ओर दिखाई देते हैं। हिन्दू-मुसलिम की विभेदक वर्तमान समस्या जब से भारत में उठी है तब से पठान पहरेदारों का स्थान भी नेपालियों ने ले लिया है। यहाँ पर इस कार्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि नेपाली रखे। इसका मुख्य कारण यह है कि नेपाली अपने घर से हजारों मील दूर होने के कारण छुट्टी नहीं लेता और चौबीस घंटा मौजूद रहता है। उसके यहाँ मेहमानों

की भीड़ नहीं लगती। उसे अपने मालिक से अपने किसी रिश्ते-दार की शिफारस करने का अवसर नहीं प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त नेपाली ईमानदार, शिष्ट और अपनी ड्यूटी का पक्का एवं मजबूत आदमी होता है। किन्तु जब नेपालियों की प्रौढ़ावस्था आती है, वे कुछ संचय कर लेते हैं। उनकी श्रमशक्ति ह्रास होने लगती है और फौज से पेंशन तथा सरकारी अन्य स्थानों से अवकाश-ग्रहण कर वे अपने गाँवों की ओर चल देते हैं। इस प्रकार नेपाल के गाँवों में ४५ या ५० वर्ष के ऊपर और १५ वर्ष से नीचे के प्राणी दिखाई देते हैं। इस कारण युवकों के नौकरियों में फँसे रहने से ही नेपाल के खेतों में स्त्रियों और वृद्धों को सदा कार्य करते हुए देखा जाता है।

भूमि

नेपाल की भूमि एक तरह की नहीं है। कहीं काली है, कहीं लाल है और कहीं भूरी है। इसलिए फसलें भी सर्वत्र एक-सी नहीं होती हैं। वहाँ का मुख्य खाद्य चावल, जोन्हरी (ज्वार) और उर्द की दाल है। फलों का नेपाल में अभाव है। नगरों में तरकारियाँ मिल जाती हैं। ईख घाटी में नहीं होती, कहीं-कहीं पहाड़ पर हो जाती है। तराई तो ईख का क्षेत्र ही है।

यहाँ खेती दो प्रकार की जमीनों में होती है—(१) घाटी के समतल मैदान में और (२) पहाड़ी पर सीढ़ीनुमा भूमि में। यहाँ काश्त भी दो तरह की होती है, जिसे (१) विरता और (२) नैकर कहते हैं। तराई में एक प्रकार की जमीन्दारी प्रथा चलती है, जिसमें जमीन्दार मालगुजारी का कुछ प्रतिशत

पारिश्रमिक स्वरूप लेकर बाकी खजाना में जमा करता है। इसलिए यहाँ की जमीन्दारी सुरक्षित नहीं समझी जाती।

विरता नामक भूमि किसानों की निजी भूमि होती है। उस पर वे वंशपरम्परा एवं उत्तराधिकार द्वारा अधिकारारूढ़ (काविज) रहते हैं। पहाड़ों में तेरह रोपनी का एक बीघा होता है और जमीनें चार प्रकार की होती हैं, जिनकी २४ से ४८ पैसा तक प्रति रोपनी के हिसाब से सरकार को मालगुजारी दी जाती है।

नैकर वह भूमि होती है, जिसपर राज्य का अधिकार होता है। भूमि राज्य की होती है और जोतता-बोता किसान है। सरकार को अधिकार है कि चाहे जब किसान से भूमि निकाल ले। उपज के अधिया के रूप में जमीन की लगान दी जाती है; अर्थात् जमीन राज्य की और श्रम कृषक का होता है। कृषक केवल पारिश्रमिक पाता है। तराई की भूमि का लगान लगभग सात रुपया प्रति बीघा पड़ता है।

नेपाल-राज्य का समस्त वन सुरक्षित है। किसी को जंगल में लकड़ी काटने का अधिकार नहीं है। वनों की अधिकता के कारण काठमाण्डू चारों ओर से हरित पर्वतमालाओं से घिरा है; किन्तु लकड़ी यहाँ बहुत मँहगी; अर्थात् लगभग तीन रुपये मन बिकती है।

सिंचाई

नेपाल की भूमि नम है। यहाँ के सीढ़ीनुमा खेतों में सोते के पानी को घेरकर सिंचाई करते हैं। घाटी की समतल भूमि को नदी के पानी से अथवा कहीं से निकलते सोते के पानी से

सींचते हैं। यहाँ कुँआँ और तालाब नहीं हैं। यदि वर्षा का जल न मिले तो लगभग तृतीयांश खेत बिना सिंचाव के सूख जायँगे। अतएव खेती का तृतीय भाग आकाशवृत्ति पर ही निर्भर रहता है। गाँवों में यत्र-तत्र कहीं कूप दिखाई दे जाते हैं।

खाद

ग्रामों में लोग दो प्रकार की खादों का व्यवहार करते हैं। (१) पहाड़ियों पर सीढ़ीदार खेतों में लोग जंगल की पत्तियाँ, गोबर आदि डालते हैं। (२) उपत्यका अर्थात् काठमाण्डू की विशाल घाटी में खाद जमीन खोदकर निकाली जाती है। जमीन के लगभग छः फीट नीचे से ढोंका बँधी मिट्टी निकालते हैं और खेतों के बीच में एक जगह या कई जगह फैलाकर ढोंकें रख दिए जाते हैं। दूर से देखने पर मालूम होता है कि खेत में पत्थर के टुकड़े रखे हैं। खेत की भूमि प्रायः काली या भूरी होती है और ढोंके गहरे आसमानी रंग के होते हैं। पानी बरसने पर ढोंके गलकर स्वतः खेत में फैल जाते हैं। वे ही खाद का काम देते हैं। कहा जाता है कि काठमाण्डू की घाटी पहले जल से भरी थी। मंजुश्री ने यहाँ का जल कोई मार्ग बनाकर या अपने चमत्कार से निकाल दिया अथवा वह सूख गया। इसलिए नीचे की मिट्टी सड़ी हुई होने के कारण खाद के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। भारतवर्ष में भी तालाब या ताल की सड़ी मिट्टी खाद के लिए खेतों में डालते हैं। नेपाल में इस खाद को 'मल' भी कहते हैं।

शहर के समीप के खेतों में गलीज और कूड़े का उपयोग

तो किया ही जाता है; किन्तु लोग अन्य प्रकार से भी खाद बनाते हैं। काठमाण्डू के कुछ भागों को छोड़कर पानी बहने के नल कहीं नहीं हैं। गन्दा पानी कच्ची नालियों से बहकर जाता है। कृषक पेड़ों की कौंची; अर्थात् पत्तियों से युक्त डालों को अथवा लम्बी-मोटी घासों को काटकर नालियों में रख देते हैं। जल के संसर्ग से सड़ जाने पर जब इनसे बदबू निकलने लगती है तो इन्हें उठाकर खेतों में डाल देते हैं। इस प्रकार अच्छी खाद तैयार हो जाती है।

जोताई

काठमाण्डू की घाटी में कहीं हल चलता नहीं दिखाई दिया। शीशगढ़ी से आते समय सीढ़ीनुमा खेतों में हल चलते दिखाई पड़े; किन्तु बहुत ही कम। दो-एक स्थान में जो देखने को मिले भी तो उनमें भैंसे जुते थे। काठमाण्डू शहर में कुराली (नेपाली फरसा) से खेत जोतकर खेती होती है। संभव है कि खेत नम होने से वहाँ हल न चल सकता हो। यहाँ मिट्टी भी काली है। यही अवस्था गोदावरी, सुन्दरीजल, नीलकण्ठ आदि जनपदों में भी दिखाई दी।

खेतों में अधिकांश दो ही फसलें होती हैं—(१) धान (मकाई, उर्द के साथ) और (२) गेहूँ। धान, मकाई और उर्द बरसात में और गेहूँ जाड़े में बोया जाता है। यहाँ की उपज भारतवर्ष के मैदान के खेतों की अपेक्षा अधिक होती है। मकाई और धान बहुत अच्छा होता है। गेहूँ पतला होता है। यहाँ तरकारियों में लौकी, कोंहड़ा, परोरा, आलू, टमाटर

आदि प्रायः सभी तरकारियाँ खूब होती हैं। पानी की चक्कियों में आँटा पीसा जाता है और धान ढेकली से कूटा जाता है। धान कूटने के लिए कहीं-कहीं लकड़ी की ओखली और मूसल का भी प्रयोग होता है। चिउड़ा ओखली का कूटा अच्छा होता है। नेपाल के पर्वतों पर और घाटियों में धान कुलीनों का भोजन तथा मकई की रोटी या भात एवं सोयाबीन (भटमास) गरीबों का भोजन समझा जाता है। जिस दिन गरीबों के यहाँ चावल का भात बनता है, वह दिन बड़ा शुभ समझा जाता है।

पशु

श्वेत और कपिला गाय यहाँ देखने में नहीं आती। गाएँ सबसे अधिक श्याम रंग की, फिर लाल रंग की और सबसे कम चितकबरी दिखाई देती हैं। बैल भी इन्हीं रंगों के होते हैं। भैंस भारतवर्ष के समान ही यहाँ होती हैं। पशु हृष्ट-पुष्ट और दर्शनीय नहीं होते; अपितु वे बड़े ही दुर्बल दिखाई देते हैं। खेतों के लिए हल की उपयोगिता न होने के कारण मानों कृषकों के यहाँ पशु-पालन की प्रथा ही नहीं है। कोई बहुत शौकीन हुआ तो गाय या भैंस दूध खाने के लिए रख लेता है। दूध, घी, मक्खन आदि के लिए पशुओं को पालने की प्रथा शहरों, कस्बों तथा इनके समीपस्थ स्थानों में है। पहाड़ों पर लोग पशु बहुत अधिक संख्या में पालते हैं। कहीं-कहीं यह स्थिति हो जाती है कि कितनी ही गाएँ दुही तक नहीं जाती हैं। नेपाल से काफी चमड़ा बाहर भेजा जाता है। शहर में भैंस का मांस अत्यन्त बिकता है। गाँव के लोग भी खाते हैं। भैंस तथा अन्य

पशुओं की हड्डियाँ सुखाकर रख ली जाती हैं और उनका प्रयोग ईंधन के स्थान पर भोजन बनाने के लिए होता है।

भोजन

कृषक प्रायः दिन में तीन बार भोजन करते हैं। प्रातःकाल आठ बजे साग, भात और चटनी, दोपहर में रोटी-साग या चिऊड़ा-साग तथा रात्रि में भात-दाल या भात-साग खाते हैं। भोजन में घी या दही-दूध ९० प्रतिशत कृषकों को नहीं मिलता। तराई में उत्तरीय भारत का भोजन किया जाता है। शहर में लोग अपनी रुचि के अनुसार भोजन करते हैं, कोई खास नियम उसके लिए नहीं है।

श्रमिक कृषक (जापू लोग) जोन्हरी को दरकर भात बनाते हैं और उसी को पीसकर आँटा बनाया जाता है। उर्द की दाल खाने का आम रिवाज है; क्योंकि वही यहाँ की उपज है। भारत के मिथलादेश में चिउड़ा दही के साथ खाते हैं; परन्तु यहाँ दही-दूध का अभाव होने के कारण उसे साग से खाते हैं। राई का साग बहुत खाया जाता है। सोयाबीन का व्यवहार केवल गरीब करते हैं। जापान से भारत में आने के बहुत पहले से सोयाबीन नेपाल की ग्रामीण जनता का दैनिक भोजन रहा है। लहसुन यहाँ लोग अवश्य खाते हैं। लहसुन घाटियों में खूब पैदा भी होता है। प्याज भी खाया जाता है; लेकिन कम।

ब्राह्मण वस्त्र उतारकर भोजन करते हैं; परन्तु अन्य जाति के लोग वस्त्र पहनकर भोजन करते हैं। भोजन मकान की पहली मंजिल में बनाया जाता है। जल सोता, कूप या नदी का

प्रयोग करते हैं। पहाड़ों पर जल लेने के लिए विशेष कष्ट उठाना पड़ता है।

मांस-मदिरा

यहाँ मांस-भक्षण खूब होता है। देवताओं पर बलि चढ़ाकर भी मांस खाया जाता है। बलि करनेवाले चाण्डाल होते हैं। वही पशु को मारते हैं। नेवार लोगों में भैंसों का मांस विशेष प्रचलित है। नेवार-जाति में लगभग तृतीयांश बौद्ध होंगे। वे भी मांस खाते हैं। गोरखा बकरे, भेड़ी आदि का मांस खाते हैं। निम्न श्रेणी के लोग मुर्गी पालते और उसका मांस भक्षण करते हैं। धुर उत्तर में याक का; अर्थात् वह गाय जिसके पूँछ का चमर बनता है, लोग मांस खाते हैं। क्योंकि वहाँ वही भक्ष्य पदार्थ मिलता है। तिब्बती लामा लोग इस प्रकार का मांस भक्षण करते हैं। हिन्दू के लिए वह स्पृश्य जाति है। देवी के मन्दिरों में बलि का पुजारी चाण्डाल होता है।

नेपाल में मदिरा का प्रचार खूब है। गाँवों में चावल आदि से मदिरा बनती है। मदिरा ब्राह्मणों के अतिरिक्त प्राय: सभी जातियों के लोग पीते हैं। मदिरा को यहाँ 'दारू' कहते हैं। गाँवों में बनने के कारण यह बहुत सस्ती होती है। भभका से मदिरा उतारी जाती है। इसे पीना यहाँ दोष नहीं समझा जाता।

मकान

नेपाल में सर्वत्र पकी ईंटों के बने हुए दो मंजिलों से ऊपर के ही मकान मिलेंगे। छाजन में फूस, टीन, देशी खपड़ा अथवा

विलायती ढंग का खपड़ा दिया जाता है। मकान की छत लकड़ियों से या लकड़ी की धरनों पर चौड़ी ईंटें रखकर लोग पाटते हैं। मकान बाहर से लिपा-पुता खूब साफ रहता है। अधिकतर मकानों के बाहरी भाग लाल-पीले मिश्रित रंग से, धूमिल पीले रंग से, हरे रंग से या श्वेत चूने से पुते रहते हैं। मकान की छत मिट्टी से पटी रहती है। मकानों में आँगन नहीं होता, वे बँगलानुमा होते हैं। साधारण मकानों में दो कोठरियाँ नीचे और दो ऊपर रहती हैं। ऊपर की मंजिल में चारों ओर चौकोर बड़ी खिड़कियाँ लोग लगाते हैं।

मकान का ऊपरी भाग रहने, सोने और अन्न रखने के काम में लाया जाता है और नीचे की मंजिल में खेती के औजार, लकड़ी, चारा, पुआल रखे जाते हैं। कभी-कभी वर्षा में पशु भी बाँध दिए जाते हैं। नीचे की मंजिल को यहाँ की भाषा में 'छेड़ी' कहते हैं। इसी मंजिल में भोजन भी बनता है।

मकान प्राय: दो स्थानों पर बनाए जाते है। जिनके मकान ग्राम में हैं, वे ग्राम में ही रहते हैं। किन्तु जो लोग केवल खेती पर ही पूर्णतया निर्भर करते हैं, वे अपने खेतों के बीच मकान बनाते हैं। इस प्रकार उपत्यका के मकान समूह में नहीं; बल्कि पहाड़ियों तथा घाटियों में छितराए हुए मिलेंगे। पहाड़ियों के मकान दूर से कबूतरों के दरबों-जैसे मालूम होते हैं। शहर में भी लोग मकान के ऊपरी मंजिल में ही सोते हैं। लेकिन जहाँ सिमेंट या चूना से गच बनी रहती है, वहाँ पहली मंजिल भी सोने के काम में लाई जाती है। इधर नए ढंग के बँगले एक ही मंजिल के बन रहे हैं। किन्तु इन बँगलों के किवाड़ों में जितना

खर्च होता होगा उससे आधे खर्च में कृषक का एक मकान बन सकता है। मकानों की प्रथम मंजिल का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता है कि जमीन में सीड़ और नमी बहुत अधिक रहती है। जमीन हमेशा सिहलाई और तर रहती है।

नेपाली लोग अपने मकानों में सफाई खूब रखते हैं। रहने-वाली ऊपरी मंजिल को घड़ी, तसवीर, कागज की झण्डी आदि से सजाकर रखते हैं।

नेपाल के कृषकों के यहाँ चारपाई नहीं दिखाई देती। इसके विपरीत उत्तरी भारत में ग्रामीण जीवन का चारपाई अविभाज्य अंग है। किन्तु नेपाल के गाँवों में एक भी चारपाई न मिलेगी। सम्पन्न व्यक्ति ऊपरी मंजिल में चटाई, उसके ऊपर गद्दा और चाँदनी बिछाकर सोते हैं और जापू लोग केवल चटाई पर सोते हैं, जिसे 'शुकल' कहते हैं।

वर्तन

घाटी में धातु के वर्तनों का प्रयोग अब कुछ-कुछ होने लगा है। हिमालय के इस ओर अब तक मिट्टी का वर्तन प्रयोग में लाया जा रहा है। लोग मिट्टी के वर्तनों में आँटा सानते हैं। मिट्टी के ही वर्तनों में भोजन करते हैं। अनन्तर उन्हें धोकर रख देते हैं।

दाल तथा भात पकाने के लिए हँाड़ियों का प्रयोग किया जाता है। हँाड़ियाँ धोकर रख दी जाती हैं। जब तक वे फूटती नहीं तब तक उन्हें काम में लाया जाता है। साग और तरकारी भी मिट्टी के वर्तन में पकाई जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि

हिमालय में धातु न होने के कारण धातु के वर्तनों का यहाँ अभाव रहता था। अब यातायात की सुविधा होने से धातु के पात्रों का प्रचार दिन-दिन बढ़ता जा रहा है और आशा है कि निकट भविष्य में ही मिट्टी के वर्तनों का उठान होकर उनके स्थान में धातु के वर्तन काम में लाए जाने लगेंगे। इससे कम-से-कम इतना लाभ तो अवश्य होगा कि गन्दगी दूर हो जायगी, जो पहाड़ी लोगों के जीवन की मौलिक अंग हो गई है।

शहरों में धातुओं के वर्तन प्रयुक्त होते हैं और कुलीन एवं धनी लोगों के यहाँ चीनीमिट्टी तथा शीशे के वर्तन भी व्यवहृत होते हैं। भारत की अपेक्षा यहाँ धातु मँहगी बिकती है।

पहिनावा

ताङ्-इतिहासकार लिखता है कि नेपाल में केश भ्रू के बराबर रखकर ही छाँटा जाता है। कान में शृंगनिर्मित-मुद्रा लटकी हुई दिखाती है। कन्धे तक लटकती हुई मुद्राएँ सुन्दर समझी जाती हैं। नेपाली अपने हाथ को ही भोजन के समय इस्तेमाल करते हैं। चम्मच से नहीं खाते। ताम्रपात्र का रिवाज है। इस देश में व्यापारी ज्यादा हैं। कृषक कम हैं। वे दिन में बहुत बार नहाते हैं। एक ही टुकड़े का कपड़ा पहनते हैं, जो देह पर लपेटा जाता है। मकान लकड़ी का होता है और चित्रों तथा पत्थर की मूर्तियों से सजा होता है। वे दृश्य नाटकों में दक्ष होते हैं और भेरी तथा नगाड़ा बजाते हैं। नेपाली राजा मुक्ता और सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित रहता है। वह सिंहासन पर विराजमान् होता है। उसके महल के ठीक बीच में सात

मंजिला धरहरा-सा ऊँचा मकान है, जिसके हरेक मंजिल में से ताँवें का छत बाहर झुकता-सा दीखता है। इसके अन्दर मूर्तिकला का उत्कृष्ट नमूना मिलता है।*

नेपाल में ग्रामों की स्त्रियाँ नेपाली ढंग का पाजामा या धोती पहिनती हैं; किन्तु अधिकांश साड़ी ही पहिनती हैं। इनका मिरजई का पहिनावा अनिवार्य है। सभी स्त्रियाँ पूरी बाँह की चौबन्दी पहिनती हैं; किन्तु खेतों में काम करनेवाली स्त्रियों की मिरजई की बाँहें कुछ छोटी होती हैं। वस्त्र सूती रहता है। शीतकाल में कम्बल एवं रजाई का व्यवहार किया जाता है। यहाँ की स्त्रियाँ चादर नहीं ओढ़तीं और मस्तक खुला रखती हैं। महाराष्ट्री स्त्रियों के समान खुले मस्तक के जूड़े में प्राकृतिक अथवा कृत्रिम पुष्प पहिनने की इनमें साधारण प्रथा है। कहना न होगा कि स्त्रियों के सिर खोले रहने की प्रथा दो दृष्टियों से उपयोगी मालूम पड़ती है। पहला यह कि जो स्त्रियाँ सिर ढँके रहती हैं, परिणाम यह होता है कि सिर का तेल साड़ी में लग जाता है और हजारों रुपये की साड़ी तेल का धब्बा लगने से मुड़हर पड़कर नष्ट हो जाती है। दूसरे यह कि साड़ी एक ही तरफ से पहिनी जाती है, क्योंकि उलटकर पहिनने से दूसरी ओर भी धब्बा लगने का भय रहता है और इस प्रकार एक ही तरफ से पहिनते-पहिनते नितम्बभाग पर पड़नेवाला साड़ी का अंश शीघ्र फट जाता है।

अस्तु, नेपाल में पहिनीजानेवाली चौबन्दी का रंग प्रायः

---

* अनुवाद—दिल्लीरमण रेगमी।

रंगीन रहता है। छपी हुई साड़ियाँ व्यवहार में बहुत लाई जाती हैं। किनारदार साड़ियाँ पहिने बहुत कम स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। पुरुष चूड़ीदार से कुछ अधिक मोरी खुला पाजामा, चौबन्दी और सिर पर कपड़े की गोल नेपाली टोपी पहिनते हैं। पाजामा प्राय: सफेद और चौबन्दी अधिकांश रंगीन हुआ करती है।

यहाँ के शहरों में भलेमानुषों का पहिनावा पाजामा, चौबन्दी, वेस्टकोट तथा खुले गले का कोट है। राजा लोग, कुलीन पुरुष अथवा व्यापारी लोग यही पहिनावा पहिनते हैं।

देवगण

नेपाल में घाँघरा अथवा जामा पहिने हुए कंजड़ों की स्त्रियों के समान कुछ लोग मुझे दिखाई दिए। उनके कन्धों पर दुपट्टा नहीं था और वे काँवर लिए कुछ ढो रहे थे। मैंने इस प्रकार का पहिनावा पुराने समय की रामलीलाओं में देखा था, जब कि घाँघरादार जामा मूर्तियों को पहिनाया जाता था। नेपालवालों का घाँघरा मिरजई या चौबन्दी में ही मिला था और उसका घेरा किसी वेश्या के पेशवाज से अधिक ही था। पूछने पर मालूम हुआ कि ये 'देवगण' हैं। इनका काम उत्सवों में देवताओं का स्वरूप बनकर नाचना है। नेपाल का पहाड़ी नृत्य विशेष ढंग का होता है और उसका प्रदर्शन करना इनका व्यापार है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे कोई दूसरा काम नहीं करते। साधारण कृषक की भाँति सब कार्य करते हैं। किन्तु इस घाघरेदार जामा को इन्हें हर समय पहिनना पड़ता है। जिस

दिन इस पहिनावे को उतारकर रख देंगे, उस दिन से मूर्ति या स्वरूप बनकर नाच न सकेंगे।

दातुन और स्नान

दातुन की प्रथा यहाँ बिल्कुल नहीं है। कोई ग्रामीण यहाँ दातुन नहीं करता। किसी प्रकार का मंजन भी प्रयोग में नहीं लाया जाता। यदि किसी ग्रामीण से बातें कीजिए तो उसके मुख से दुर्गन्धि निकलेगी। यहाँ दातुन प्राप्य नहीं हैं, यह बात भी नहीं मानी जा सकती। यह ठीक है कि बबूल और नीम के वृक्ष यहाँ नहीं होते; परन्तु अन्य दूसरे वृक्ष हैं। उनके दातुन का प्रयोग किया जा सकता है। अब इन दिनों चरखे के सन्देश तथा दातुन के व्यवहार का प्रचार गाँवों में किया जा रहा है और कुछ लोग दातुन करने भी लगे हैं। आशा है कि कुछ वर्षों में लोगों को अभ्यास हो जायगा।

सम्भवतः ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जाति के लोग स्नान करना अपना कर्तव्य नहीं समझते। ब्राह्मणेतर जाति के लोग पंचस्नान करते हैं; अर्थात् दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख धो लेते हैं और किसी पर्व पर स्नान करते हैं। यही कारण है कि पहाड़ियों का शरीर बहुत गन्दा रहता है और देखने में दूर से बुरा लगता है; क्योंकि उनके गोरे शरीर पर जमा हुआ मैल चकत्ता-जैसा दिखाई पड़ता है। इनके स्नान न करने का आर्थिक पहलू कपड़े की कमी भी हो सकती है; किन्तु केवल वस्त्र की कमी के कारण शरीर साफ न रखा जाय, यह बात जँचती-सी नहीं मालूम पड़ती।

स्त्रियाँ अपने बालों को श्वेत मिट्टी, करैली मिट्टी या सरसों की खली से साफ करती हैं और बालों में प्रायः सरसों का तेल लगाती हैं। क्योंकि यहाँ सरसों का ही तेल होता है। तेल लकड़ी के कोल्हू से निकाला जाता है और कोल्हू स्त्री या पुरुष ही घुमाते हैं, न कि बैल या भैंसे।

आभूषण

यहाँ की ग्रामीण स्त्रियाँ पैरों में कोई आभूषण नहीं पहनती हैं। ये कान में बालियाँ या कान के ऊपरी वर्तुलाकार भाग में बटन-जैसी बालियाँ पहनती हैं, जो चिपकी रहती है और दूर से बटन-सरीखी मालूम होती है। बहुत-सी स्त्रियाँ इसे इतनी अधिक संख्या में पहनती हैं कि कान का ऊपरी भाग लटक जाता है। गले में अधिकांश ग्रामीणें शीशे अथवा चीनी मिट्टी के बने रंगीन गोल दानों की मालाएँ अथवा कुछ स्त्रियाँ चाँदी या गिलट की बनी सिकड़ी पहनती हैं, जो इतनी मोटी होती है कि उससे एक बछिया आसानी से बाँधी जा सकती है। हाथों में काँच या धातु की चूड़ियाँ दिखाई देती हैं। इनके अन्य आभूषणों का अभाव इनकी गरीबी का द्योतक है।

ब्याह

यहाँ बाल-विवाह की प्रथा नहीं है। साधारणतया कन्या का विवाह १६-१७ वर्ष की अवस्था में और पुरुष का विवाह १८-२० वर्ष की अवस्था में होता है। बहुविवाह की प्रथा यहाँ बहुत प्रचलित है; क्योंकि सेना तथा अन्य स्थानों में युवकों के

निकल जाने के कारण कन्याओं की संख्या अधिक हो जाती है, अतः पुरुषों को अधिक विवाह करने पड़ते हैं। यहाँ के खेतों में युवकों के अभाव के कारण स्त्रियाँ अधिक काम करती हैं। वे ही घर-खर्च के लिए जल भरकर लाती हैं एवं गृहस्थी का सब काम भी करती हैं। अतएव जीवन-निर्वाह के दैनिक कार्यों में स्त्रियों की प्रधानता रहती है।

बहुत से ग्रामों की स्त्रियाँ मुखिया का काम भी करती हैं। नेवार-जाति की स्त्रियों के वैधानिक ढंग से दो व्याह होते हैं। अतएव यह भी कहा जाता है कि नेवार-जाति की स्त्रियाँ कभी विधवा होती ही नहीं।

शास्त्र के वचनानुसार बारह वर्ष के पहले; अर्थात् रजस्वला होने के पहले कन्या की शादी हो जानी चाहिए। अतएव बारह वर्ष के लगभग की अवस्थावाली कन्याएँ दो-चार सौ की संख्या में सामूहिकरूप से एकत्र कर ली जाती हैं और उनका व्याह बेल को शिवरूप साक्षी बनाकर कच्चा सुवर्णरूप नारायण के साथ कर दिया जाता है। कन्या का पिता नारायण को कन्यादान कर देता है और इसप्रकार उस कन्या का वैधानिक प्रथम व्याह हो जाता है। इसके पश्चात् कन्या चाहे अपना व्याह करे अथवा न करे। लड़कियों का वयस्क हो जाना भी यहाँ समाज में बुरा नहीं समझा जाता; क्योंकि वास्तविक विवाह तो नारायण के साथ हुआ रहता है। किन्तु व्यावहारिक जीवन में कन्या सयानी होने पर पिता वर ठीक करते हैं और उनका दूसरा विवाह पुरुष के साथ होता है। दहेज-प्रथा यहाँ नहीं है। वर-कन्या बेची या खरीदी नहीं जाती। हाँ, यह अवश्य देखा जाता

है कि सामान्य वित्त के लोग परस्पर एक दूसरे से स्त्रियों का आदान-प्रदान कर लेते हैं।

बारात बाजा के साथ आती है। दूल्हा के ऊपर एक बहुत बड़ा छाता लगा रहता है। बारात में हाथी, घोड़ा आदि रखकर किसी प्रकार की सजावट नहीं रहती; किन्तु परस्पर के कुछ आदमी आते हैं और शादी हो जाती है। व्याह हिन्दूधर्म की रीति से होता है। बाराती लोग पान-इलायची खाकर लौट जाते हैं। कुछ लोग रह जाते हैं, जो दूसरे दिन कन्या को विदा कराकर ले जाते हैं। यहाँ गौना नहीं होता। विवाह के पूर्व तिलक भी नहीं चढ़ता। हाँ, कन्या का पिता व्याह के पूर्व संबन्धियों को भोजन अवश्य कराता है। इसी प्रकार वर का पिता घर में वधू आ जाने पर अपने सम्बन्धियों को भोजन कराता है। यहाँ कन्या को दहेज में चर्खा देना आवश्यक है। पहले चरखे के साथ करघा तथा चरखे का सब सामान दिया जाता था। जो लोग सम्पन्न हैं, वे दहेज में गृहस्थी का और सामान भी देते हैं।

नेवार-जाति में एक-तिहाई बौद्ध और दो तिहाई हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। बौद्धों में भी जात-पाँत है। हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मों को माननेवालों में व्याह होता है। दोनों के यहाँ प्रायः एक-सा ही रीति-रिवाज है।

विधवा-विवाह

नेवार-जाति की स्त्रियाँ नारायण के साथ व्याह हो जाने के कारण विधवा नहीं होतीं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि में नेवार-ब्राह्मणों के अतिरिक्त नेवार-जाति की अन्य स्त्रियाँ विधवा होने

पर विवाह करती हैं। नेवार में ब्राह्मणों के बाद वाली 'श्रेष्ठो' कही जानेवाली उपजाति में भी विधवा-विवाह करने की मनाही नहीं है; परन्तु इनमें भी अमीर के घरों की अथवा कुलीनता का दम भरनेवाले लोगों के घर की स्त्रियाँ पुनर्विवाह नहीं करतीं। गोरखा-जाति में ब्राह्मण और क्षत्रिय की स्त्रियाँ पुनर्विवाह नहीं करतीं। इनके अतिरिक्त अन्य जातियों में विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित है। मेरे विचार से समाज के बदलते हुए जीवन को देखते हुए उसे ठोस और सुसंगठित बनाने के लिए विधवा-विवाह का समर्थन अवश्य करना चाहिए।

मृत्यु

मृत्यु की क्रिया थोड़ी लौकिक रीति के साथ हिन्दूरीत्यानुसार ही होती है। परस्परी, सम्बन्धी एवं ब्राह्मणों का भोजन तेरहवीं अथवा सत्रहवीं को होता है।

गाँवों पर एक दृष्टि

नेपाल-राज्य ने एक प्रकार से यहाँ के ग्रामीणों को चूस लिया है। सेना में भरती की नीति ने गाँवों को युवक-हीन कर दिया है। गाँवों में स्कूल, वाचनालय, पाठशाला आदि जीवनोन्नति के कोई साधन न होने के कारण राज्य ने उन्हें कूपमण्डूक बना रखा है। सामाजिक कार्यों को करना अथवा उनके कानों तक किसी प्रकार जीवन-स्वातन्त्र्य का सन्देश पहुँचाना अपराध समझा जाता है। ग्रामीणों में चेतना उत्पन्न कर उन्हें वर्तमान निम्न-स्तर से ऊपर उठाने की चेष्टा करना राजद्रोह है। राणाओं के प्रासादों को सजाने के लिए अथवा उनके मौज उड़ाने के

साधनों को एकत्र करने में अपना जीवन बिता देने के लिए ही मानों उनका जन्म हुआ है। कर के रूप में अथवा रात-दिन के परिश्रम के रूप में जो रुपये और सहायता वे राज्य को देते हैं, उसके बदले में राज्य उन्हें क्या देता है? उनके दैनिक जीवन को विकसित एवं सुखमय बनाने में राज्य उनकी क्या सहायता करता है? इन सब बातों पर विचारकर वहाँ की अब तक चली आती हुई परिस्थिति को किसी-न-किसी प्रकार शीघ्र बदलना ही होगा। वर्तमान युग के इस जागर्तिकाल में राणाओं की सामन्तशाही का नाशकर उसके स्थान पर गणतन्त्रीय प्रणाली वहाँ शीघ्र ही स्थापित करनी होगी। अन्यथा हिमालय के शान्त वातावरण में पली एवं युग-युग से पिछड़ी चली आती हुई वहाँ की ग्रामीण जनता के लिए कोई भी उज्वल भविष्य न होगा।

कहने का तात्पर्य यह कि नेपाल की ग्रामीण जनता नितान्त चेतना-रहित है। वहाँ शहरों में विचारों एवं दलों का द्वंद्व भी नहीं है। अतः नगरवासियों को किसी ओर भी आसानी से लगाया जा सकता है। ग्रामीणों में इस समय जो भावना, जो विचार भरा जायगा, वही स्थायी रहेगा। कोई भी जनशक्ति संघटित होने पर सिंहनाद करती हुई दुनिया में क्या नहीं कर सकती है? इस समय वे दूसरों के लिए जी रहे हैं। किन्तु जिस समय देश के लिए वे जीवेंगे, उस समय उनकी शक्ति को कोई रोक न सकेगा। वे होंगे—आदर्श राष्ट्र के राष्ट्रकर्मी।

पचास हजार चर्खा

श्री तुलसीमेहर श्रेष्ठ क्षत्रिय नेवार हैं और ललितपत्तन के

नागरिक हैं। आर्य-समाज खोलने के अपराध में सन् १९२१ ई० में आपको १२ वर्ष के लिए कैद अथवा आजन्म देश-निर्वासन की सजा मिली थी। तत्कालीन श्री ३ सरकार चन्द्रशमशेरजंगबहादुर राणा ने आपके निर्वासन की सजा माफ कर दी; परन्तु शर्त यह लगाई गई कि वह महात्मा गांधी के आश्रम में जाकर चर्खा-सम्बन्धी कार्य सीखें। मेहरजी सन् १९२१ से १९२५ ई० तक साबरमती-आश्रम में रहकर, वहाँ का पवित्र जीवन-निर्वाह किया।

मेहरजी सन् १९२५ ई० में घर लौट गए और व्यक्तिगत रूप से गाँव-गाँव में चर्खा का प्रचार करने लगे। आपने अपना निवास-स्थान पाटन को ही बनाया। घर से सम्बन्ध त्याग दिया। यद्यपि आपने अपना जीवन राजनीतिक नहीं बनाया; किन्तु अपना जीवन चर्खा के रचनात्मक कार्य के निमित्त उत्सर्ग कर दिया। सन् १९२६ ई० में आपने एक चर्खा-स्कूल पाटन में ही खोला। सरकार ने आपके निर्वाह के लिए २०) रु० मासिक तथा आपके दो सहयोगियों को क्रम से ११) रु० और ५) रु० मासिक देना आरम्भ किया।

आपने अपने कार्यकर्ताओं के साथ गाँव-गाँव में घूमकर चर्खा चलवाना आरम्भ किया। कपड़े बुनने का भी प्रबन्ध किया; ताकि सूत पड़ा न रह जाय। पहले नेपाल में चर्खा-प्रचार कम था, क्योंकि वहाँ रुई नहीं होती। फिर भी कुछ चर्खे अवश्य चलते थे। सन् १९२७ ई० में सरकार आपके उद्योग-धन्धे से बहुत प्रसन्न हुई और ११००) रुपये वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया। आप अकड़बाज एवं झूठे मान के भूखे नहीं हैं;

पचास हजार चरखा

हरिसिद्धी

पचास हजार चरखा

अन्धी वालिका चरखा कात रही है

परन्तु सिद्धान्त पर डटनेवाले व्यक्ति हैं। नेपाल के तीन प्रधानमंत्रियों से लड़ चुके हैं। आपकी लड़ाई में आपको सदा सफलता मिलती गई। सन् १९२८ ई० में वह सहायता बढ़ाकर १५००) रुपये वार्षिक और तदनन्तर क्रमशः २४००) रुपये और ३०००) रुपये कर दी गई।

नेपाल में इस समय ५० हजार चर्खे चल रहे हैं, जिसका श्रेय आपको प्राप्त है। श्री युद्धशमशेरजंगबहादुर राणा ने इस उद्योग-धन्धे के लिए एक लाख रुपये और वर्तमान राणा पद्म-शमशेरजंगबहादुर ने दो लाख रुपये वार्षिक सहायता देना आरम्भ कर दिया है। लेकिन आप अपने जीवन-निर्वाह के लिए अब तक केवल २०) रुपया माहवार लेते हैं।

मेहरजी ने नेपाल में यह कार्य इतने सुचारु ढंग से किया है कि मुझे विश्वास है कि महात्माजी यदि यहाँ आते तो खुशी से अवश्य उछल पड़ते। यहाँ सरकारी सहायता का मद अलग रखा जाता था। लोगों को चर्खा किश्त पर दिया जाता था, जिसका मूल्य ५) रुपया होता था। चर्खे के अतिरिक्त चर्खे का सामान, यथा—तकुआ; धुनकी आदि भी देते थे और किश्त से रुपया ले लेते थे। अनन्तर शटललूम भी किश्त पर देना आरम्भ किया गया और फल यह हुआ कि चर्खा और करघा का प्रचार दिन-पर-दिन बढ़ता गया। नेपाल में रुई पैदा नहीं होती। अतएव वर्धा से रुई मँगाकर कातनेवालों को दी जाती है। चर्खा काटकर जो रुपया बचता था, प्रतिवर्ष खजाने में जमा हो जाया करता था। सरकार का नुकसान केवल प्रबन्धकों एवं प्रचारकों के ऊपर व्यय में होता था और यही

घाटा था; क्योंकि मूलधन तो किश्त में वापस आ जाता था।

युद्ध के समय में वस्त्र की कमी का प्रभाव नेपाल पर भी पड़ा। इस समय चर्खे का प्रचार खूब बढ़ा। जब श्री पद्मशमशेर श्री ३ सरकार हुए तो श्री मेहरजी ने एक लाख के स्थान पर दो लाख रुपया सहायता स्वीकार कराया। काम जोरों पर बढ़ गया। सन् १९४२ ई० में 'घरेलू इल्म प्रचार अड्डा' नेपाल-सरकार ने बनाया और इस कार्य का सब हिसाब-किताब आदि उक्त संस्था के आधीन हो गया, जिसके प्राण श्री तुलसीमेहर हैं और अपने पुराने बीस रुपये पर ही कर्मयोगी-जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इस समय कताई का क्रम निम्नलिखित है। कातनेवालों को रुई दी जाती है। मान लिया कि कातनेवाला एक पाव रुई ले गया। उससे आध पाव सूत ले लिया जायगा। आध पाव सूत कातनेवाले की इच्छा पर है कि चाहे वह अपने प्रयोग में लाए अथवा बेच दे। यदि कातनेवाला कुल पाव भर सूत कातकर दे देगा तो उसे चर्खा-संघ द्वारा निश्चित कताई की दर से पारिश्रमिक दे दिया जायगा।

सूत लेकर बिनवाने की प्रणाली श्री मेहरजी ने नेपाल में नहीं रखी है। प्रत्येक ग्राम में अब करघे हो गए हैं, जहाँ कातनेवाला सूत एकत्रकर कपड़ा बनवा सकता है। गाँवों में चर्खे चलने लगे हैं और करघे भी गाड़े गए हैं। इसलिए सूत लेकर बिनवाकर देने के झमेले से दूर रहने का प्रयत्न किया गया है। कातनेवालों और बीननेवालों का इस प्रकार सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। वे अपने आवश्यकतानुसार कपड़ा बनवा लेते हैं।

पचास हजार चरखा
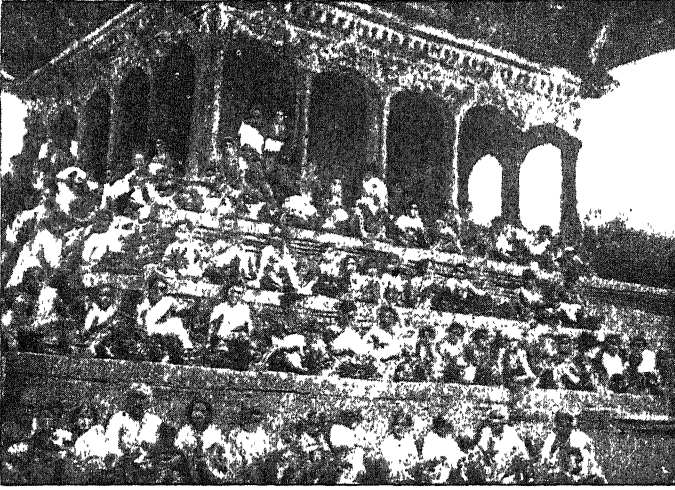
ललित पत्तन

पचास हजार चरखा
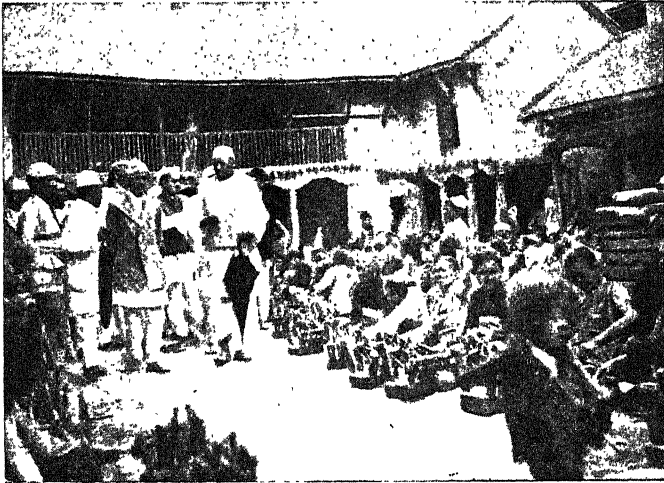
'चर्खा प्रचार महागुठी' नाम की एक अलग संस्था मेहर-जी ने स्थापित की है, जिसका सम्बन्ध अधिकारियों से नहीं है। यह इनकी व्यक्तिगत संस्था है। इसका काम केवल चर्खे का गाँवों में प्रचार करना है। इस प्रकार मेहरजी ने, जहाँ चर्खा-योजना चालू हो गई है, वहाँ के दैनिक कार्य का भार सरकार के सुपुर्द कर दिया है, जो दैनिक क्रम के अनुसार चलता रहता है और विभागीय अधिकारीवर्ग उसके हिसाब-किताब आदि के लिए सरकार के सम्मुख उत्तरदायी रहता है। यहाँ मैंने देखा कि सरकार तथा मेहरजी के सुन्दर सहयोग के कारण वास्तव में नेपाल ने, केवल एक व्यक्ति के लगन के कारण, भारतवर्ष को पछाड़ दिया है। उन्होंने अपने कर्मठ जीवन द्वारा दिखला दिया है कि यदि मनुष्य चाहे तो अकेला ही रहकर अपने कर्मनिष्ठ एवं निष्काम कर्म की भावना से बहुत कुछ कर सकता है।

श्री तुलसीमेहरजी ने अपना पुराना कार्य 'घरेलू इल्म प्रचार अड्डा' को सौंप दिया है। सरकार ने इस विभाग के लिए दो लाख रुपये का बजट बना रखा है। रुई की ३०० गाँठें प्रतिवर्ष वर्धा से यहाँ आती हैं। एक गाँठ में ५ मन रुई होती है। इस प्रकार १५०० मन सूत किंवा वस्त्र प्रतिवर्ष तैयार होता है। निम्न-लिखित स्थानों का स्कूल, जिनका प्रारम्भिक संघटन श्री मेहरजी ने किया था, उक्त राजकीय विभाग को चलाने के लिए दे दिया है—

स्थान				
भक्तपुर	३६	३१	१५	४६
हरिसिद्धी	५७	१९	३९	५७

गोदावरी	१७	०	१०	१०
बौद्धमाहीकाल	२०	३३	२८	६१
सोपड	२०	१८	२१	४०
दिल्लीबाजार	२०	४२	३०	७२
विघालय	×	६३	७३	१३६
पुर्पोखर	×	१३	×	१३
मोटाहिटी	×	२१	×	२१
नैकाप	२३	×	×	×
त्रिपुरेश्वर	३०	×	×	×
लेले	२०	×	×	×
	२४३	२४०	२१६	४५६

ऊपर लिखे गए स्कूलों तथा तत्सम्बन्धी अपने सब कामों को सरकार के सिपुर्द कर देने के पश्चात् आपने 'चर्खाप्रचारगुठी' नाम से अपना संघटन अलग किया। उसका केन्द्र बागमती, मनुमती एवं रुद्रमती के संगमस्थल संखमूलघाट पर बनाया। वहाँ चोरी होने लगी। आपको बाध्य होकर करघे और चर्खे का काम वहाँ से हटाना पड़ा। ललितपत्तन का दरबार-प्रांगण प्राचीन नेवार-राजाओं का बनवाया है, उसी का एक कक्ष देवतुलेजा के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। सरकार ने वह स्थान श्री तुलसीमेहरजी को उनके कार्य के लिए दे दिया। संखमूलघाट से, जिसे नेपाल का उत्तरप्रयाग कहते हैं, सब सामान लाकर देवतुलेजा के मन्दिर में लगाया गया है। इस समय वह स्थान चर्खा और खद्दर के उत्पादन का मुख्य केन्द्र हो गया है।

'चर्खाप्रचारगुठी' का कार्य सार्वजनिक चन्दा से लगभग सोलह हजार रुपया एकत्रकर आरम्भ किया गया था। प्रचार-कार्य में पाँच वर्षों तक रुपये खर्च होते रहे और अन्त में पाँच हजार रुपये बच गए। किन्तु हिम्मत न हारकर मेहरजी बराबर काम करते चले गए और अब इस संस्था का मूलधन चालीस हजार रुपया हो गया है।

देवतुलेजा में २६ करघा और रँगाई, धुनाई, सिलाई, रुई, छाता, कपड़े का जूता तथा खद्दर-विक्रय के विभाग खुले हैं। पाटन में २५०० चर्खे चलते हैं और उसका प्रबन्ध भी अपने ही जिम्मे रखा है। शेष संस्थाओं का प्रबन्ध सरकार के सिपुर्द कर दिया है।

इस वर्ष ३०० गाँठें रुई अपनी संस्था के लिए आपने अलग मँगाई हैं। सरकार ने ३०० गाँठों से बढ़ाकर इस वर्ष ४०० गाठें रुई की मँगाई हैं। इस प्रकार वहाँ कुल ७०० गाँठें; अर्थात् २१००० मन रुई का सूत अथवा वस्त्र झोपड़ियों में बसनेवाले गरीबों के घर बनेगा। गरीबों को उससे कुछ आमदनी होगी। वहाँ के निवासियों को वस्त्र मिलेगा। गाँव वस्त्र के मामले में स्वावलम्बी बनेगा और धीरे-धीरे चर्खे के साथ ग्रामीणों का सम्बन्ध नवीन विचार-धारा से होगा। परिणाम स्पष्ट है कि समाज की आर्थिक एवं सामाजिक विषमता दूर होगी और समाज का स्तर ऊँचा होगा। वस्तुतः यही आदर्श रचनात्मक कार्य कहा जा सकता है। भारतवर्ष में गला फाड़-फाड़कर चिल्लानेवालों को आँखें खोलकर देखना चाहिए कि एक साधारण व्यक्ति के निष्काम कर्म ने एक देश एवं एक जाति के स्वरूप को

बदलकर पचास हजार चर्खाकातनेवालों तथा हजारों करघे चलानेवालों की जेब में कुछ डालकर नेपाल से बाहर जाते हुए पैसे को नेपाल में ही रखकर नेपाल-राष्ट्र की वह सेवा की है, जो कभी भुलाई नहीं जा सकेगी।

इस वर्ष जुलाई (१९४७ ई०) से नीचे लिखे स्थानों में खादी-कक्षा खोलने का प्रबन्ध किया गया है—

स्थान	विद्यार्थी
१ फराये	२०
२ धुनिवेशि	२०
३ थीकोट	२०
४ भर्दुजे	२०
५ सिनामेगल गोचरण	२०
६ सींगला खोला	२०
७ मधेगाव	२०
८ कोटेश्वर	२०
९ वालाज्यु	२०
१० गोकर्ण	२०
११ पटिमहालदमीथी	२०
१२ चोमार	२०
१३ चापागाऊ	२०
१४ कीर्तिपुर	२०
	२८०

ऊपर दिए आँकड़ों को देखने से मालूम होगा कि १४

ग्रामों में २८० विद्यार्थी खादी की शिक्षा प्राप्तकर रचनात्मक कार्य में लगेंगे। यदि यही प्रगति जारी रही तो अब वह दिन दूर नहीं है, जब नेपाल वस्त्र के मामले में पूर्ण स्वतन्त्र हो जायगा। चाहे गत महायुद्ध-जैसे दस महायुद्ध क्यों न छिड़ जायँ, हवाईजहाजों द्वारा की गई बम्बबाजी से बड़े-बड़े कारखाने नष्ट होकर लोगों को भले ही नंगा बना दें; परन्तु इस घरेलू शिल्प को संसार की कोई भी शक्ति नष्ट नहीं कर सकती। कृषकों को मुख्यतः अन्न एवं वस्त्र चाहिए। अन्न खेत देगा और वस्त्र घर की माँ-बहनें चरखा कातकर देंगी। यह वास्तविक ग्राम-सुधार होगा, यों तो कहने के लिए बहुत-सी बातें कही और सुनी जाती हैं। अपने दैनिक जीवन में यदि ग्रामीणों की कुछ भी आर्थिक उन्नति दुनिया से दूर हिमालय की उपत्यकाओं एवं पहाड़ियों पर किया जाय तो वह महान् कार्य होगा। भगवान् से प्रार्थना है कि इस ओर लगे व्यक्तियों को शक्ति-प्रदान करे।

आर्थिक अवस्था

नेपाल की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। इसमें दो ही वर्ग दिखाई देंगे—(१) अत्यन्त अमीर और (२) श्रमिक। मध्यम वर्गवालों की संख्या नेपाल में नगण्य है। कहना न होगा कि मध्यम वर्ग के मनुष्य हीं किसी देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित बनाते हैं। क्योंकि पूँजीपतिवर्ग दिन-रात शोषण की चिन्ता में ही व्यस्त रहता है और श्रमिकवर्ग पेट भरने की चिन्ता से कभी

मुक्त ही नहीं हो पाता। अतएव इन दोनों वर्गों के पुरुष एक दूसरे की विपरीत दिशा के अंतिम छोर पर दिखाई देते हैं और दोनों की विचार-धाराएँ भिन्न हुआ करती हैं। किन्तु मध्यम वर्ग के लोग ही ऐसे हुआ करते हैं जिनके कारण समाज में नवीन जीवन और जागर्ति उत्पन्न होती है। वे उपर्युक्त दोनों विरोधी समुदाय के मार्गों के मध्य एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं, जिससे देश अपने उचित स्थान पर स्थित रहता है। नेपाल में मध्यम वर्ग के पुरुषों के न होने के कारण ही वहाँ अब तक कोई आन्दोलन न हो सका और न जनता में जागर्ति उत्पन्न हो सकी। अब वहाँ धीरे-धीरे मध्यम वर्ग बन रहा है और फलतः जागर्ति के चिह्न भी दिखाई देने लगे हैं।

नेपाल में आज तक कोई अनुमानपत्र (बजट) ही प्रकाशित नहीं हुआ है। वहाँ की क्या आमदनी है और क्या खर्च है, इसे कोई नहीं जानता। राणाओं की गुप्त-समिति को ही इसका वास्तविक ज्ञान रहता है। इतने बड़े स्वतन्त्रराज्य में हिसाब-किताब न हो, यह बात समझ में नहीं आती। मैंने इस विषय में वहाँ जब अनुसन्धान किया तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नेपाल में एक-एक पाई का हिसाब अवश्य है; किन्तु वह विकेन्द्रीय रहा करता है। एक विभाग की बातें दूसरे विभाग को व्योरे से नहीं मालूम होतीं। सब विभागों की बातें प्रधान-मंत्री में ही जाकर केन्द्रित होती हैं। अतएव केवल प्रधानमन्त्री अथवा उनका कोई अधिकारी ही किसी के सम्बन्ध में साधिकार कुछ कह सकता है।

किसी अधिकारी से नेपाल की आय पूछी जाने पर वह

सब मर्दों को मिलाकर केवल दो करोड़ बताता है—डेढ़ करोड़ तराई और पहाड़ी मुल्कों के भूमिकर के रूप में और पचास लाख आयात-कर के रूप में।

नेपाल में इनकमटैक्स नहीं लगता। नेपाल में कठिनता से ५० व्यक्ति अराणावंशीय होंगे, जिनकी वार्षिक आय ५०००) रुपया से अधिक हो। अतः इनकमटैक्स देनेवालों का ९० प्रतिशत भाग राणावंशीय समुदाय है। नेपाल की सारी सम्पत्ति उन्ही लोगों के पास है और उच्च पदों पर भी वे ही अथवा उनके कुटुम्बी या कृपापात्र प्रतिष्ठित हैं। इन राणाओं के विरुद्ध उनके अन्य कुटुम्बियों की दलबन्दी होने पर कभी-कभी कुछ बातें मालूम हो जाती हैं। किसी बात को लेकर जब दलबन्दियों का जोर होता है तो उस समय वहाँ की आन्तरिक स्थितियों का पता चलता है। अन्यथा राजकीय वर्ग के सब दोषों के ऊपर खासा पर्दा पड़ा रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि बाहर-भीतर सब अच्छा है।

नेपाल में मालगुजारी लगभग १५०) रु० प्रति बीघा से भी अधिक है। बेगारी की चाल बन्द नहीं हुई है। उसका पालन कानून की तरह किया जाता है। जो लोग बेगार नहीं दे सकते, उन्हें प्रतिवर्ष निश्चित कर देना पड़ता है। बेगार सवर्ण एवं असवर्ण सभी लोगों को देना या करना पड़ता है। 'भरिया नाई' की प्रथा इतनी अन्यायपूर्ण है कि उसे हम अमानुषिक ही कह सकते हैं। पहाड़ों पर उन मजदूरों से उनकी आय का ६ठां हिस्सा लिया जाता है, जो मजदूरी कर अथवा बोझा ढोकर अपना पेट पालते हैं। राज्यकर्मचारियों से उनके पदक्रम का ध्यान न रख-

कर सलामी ली जाती है। नौ रुपया मासिक पारिश्रमिक पाने-वाले व्यक्ति से भी दस रुपया प्रतिवर्ष सलामी वसूल की जाती है। किसी प्रकार की सवारी राणावंशवालों के अतिरिक्त प्रयोग करना अपराध समझा जाता है। विवाह तथा उत्सवों पर अराणावंशीय अपने यहाँ बैण्डबाजा नहीं बजवा सकता। वांदा, पजनी तथा कुमारीचौक-जैसी घृणित प्रथाएँ नेपाल ही-जैसे अत्यन्त पिछड़े देश में पाई जा सकती हैं।

नेपाल में उद्योग-धन्धों तथा बड़े कारखानों के लिए विशाल क्षेत्र है। हिमालय की उपत्यकाएँ खानों से भरी हैं। तेल, कोयला ताँबा, लोहा, कोबाल्ट आदि खनिज पदार्थों का पता नेपाल में मिल चुका है। सब बातें मालूम हो चुकी हैं; परन्तु रुपया कौन लगाए ? क्योंकि सारी पूँजी राणा लोगों के हाथों में है। उनके समान धनी वहाँ कोई दूसरा व्यापारी नहीं है। कोई बाहरी मनुष्य अपनी पूँजी नेपाल में नहीं फँसाना चाहता; क्योंकि स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से नेपाल कल क्या कर बैठेगा, इसका क्या ठिकाना ? वहाँ लोकतन्त्रीय शासन किंवा लिखित कानून भी नहीं है, जिससे लोगों को विश्वास हो सके। यही कारण है कि बाहरी लोगों ने अपनी पूँजी नहीं लगाई है। रह गए राणा लोग, सो उनका रुपया नेपाल के बाहर लगा है। वे अपना रुपया नेपाल में नहीं लगाना चाहते; क्योंकि कौन-सा राणावंश कब नेपाल से निकाल बाहर किया जायगा, इसका भी कोई निश्चय नहीं रहता। क्योंकि यदि एक ही वंश के पुरुषों के हाथ में वहाँ का शासनसूत्र बराबर बना रहे तो वहाँ की नीति, राजा-ज्ञाओं एवं शासनमर्यादा में स्थिरता रह सकती है। किन्तु वहाँ

के शासनसूत्र का उत्तराधिकार एक वंश से दूसरे वंश में जाया करता है, इसलिए शासनारूढ़ होने पर एक कुटुम्ब की नीति दूसरे कुटुम्बियों तथा राज्य के विषय में क्या होगी, इसे कोई नहीं कह सकता।

वीरगंज, विराटनगर तथा कुछ अन्य स्थानों में जूट, कपड़ा, दियासलाई, धान आदि की मिलें खुली हैं। सुना जाता है कि उनमें पूँजी बाहरी लगी है; परन्तु प्रबन्ध राणा लोगों के मतानुसार है। उनमें राणा लोगों का साझा भी है। इस प्रकार चारों ओर से आर्थिक शोषण हो रहा है और शोषण करनेवाला राणा-परिवार है। गरीब जनता का कुछ भी वश नहीं चलता। नेपाल-राज्य को भी इस शोषण के कारण लाभ नहीं हो पाता। काठमाण्डू को देखने से पता चलेगा कि वहाँ की आधी भूमि पर राणा लोगों के भव्य प्रासाद खड़े हैं। एक-एक प्रासाद की कीमत कम-से-कम साठ लाख-अस्सी लाख रुपये होगी। उन्हें सुचारु अवस्था में रखने के लिए कितना व्यय किया जाता होगा, इसे सोचने पर मस्तिष्क में चक्कर आने लगता है। नीचे लिखे आय-व्यय के आँकड़ों से, जिसका पता बड़ी कठिनता से लगाया गया है, वहाँ की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

आय

तराई प्रदेश—

१. लकड़ी और शहतीर	१ करोड़ ५० लाख
२. माल अड्डा (मालगुजारी)	१ ,, ५० ,,
३. जंगल, जानवर और चमड़ा	२५ ,,

४. बाजार, अड्डा (निर्यातकर)	२५ लाख
५. रेलवे और ट्राली	१० ,,
६. टेलीफोन	५ ,,
७. कटेचू (ठेका और बिक्री)	५ ,,
	३ करोड़ ७० लाख

पहाड़ और घाटी प्रदेश—

१. पहाड़, सदर माल और घुटी तहसील	१ करोड़ ५० लाख
२. अदालत	३० ,,
३. पहाड़ और घाटी भन्सार (कस्टम)	२० ,,
४. पहाड़ी रकम, झरा, ओलुखादि	१५ ,,
५. बिजली और बिक्री	२ करोड़ ५० ,,
६. सड़क का सेस तराई सहित	१ करोड़ ५० लाख
७. ब्रिटिश और भारतीय सरकार का ग्रान्ट	१० ,,
८. तिब्बत की सरकारी मालगुजारी	१० ,,
९. बाँध और नहर	६० ,,
१०. राणावंशीय सम्पत्ति, महोजगी, सरलाही, मालगाव, बांके, वरदिया, विरता आदि	३ करोड़
११. सिगरेट का प्रतिवर्ष ठीका	७ ,,
१२. मादकद्रव्य	६ ,,
१३. पोस्टआफिस आदि	मालूम नहीं
१४. रोप-वे आदि	,,
	१० करोड़ ८ लाख

व्यय

१.	निज़ामत	३० लाख
२.	सेना	३६ ,,
३.	सेना के कप्तान और सिविल सूबा	२ ,,
४.	सरकारी १७ राणावंशीय सदस्य	२२ ,,
५.	चार कमांडिंग जनरल	३ ,,
६.	कमांडर-इन-चीफ	८३ हजार
७.	प्रधानमन्त्री	३ लाख
८.	प्रधानमन्त्री की स्त्री	१ ,,
९.	बी और सी श्रेणी के राणा जिन्हें उत्तराधिकार का अधिकार नहीं है	१४ ,,
१०.	बाहरी आठ राणावंश को भत्ता	१२ ,,
११.	प्रधानमन्त्री की तरक्की	८ ,,
१२.	महाराज का जेबखर्च	६० हजार
१३.	साहेबजू (महाराज के सम्बन्धियों का भत्ता)	१ लाख
१४.	जीवित प्रधानमन्त्री तथा कमांडिंग जनरल की चार विधवा स्त्रियों को भत्ता	६ ,,
१५.	श्री ६ गुरुजी को पुरस्कार	३ ,,
१६.	अन्य गुरुजी लोगों को भत्ता	मालूम नहीं
१७.	बृटिश लिगेशन	१ लाख (?)
१८.	नेपाली लिगेशन (लंडन)	१ लाख
१९.	परराष्ट्र विभाग	५० हजार
२०.	बाँध, कृषि आदि	५० ,,
२१.	सड़क	५ ,,

२२. टेलीफोन इत्यादि	४ हजार
२३. बिजली	१० ,,
२४. पोस्ट	५ ,,
२५. ट्राली इत्यादि	७ ,,
२६. गुथी, शिक्षा, अस्पताल आदि	४ लाख
२७. रेलवे	मालूम नहीं
२८. रोप-वे	,,

ऊपर के आँकड़ों से पता चलेगा कि लगभग १० करोड़ रुपये की आय होती है और २ करोड़ रुपये का व्यय। शेष जनता का ८ करोड़ रुपया सीधे राणा लोगों के पेट में जाता है। वहाँ के राणा लोगों के अमीर होने का यही रहस्य है।

राणा लोगों के शोषण की कहानी सन् १८५७ ई० के भारतीय राजविद्रोह के समय से आरम्भ होती है। सन् १८५७ ई० में राणा जंगबहादुर ने नेपाल में राणा लोगों की नींव सुदृढ़ करने के निमित्त भारतीय राष्ट्रवादियों के विरुद्ध हथियार उठाकर अंग्रेजों की सहायता की थी। लखनऊ में गोरखा-फौज के सिपाहियों ने राणा जंगबहादुर के नेतृत्व में खूब लूट-मार की और नवाबों एवं जनता की दौलत खच्चड़ों, गाड़ियों और ऊँटों पर लदकर नेपाल पहुँची। वह दौलत नेपाल के राजकीय कोष में जमा न होकर राणा जंगबहादुर की व्यक्तिगत सम्पत्ति हुई। नेपालियों ने अंग्रेजों की सहायता की थी; परन्तु उस सहायता से नेपाल की जनता का कोई भी लाभ न होकर राणावंश का ही लाभ हुआ।

उक्त राजविद्रोह के समय में भी नेपाल को उसकी देशद्रोहा-

त्मक सेवा के फलस्वरूप अंग्रेजों ने बरदिया, कैलाली, कंचनपुर और बाँके का भू-भाग दिया। यह भू-भाग भी नेपाल-राज्य में न सम्मिलित किया जाकर राणा जंगबहादुर की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी गई। अब तक राणावंश का हीं इनपर अधिकार है। यही नहीं; बल्कि कास्की और लामजंग के जिले भी प्रधानमन्त्री के समझे जाते हैं और उनकी आमदनी वह लेता है।

जंगबहादुर के पश्चात् उसका भाई रणोदीप प्रधानमन्त्री हुआ। रणोदीप के जो लड़के भागकर हिन्दुस्तान में आए, उन्होंने अंग्रेजों के द्वारा अपनी १३५ करोड़ रुपयों की माँग नेपाल-सरकार के सम्मुख रखी। इसी से पता चल सकता है कि भारत से कितना लूट का सामान राणा जंगबहादुर ले गए थे और उसके कितने बड़े-बड़े हिस्सों को अपने भाइयों में बाँटा होगा।

रणोदीप के पश्चात् वीरशमशेर नेपाल के प्रधानमन्त्री हुए और उन्होंने जंगबहादुर के पुत्रों तथा उसके कुटुम्ब के एक-एक बच्चे को मारकर उसके वंश का नाम-निशान मिटा दिया और उसकी सम्पत्ति पर भी अधिकार कर लिया। वीरशमशेर अपने समय में नेपाल के सबसे अधिक धनी व्यक्ति थे। उन्होंने गुरखा लोगों को अंग्रेजी फौज में भर्ती होने की आज्ञा दे दी थी। लगभग १५-२० लाख रुपये वार्षिक विरता की भूमि उन्होंने अपने लड़कों के लिए निश्चित कर दी थी। यह भू-सम्पत्ति अभी तक उनके वंशजों के पास है, जिसपर वास्तव में राज्य का अधिकार होना चाहिए।

वीरशमशेर के पश्चात् देवशमशेर केवल दो मास के लिए

प्रधानमन्त्री हो सके और चन्द्रशमशेर ने उनके हाथ से प्रधान-मन्त्रित्व ले लिया। देवशमशेर ने अपना रुपया बृटिश-भारत के बैंकों तथा अन्य स्थानों में लगाया।

चन्द्रशमशेर साधारण धनी व्यक्ति थे; परन्तु अपने उन्तीस वर्षों के प्रधानमन्त्रित्व में उन्होंने ८१ करोड़ नगद रुपया अपने लड़कों तथा स्त्रियों में बाँटा था। साथ ही; लगभग ४० लाख रुपया वार्षिक आय की अचल सम्पत्ति की भूमि अपने पुत्रों को दी। अभी तक यह विरता-आय चन्द्रशमशेर के पुत्र लोग उप-भोग कर रहे हैं।

चन्द्रशमशेर ने कलकत्ता में 'बाइंग एजेन्सी' (Buying Agency) नामक संस्था खोली। तराई की आमदनी नेपाल से कलकत्ता-स्थित 'बाइंग कम्पनी' को भेज दी जाती थी और यहाँ से सोना, जवाहिरात खरीदा जाता था तथा शेयरों एवं बैंकों में रुपये चन्द्रशमशेर के नाम से जमा किए जाते थे। यह सब उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गई थी।

चन्द्रशमशेर के पश्चात् भीमशमशेर नेपाल के प्रधानमन्त्री हुए। उन्होंने अपने तीन वर्षों के शासन-काल में कम-से-कम १० करोड़ रुपया अपने तथा अपने कुटुम्ब के लिए सुरक्षित किया था।

भीमशमशेर के पश्चात् युद्धशमशेर प्रधानमन्त्री हुए। अपने १४ वर्षों के राजत्वकाल में कहा जाता है कि उन्होंने ४२ करोड़ रुपया अपने पुत्रों तथा अपने लिए सुरक्षित किया था। कहा जाता है कि नेपाल में युद्धशमशेर को बाध्य होकर प्रधान-मन्त्रित्व त्यागना पड़ा था। आप अभी जीवित हैं।

वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री पद्मशमशेर के राजत्वकाल के अभी

दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। आप अन्य राणाओं की अपेक्षा अधिक सहृदय, उदार तथा सुधारक हैं। उदाहरण-स्वरूप आपने २७ लाख रुपया सुधार-योजना के लिए स्वीकार किया है।

नेपाल की इन स्थितियों को प्रकाश में लाने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ का प्रत्येक नेपाली अपने लिए परिश्रम नहीं करता; बल्कि किसी-न-किसी रूप में राणावंश का खजाना भरने के लिए करता है। वहाँ के नेपाली स्वतन्त्र नहीं, दास हैं। उन पर राणाओं का अधिकार है और उनकी एकमात्र नीति जनता का शोषणकर अपना घर भरना है। जब तक राणाओं की सम्पत्ति जब्तकर राज्य की सम्पत्ति नहीं बना ली जाती और राज्य के आय-व्यय पर वहाँ के जनता का अधिकार नहीं होता तब तक नेपाल का उद्धार एवं उन्नति होना कठिन है।

नेपाल-राज्य का यह कहना सफेद झूठ है कि राज्य की आय केवल २ करोड़ है। क्योंकि ऊपर दिए गए लेखे से स्पष्ट है कि वहाँ के प्रधानमन्त्रियों ने ढाई करोड़ रुपया प्रतिवर्ष के औसत से धन एकत्र किया है।

उद्योग-धन्धा

नेपाल में उद्योग-धन्धे अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं। तराई के समीपवर्ती स्थानों में इन दिनों कुछ कल-कारखाने खोले गए हैं, जिनमें विदेशी पूँजी लगी है। नेपाल की अवस्था के सुधार के लिए रेल तथा सड़कों के प्रसार की वहाँ आवश्यकता है। नेपाल का मुख्यतया गृह-उद्योग कागज, ऊनी वस्त्र, खद्दर,

धातुओं के वर्तन, कस्तूरी, लकड़ी का काम, वनौषधियों का संग्रह आदि है।

नेपाल का कागज बहुत प्रसिद्ध है। यह कागज पत्रवृक्ष की छाल से बनाया जाता है। कागज मजबूत होता है और मोड़ने से टूटता नहीं। शताब्दियों का बना पुराना कागज नेपाल में मौजूद है, जिसपर समय का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ सका है। तिब्बत तथा हिन्दुस्तान में कागज आयात किया जाता है। ऊनी वस्त्र तिब्बत से आते हैं तथा नेपाल के पहाड़ी इलाकों में भी तैयार किए जाते हैं। यदि ऊनी वस्त्रों के निर्माण पर जोर दिया जाय तो काश्मीर के समान नेपाल का भी यह मुख्य गृह-उद्योग हो सकता है। इन दिनों खद्दर खूब बनने लगा है। कपड़े पर छपाई का काम यहाँ अपने ढंग का निराला होता है, क्योंकि यहाँ स्त्रियाँ छपी धोतियाँ अधिक पहिनती हैं। धातु की बनी मूर्तियों का व्यापार यहाँ का पुराना है। अब भी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। ताँबा और पीतल पर बड़ी सुन्दरता से सोने का रंग चढ़ाया जाता है, जो अत्यन्त टिकाऊ होता है। एशिया-प्रदेश में नेपालियों ने इस ओर सबसे अधिक उन्नति की है। मृगनाभि से उत्पन्न कस्तूरी नेपाल की विशेष वस्तु है। यहाँ इसका अच्छा व्यापार होता है। वन्य पशुओं के चमड़े भी बाहर भेजे जाते हैं। रोएँदार जन्तुओं के चमड़े अधिक अच्छे और सस्ते होते हैं। लकड़ी पर खुदाई का काम नेवार-जाति की कला का प्रतीक है। कलमदान एवं अन्य वस्तुओं को रखने की भिन्न-भिन्न प्रकार की चीजें यहाँ कलापूर्ण ढंग से बनाई जाती हैं। जंगलों से शहतीर, साखू के लट्ठे आदि बाहर भेजने की मुख्य चीजें हैं।

नेपाल को सबसे अधिक आय साखू के लट्ठों से होती है।

वनौषधियाँ नेपाल में बहुत उत्पन्न होती हैं; परन्तु उनकी प्राप्ति का उचित साधन नहीं है। उनका विज्ञापन भी बहुत ही कम हुआ है। यदि नेपाल-सरकार चाहे तो उसे इससे पर्याप्त आय हो सकती है। ऊपर निर्देशित गृह-उद्योगों के प्रोत्साहन से यहाँ के ग्रामीणों की आर्थिक अवस्था पर्याप्त सुधर सकती है। नेपाल-राज्य जो आज दिन केवल निर्यात करता है, वहाँ आयात भी होने लगेगा और बाहरी रुपयों की आमदनी से नेपाल शीघ्र समृद्धिशाली बन जायगा। किन्तु खेद है कि राणा लोगों की अंधकार में रखनेवाली प्रतिक्रियावादी नीति ने नेपाल की आर्थिक अवस्था बिगाड़ रखी है। क्योंकि राणा लोग सब कुछ का उपभोग स्वयं करना चाहते हैं। इसके लिए प्रजा को गरीब बनाकर अंधकार में रखना उचित समझते हैं; ताकि उनकी शोषण-नीति के विरुद्ध आवाज न उठाई जा सके।

अब नेपाल का आर्थिक ढाँचा बदलना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। वहाँ पर जो उद्योग-धन्धे बड़े-बड़े कारखानों के रूप में खुले हैं, उनमें जनता की पूँजी नहीं लगी है। वे राणा लोगों की स्वार्थपरक नीति के प्रतीक मात्र हैं। उनकी तथा उनके विदेशी लुटेरे पूँजीपतियों की शोषण नीति के वे जीते-जागते रूप हैं। इन कारखानों से जनता का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। हाँ, जो गृह-उद्योग चल रहे थे उलटे उन्हें धक्का अवश्य पहुँचा है। कारखानों से जनता को उचित लाभ तभी हो सकेगा जब वह भी उसमें अपनी पूँजी लगाएगी और उनकी व्यवस्था में उसका भी हाथ रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि अब जाग्रत नेपाल

इन समस्याओं को समझने लगा है और वह दिन दूर नहीं है जब वहाँ की स्थिति शीघ्र बदलेगी और जनता उन्नत अवस्था को प्राप्त होगी।

राणाशाही

पृथ्वीनारायणशाह ने सन् १७६८ ई० में नेपाल के छोटे-छोटे राज्यों को संघटितकर नेपाल-राज्य की नींव डाली। उनके वंशवालों के हाथों में राज्य की बागडोर रही। आगे चलकर सेनापति भीमसेन थापा के समय में नेपाल ने अपनी गौरव-गरिमा को प्राप्त किया। थापा अंग्रेजों को हरा भी चुका था; किन्तु नेपाल-राज्य को कुछ और ही बदा था। कुँवर जंगबहादुर का प्रभुत्व हुआ। भीमसेन को बन्दी होना पड़ा और उसने आत्महत्या भी कर ली। राज्यवंश के पारस्परिक षड्यन्त्रों से नेपाल भुन-सा उठा। कोट के इस हत्याकाण्ड ने जंगबहादुर के लिए सरल मार्ग बना दिया। जंगबहादुर राणा बन गए। अंग्रेजों के लाड़ले बने। जिस समय भारतीय सन् १८५७ ई० में अपनी स्वतन्त्रता के लिए युद्ध कर रहे थे, उस समय राणा जंगबहादुर के नेतृत्व में गोरखे-सैनिकों की गोलियाँ स्वाधीनता के सैनिकों के हृदयों को विदीर्ण कर रही थीं। सैकड़ों गाड़ी सोना और जवाहिरात हिन्दुस्थान से लूटकर नेपाल पहुँचाया गया। इस भारतीय राजविद्रोह में अंग्रेजों की सहायता करने के उपलक्ष्य में जंगबहादुर तथा उनका वंश अंग्रेजों का प्रियपात्र हो गया। जंगबहादुर को अपने स्थान का भय अंग्रेजों के कारण हो सकता था; किन्तु अंग्रेजों ने नेपाल के आन्तरिक मामले में किसी

प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया और जंगबहादुर नेपाल के सर्वे-सर्वा बन गए। महाराज का वंश एक प्रकार से अपने राज्य-प्रासाद के भीतर नाममात्र को स्वतन्त्र रह गया और नाम को राज्य करने लगा। वहाँ वास्तविक राजा श्री ३ सरकार; अर्थात् राणा जंगबहादुर के वंशवाले होते हैं। उन्हीं की वहाँ तूती बोलती है और वही नेपाल के सर्वेसर्वा होते हैं। दुनिया में ऐसा कोई भी राष्ट्र नहीं है, जहाँ का पूरा मन्त्रिमण्डल तथा राज्य के कुल पद एक ही वंशवालों के हाथों में रहे हों।

जंगबहादुर के पश्चात् जितने भी श्री ३ सरकार या प्रधान-मन्त्री हुए, सब का एकमात्र लक्ष्य यही रहा कि ५ सरकार को अलग रखकर सब काम किए जायँ। यहाँ तक कि संसार में केवल नेपाल के ही महाराज ऐसे हैं, जिन्हें शासन-सम्बन्धी कुछ भी शक्ति नहीं प्राप्त है; मानों नेपाल के शासन में उनका कोई अस्तित्व एवं हाथ ही नहीं रहता है। उनसे कोई मिलने भी नहीं पाता। यदि कठिनाई से कोई मिलने भी पाता है तो राणावंश का कोई व्यक्ति उस समय उपस्थित रहता है।

राणा लोग नेपाल को अपनी जमीन्दारी समझते हैं, उसे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते हैं। उनका दावा है कि नेपाल को राणा जंगबहादुर ने लिया है, अतएव नेपाल पर उनका अक्षुण्ण अधिकार है। वे उसका चाहे जैसे शासन करें। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए चाहे जैसे शोषण करें, कोई पूछनेवाला नहीं है। वे न तो महाराज-नेपाल के प्रति जिम्मेदार हैं और न जनता के प्रति। महाराज-नेपाल उनकी दया के पात्र हैं और जनता उनकी दास है। इसका कारण कहा जाता है कि राणा जंगबहादुर

तत्कालीन महाराज को मारकर स्वयं राजा बन जाते; परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया था। इस प्रकार महाराज के पूर्वज पर उन्होंने दया की थी और उन्हें राजा माना था, इसलिए राणा लोगों के दयापात्र आज तक महाराज लोग बने चले आ रहे हैं।

राणा लोग जनता का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते। उनका तर्क है कि राणा-परिवार ने नेपाल की स्वतन्त्रता की रक्षा की है, अतएव राणा-परिवार को ही अधिकार है कि वे चाहे जैसे प्रजा के धन एवं जन का उपयोग करें।

जनता का कोई भी व्यक्ति वहाँ किसी उच्च पद पर नहीं है। यदि किसी ने जरा भी आवाज उठाई कि वह दबा दिया जाता है। किसी को फाँसी पर लटका देना या किसी को गोली मार देना वहाँ की साधारण बात हो गई है। कोई उनसे पूछने वाला नहीं है कि उन्होंने ऐसा अधिकार-रहित एवं अनुचित कार्य क्यों किया?

राणाओं की तुलना पेशवा लोगों से की जा सकती है। पेशवा लोगों ने पहले शिवाजी के वंशवालों के हाथों से शक्ति ली, अनन्तर स्वयं शक्तिशाली बनकर समस्त राज्य को हथिया लिया। पेशवा लोगों की भाँति राणा लोग भी अपने को स्वतंत्र राज्याधिकारी मानने लगे हैं। स्थिति यहाँ तक आ गई है कि कभी-कभी महाराज और श्री ३ सरकार साथ-ही-साथ बैठते हैं।

राणा लोग शिक्षित हैं। भारत में अधिकांश शिक्षा पाई है। वे कुशल राजनीतिज्ञ होते हैं, क्योंकि बाल्यावस्था से ही उसी वातावरण में रहते आते हैं। शील, शिष्टता ऊपरी कोमलता, समवेदना, मधुर भाषण आदि के गुण उनमें इतनी

अधिक मात्रा में रहते हैं कि उनकी बातों में फँस जाना सरल हुआ करता है। वे इतने अधिक व्यवहार-कुशल होते हैं कि जो उनसे लड़ने के विचार से आता है, वह स्वयं सोचने लगता है कि नहीं, उसने ही गलती की है। किन्तु अपना काम निकल जाने पर राणा लोग संघटित होकर अपने ही रक्त-मांसवाले वंशधरों पर भी दया नहीं करते, जिसके कारण कितने ही राणा वंशवालों को विवश होकर नेपाल छोड़ना पड़ा है।

नेपाल की जितनी आमदनी होती है, उसका अधिकांश राणा लोगों की जेब में जाता है। श्री चन्द्रशमशेरजंगबहादुर राणा ने अपने लड़कों में ८१ करोड़ रुपया बाँटा था। श्री ३ सरकार का उत्तराधिकार, पुत्र या अन्य सम्बन्धी को न मिलकर, सबसे बड़े भाई को प्राप्त होता है। अतएव प्रत्येक प्रधान-मन्त्री यथाशक्ति रुपया एकत्रकर अपने परिवारवालों के लिए छोड़ जाना चाहता है। राणाओं में भी दो प्रकार के व्यक्ति हैं। पहले धर्मपत्नी से उत्पन्न और दूसरे अन्य स्त्रियों द्वारा। उत्तराधिकार केवल धर्मपत्नी से उत्पन्न व्यक्ति को होता है। इस प्रकार नेपाल में राणावंश से सम्बन्धित लोगों की बहुत बड़ी संख्या है, जिन्हें राज्य का कोई-न-कोई पद दिया जाता है। उनके भरण-पोषण का भार नैतिकता की दृष्टि से राज्य पर समझा जाता है। राणा लोगों में बहुविवाह प्रथा है। अतः एक राणा की अनेक स्त्रियाँ होती हैं। वे उनके प्रासाद में रहतीं और जीवन-व्यतीत करती हैं। अतः उनसे उत्पन्न सन्तानों को भी कहीं-न-कहीं राज्य में लगाना आवश्यक होता है। इस प्रकार राज्य के सब स्थान राणाओं, उनकी औरत के एवं विजात पुत्रों

तथा अन्य सम्बन्धियों में बँट जाते हैं। वर्तमान श्री ३ सरकार की विमाता के पुत्र श्री हिरण्य इस समय वीरगाँव के गवर्नर हैं।

राणा लोगों की नीति के कारण मध्यमवर्ग के पुरुषों का नेपाल में नितान्त अभाव है। केवल दो ही वर्ग नेपाल में देखने को मिलेगा। शोषक (पूँजीपति) एव शोषित। यह स्वाभाविक है कि किसी राज्य के लिए मध्यमवर्ग दुःखदायी होता है, क्योंकि वह अधिकार-प्राप्त करने की चेष्टा करता है। शिक्षा-प्राप्त करने के पश्चात् बुद्धि के प्रसरित एवं विकसित होने पर वह राज्य-कार्य में भाग लेना चाहता है, इसलिए राणा लोगों ने प्रारम्भ से ही नेपालवासियों को अन्धकार में रखने का प्रयत्न किया है। इस बात से राणा लोग भलीभाँति परिचित हैं कि उनकी हुकूमत तभी तक है, जब तक जनता अशिक्षित है। जिस दिन नेपाल की गरीब जनता अपने वास्तविक अधिकार को समझ जायगी, उस दिन राणाशाही उसी प्रकार समाप्त होगी जिस प्रकार मल्लशाही तथा अन्य शाहियाँ समाप्त हुई हैं।

राणा लोगों के लिए दो ही मार्ग हैं। या तो वे अपने को समय के अनुरूप बनावें अथवा स्थान खाली करें। यदि वे दोनों में से एक भी नहीं करेंगे तो वह दिन दूर नहीं है, जब कि सम्भवतः राज्य की और निजी सम्पत्ति—दोनों से उन्हें हाथ धोना पड़ेगा।

नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है कि नेपाल-राज्य के समस्त पदों पर राणा लोग ही आरूढ़ हैं और सारे नेपाल को अपने पंजे में कर रखा है।

श्री ३ सरकार के अन्तर्गत प्रधान सेनापति, सीनियर कमां-

डिंग गनरल, कमांडिंग जनरल एवं जनरल के पद होते हैं। क्रम से ये ही लोग एकदूसरे का स्थान ग्रहण करते हुए प्रधानमन्त्री अर्थात् श्री ३ सरकार होते हैं। सन् १९४७ में निम्नलिखित राज्याधिकारी थे।

(१)

महासेनापति—श्री मोहनशमशेरजंगबहादुर राणा
मन्त्री लण्डन—श्री केशर (कमांडिंग जनरल)
कृषि —श्री सिंह ,, ,,
यातायात —श्री शंकर (जनरल)
पी. डब्ल्यू. डी.—श्री नारायण ,,
न्यायालय —श्री मदन
मेडिकल —श्री एकराज ,,
जिन्सी अड्डा —श्री सूर ,,
म्युनिस्पेलिटी और पानीकल—श्री कल्याण (जनरल)
न्यायालय —श्री वसन्त ,,
शिक्षा एवं कलाशाला —श्री मृगेन्द्र ,,
गृह-उद्योग —श्री ब्रह्म ,,
टेलीफोन, बिजली एवं पुलिस—श्री नर ,,
मुल्की अड्डा —श्री शारदा ,,
न्यायालय —श्री अर्जुन ,,
बिकास एवं प्रचार —श्री विजय ,,
विन्तीपत्र निकसाई —श्री आनन्द ,,
चिट्ठी जबरी निकसाई —श्री शान्त

(२)

सीनियर कमांडिंग जेनरल—श्री बबरशमशेरजंगबहादुर राणा

डाक-तार	—श्री अग्नि (कमांडिंग जनरल)
सेना	—श्री हरी (जनरल)
,,	—श्री प्रचण्ड ,,
,,	—श्री लक्ष्मण ,,
वारुणयन्त्र तथा जनगणना	—श्री रामराज्य ,,
सेना	—श्री अरुण ,,
,,	—श्री लोर ,,
,,	—श्री किरण ,,

(३)

हजूरी—श्री बहादुर (कमांडिंग जनरल)

(४)

परराष्ट्र—श्री कृष्ण (जनरल)

प्रत्येक नाम के अन्त में शमशेरजंगबहादुर राणा जोड़ लेना चाहिए।

नेपाल ही ऐसा देश है जहाँ गर्भ से ही बच्चा मेजर जनरल बनकर पैदा होता है। जर्मनी ने अपनी कुल लड़ाई में मुश्किल से सोलह या सत्रह जनरल पैदा किए होंगे। इंग्लैण्ड ने भी सम्भवतः जनरलों की संख्या इतनी नहीं बढ़ाई है, जितनी नेपाल में है। रूस भी इसका अपवाद नहीं कहा जायगा; क्योंकि इतने बड़े देश में लगभग ३० जनरल अथवा उससे उच्च पदाधिकारी हैं तथा मेजर जनरलों की संख्या २० या २५ से अधिक न होगी। अस्तु, इस प्रकार जनरल श्रेणी के ५०

व्यक्ति नेपाल में हो जायँगे। यदि नेपाल की सेना और मिलिशिया दोनों जोड़ ली जायँ तो ४० हजार से अधिक न होगी। इस प्रकार ८०० सैनिकों पर एक जनरल का अनुपात आता है। यह पद नेपाल में इसलिए दिया जाता है कि कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति जन्मना सैनिक पदाधिकारी समझा जाय और उसे वेतन मिलता रहे।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि सिविल एवं मिलिटरी, दोनों स्थानों में जनरल अर्थात् सैनिक पदाधिकारी ही दिखाई देते हैं। न्यायालय, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, कला आदि सब पर सेना-संबंधित व्यक्तियों का शासन है। संसार में सैनिक स्वभाव के आदमियों के हाथों में राज्य की सामाजिक शासन-व्यवस्था को भी सौंप देना सम्भवतः नेपाल सरीखे देश में ही सम्भव है। माना कि नेपाल की परम्परा तथा उसका मुख्य उद्योग-धन्धा उसकी सैनिक प्रवृत्ति ही है, फिर भी यह कहाँ तक न्याय-संगत है कि एक ही वंशवाला राज्य के समस्त पदों का अधिकारी हो। वस्तुतः नेपाल की यह शासन-व्यवस्था पुरानी चली आती हुई राणावंशधरों का षड्यन्त्र है और बिना इसे भंग किए नेपाल में जागर्ति, उन्नति तथा विकास की बात सोचना स्वप्नमात्र है।

जिस प्रकार नेपाल दुनिया से दूर है उसी प्रकार नेपाल-राज्य की आमदनी और खर्च का पता लगाना भी बहुत दूर की बात है। आज तक कभी बजट छपा ही नहीं और न यही मालूम हुआ कि आमदनी कितनी है। राणा लोगों से पूछने पर कहा जाता है कि नेपाल की आमदनी केवल दो करोड़ की

हैं। यह बात सरासर झूठ है। पता लगाने पर मुझे विश्वसनीय सूत्र से पता चला है कि नेपाल की कुल आमदनी १० करोड़ ३ लाख है। जिसमें से निम्नांकित आँकड़े प्रमाणित करेंगे कि गरीब जनता का रुपया जनता के लिए न व्ययकर उससे राणा-परिवार का भरण-पोषण किया जाता है।

१७ राणावंश के राज्य-सदस्यों के लिए	२२ लाख
४ कमांडिंग जनरल को	३ ,,
कमांडर-इन-चीफ को	८३ हजार
प्रधानमन्त्री को	३ लाख
प्रधानमन्त्री की स्त्री को	१ ,,
बी तथा सी कक्षा के राणाओं के लिए जिन्हें उत्तराधिकार प्राप्त नहीं है	१४ ,,
बाहरी आठ राणाओं को भत्ता	१२ ,,
प्रधानमन्त्री का भत्ता	८ ,,
प्रधानमन्त्री तथा चार कमांडिंग जनरल की जीवित विधवाओं के लिए	६ ,,
	६९,८३०००

इस प्रकार राज्य की आमदनी का १४ १/८ प्रतिशत भाग राणा लोगों के पुरस्कार, भत्ता आदि के रूप में निकल जाता है। इसके अतिरिक्त मेजर जनरल, कर्नल, कप्तान तथा विजातपुत्र, दासीपुत्र एवं अन्य सगे-सम्बन्धी लोग कर्मचारी के रूप में राज्य की आय का काफी रुपया वेतन में लेते हैं। इस प्रकार राज्य की

आय केवल शोषकवर्ग को ही शक्तिशाली बनाने के लिए खर्च की जा रही है; ताकि राज्य किसी-न-किसी प्रकार से राणा लोगों के ही हाथों में बना रहे।

नेपाल में राणा-जाति के लोग नाममात्र के लिए वहाँ के अधिवासी हैं। वस्तुतः नेवार, गोरखा, मगर आदि यहाँ के निवासी हैं। यहाँ की जनता भी राणा लोगों को विदेशी समझती है। राणा लोग स्वयं अपने वंश का सम्बन्ध उदयपुर से जोड़ते हैं और उनके ब्याह भी अधिकतर भारतवर्ष के ताल्लुकेदारों, बड़े जमीन्दारों तथा राजाओं के यहाँ होते हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो राणा लोगों का नेपाल की जनता से किसी प्रकार का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं है। नेपाली कन्याओं को उच्चकुलीन प्रधान-स्त्री की श्रेणी नहीं मिलती। वे निम्नकोटि की स्त्री समझी जाती हैं और उनमें बहुत-सी दासियों के रूप में काम-वासना की शान्ति की सामग्री बना ली जाती हैं। इस प्रकार राणाओं ने बहुविवाहों तथा उपविवाहों द्वारा अधिक संख्या में सन्तानोत्पत्ति कर धीरे-धीरे अपना एक वर्ग ही बना लिया है। यह वर्ग ही वहाँ का अधिकारीवर्ग है और उसका काम नेपाल की शासन-सत्ता राणाओं के हाथों में सुरक्षित रखना हुआ करता है। इसी वर्ग का राणा लोग विश्वास करते हैं कि विपत्ति के समय वे काम आएँगे।

आजकल नेपाल की राणेतर अन्य जातियों में पर्याप्त चेतना फैल रही है। सभी लोग इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि राणा लोग अपना पैर नेपाल में जमाए रखने के लिए सब अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं।

राणावंश के पास नेपाल की समस्त सम्पत्ति है। वह सम्पत्ति भारतवर्ष के बैंकों तथा शेयरों पर लगी है। उस सम्पत्ति से नेपाल की उन्नति का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। यदि उसे भारतवर्ष में रखने की अपेक्षा नेपाल में रखकर, वहाँ के उद्योग-धन्धों को उठाने का प्रयत्न किया जाय तो नेपाल की सम्पत्ति से नेपालवालों का कुछ लाभ हो सके। अपनी सम्पत्ति को बाहर रखने का कारण यह है कि नेपाल का राणावंश परस्पर के संघर्ष में एक दूसरे से सदा सशंकित रहता है कि कब कौन-सा कुटुम्ब नेपाल से बाहर निकाल दिया जायगा, इसका निश्चय नहीं रहता। इसलिए अपने चलते दिनों में प्रत्येक राणा-कुटुम्ब राज्य के पद-गौरव का लाभ उठाता हुआ यथाशक्ति भरकर पूँजी नेपाल के बाहर रखता है, जिससे निर्वासन के अवसर पर यहाँ की सरकार उसकी पूँजी पर हाथ न लगा सके।

कुछ लोग समझते हैं कि राणाओं के हट जाने पर नेपाल की उन्नति रुक जायगी, नाना प्रकार के भ्रष्टाचार फैलेंगे, शासन-व्यवस्था क्षीण हो जायगी तथा नेपाल की रक्षित स्वाधीनता समाप्त हो जायगी; किन्तु ये सब मिथ्या धारणाएँ हैं। यदि किसी देश ने उन्नति की है तो सामन्तशाही के नाश के पश्चात् ही की है। रूस, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसी के कारण प्राचीन भारतवर्ष उन्नति कर गया तथा रियासतें मुँह ताकती रह गईं। क्योंकि भारत में किसी समय सामन्तशाही नष्ट हो चुकी थी और देशी रियासतों में वह अब भी पनप रही हैं। भारतवर्ष का उत्थान-काल गणतन्त्रीय काल था। गणतन्त्र के नाश के पश्चात् विशाल
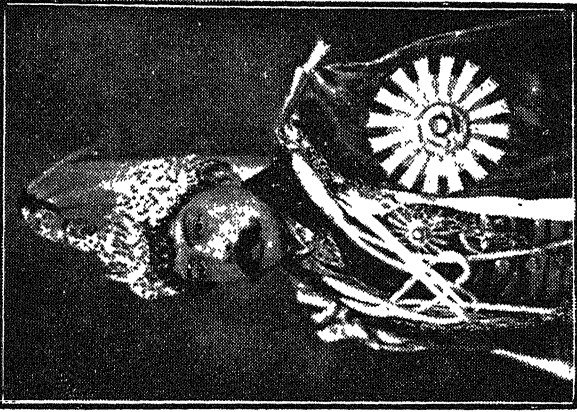
श्री मोहन शमशेर
प्रधान मन्त्री १९४८—
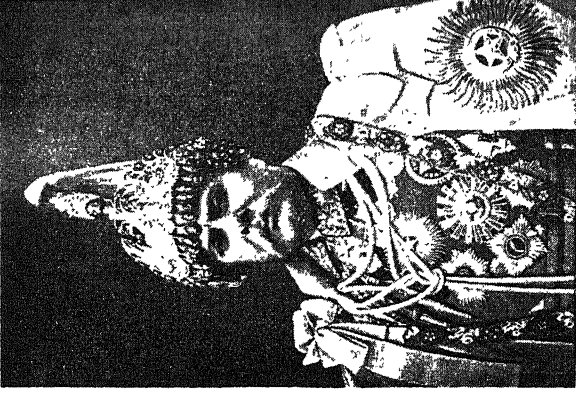
श्री पद्म शमशेर
प्रधान मन्त्री १९४५—४८

राज्य अवश्य हिन्दुस्तान में स्थापित हुए और जनता का शासन न होकर कुछ वर्गविशेष एवं समुदायविशेष का शासन होता गया। फल यह हुआ कि जनता राजनीति एवं राज्य-समस्याओं से दूर होती गई। वह निरुद्यम हो गई। उसने अपने ऊपर भरोसा करना त्याग दिया। उसमें उत्तरदायित्व की भावना न रह गई। वह कमजोर हो गई। उसकी कमर टूट गई। पश्चिम से आँधी का एक झकोरा आया और भारतवर्ष दूसरे ही दिन गुलाम दिखाई पड़ा। उस गुलामी के तगमे को हम अब भी उतारकर फेंक नहीं सके हैं। यदि नेपाल अपनी स्वतन्त्रता स्थायी रखना चाहता है तो उसे अपनी जनता को उठाना होगा। उसके आधार पर, उसकी शक्ति पर पुनर्निर्माण करना होगा। अन्यथा, जैसे आज वहाँ वालों को राणाओं की गुलामी करनी पड़ती है वैसे ही कल दूसरों की गुलामी करने को वे विवश किए जा सकते हैं, और वह अवस्था उत्पन्न होने पर जनता के साथ राणा लोग भी मध्ययुगीय भारतवर्ष की भाँति न बच सकेंगे।

श्री पद्मशमशेरजंगबहादुर राणा

विदाई का दिन निकट था। हम लोग नेपाल से दूसरे दिन प्रातःकाल चलने वाले थे। निमन्त्रण मिला। मैंने समझा कि सिंहदरबार में जाना होगा। लेकिन नहीं, कार हम लोगों को लेकर पहुँची विशालनगरस्थित श्रीपद्मराणा के निवास-स्थान पर। प्रासाद सादा, किन्तु सुन्दर था। फौज की एक छोटी-सी

टुकड़ी प्रांगण में थी। नेपाली बैण्ड बज रहा था। हम लोग ऊपर बैठाए गए।

आज प्रायः सभी राणा एवं उच्च कर्मचारी वहाँ उपस्थित थे। हम लोग कुर्सियों पर बैठ गए। राणाजी दूसरे कमरे में लोगों से मिल रहे थे। हम लोगों का कमरा आधुनिक ढंग से सादा सजा था। देवताओं के एवं वंश के अन्य राणाओं के चित्र कमरा में लगे थे। कुछ देर तक बैठने के बाद त्रिचन्द्र-कालेज के आचार्य श्री उदयराज पाण्डेय ने कहा कि राणाजी आ रहे हैं।

हमने आशा की थी कि भारतीय राजाओं से भी अधिक सजधज में वे आएँगे। किन्तु कमरे में प्रवेश किया एक धवल लम्बी मूर्ति ने, जिसके ललाट पर चन्दन का गोल टीका था। सिर पर खद्दर की गोल टोपी थी। मोटा सूती कोट और मोटा नेपाली पाजामा पहने हुए थे। पैरों में अत्यन्त साधारण सूती जूता और हाथ में छड़ी थी। मैंने समझा कि काशी का कोई ब्राह्मण आचार्य अपनी विद्या के बोझ से दबा हुआ कमरे में आया है। मैं स्वप्न में भी नहीं ख्याल कर सकता था कि नेपाल के यही श्री ३ सरकार राणा पद्म होंगे।

श्री रुद्रराजजी ने संकेत किया। मैं समझ गया। इतने में राणाजी स्वयं हम लोगों के सम्मुख आ पहुँचे और हमें अपने समीप बढ़ने का अवसर ही न दिया। पाण्डेयजी से नेपाली में उन्होंने पूछा—को कौन ? हम लोगों का परिचय दिया गया। महाराज ने मिलाने के लिए हाथ बढ़ा दिया। मैंने समझा था

कि नेपाल के परम विख्यात भूतपूर्व प्रधानसेनापति का लौहहस्त होगा; किन्तु वह कमल से भी कोमल था।

राणाजी सरलतापूर्वक हम लोगों के समीप ही बैठ गए और उन्होंने पूछा--आप लोगों को कष्ट तो नहीं हुआ? नेपाल देखा? हमारे विषय में बहुत कुछ कहा जाता है, अब तो आप लोगों ने आँखों से देख लिया होगा।

कोई काम आ गया। राणाजी दौड़े-से बाहर चले गए। दो मिनट बाद फिर आकर बैठ गए और बोले--इतना तो आप लोग स्वीकार करेंगे कि हमने अपने को स्वाधीन रखा है। हम विदेशी हुकूमत के अँगूठे के नीचे नहीं दबे। हमने अपनी मर्यादा की रक्षा की है। हम चाहते हैं--

इतने में श्री बहादुरशमशेर राणा ने कुछ कहा और वे पुनः बाहर उठकर चले गए। एक ही मिनट बाद दौड़ते से आकर पुनः बैठ गए। उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—हिन्दू-सभ्यता एवं संस्कृति को मैंने यहाँ रक्षित रखा है। हमारा देश गरीब है। हमारा आर्थिक विकास नहीं हो सका है। बहुत से कारण हैं। हमारी बड़ी इच्छा है—

श्रीप्रकाशजी अपनी कार से जा रहे थे। राणाजी को मालूम हुआ। वह दौड़ते-से खिड़की पर जाकर बोले—अरे, कार रोको न! कस्तूरी नहीं दिया, भूल गया। श्रीप्रकाशजी तथा श्री रामउग्रहसिंह की विदाई हो चुकी थी। हम लोगों की बाकी थी। राणाजी को अचानक स्मरण हो आया कि कस्तूरी वे भूल गए हैं।

कस्तूरी देकर राणाजी पुनः आकर बैठ गए और बोले—हम हिन्दू हैं। सब हिन्दू एक हैं। हिन्दुस्तान विभाजित हो गया

है। हम आपसे परे नहीं हैं। आपको किसी तरह का कष्ट तो नहीं हुआ। राणाजी की आँखें भर आईं। खड़े होकर बिदाई माँगी। हम लोगों ने हाथ जोड़ा। वे अपनी छड़ी लिए और हाथ जोड़ते हुए अपनी बैठक में चले गए।

पुनः पाँच मिनट बाद हम लोग क्रमशः पेश किए गए। मैं यहाँ अपने स्वाभाविक पहिनावे कुरता-धोती को पहिनकर आना चाहता था; किन्तु मालूम हुआ कि नेपाल में शवक्रिया के समय धोती पहिनने की अब चाल चल पड़ी है। अतः मैं अदालती सामान्य पोशाक तथा गान्धी टोपी दिए था। राणाजी के सम्मुख पहुँचकर मैंने देखा कि राणाजी एक कुर्सी पर बैठे हैं। अन्य राणा लोग कुछ खड़े और कुछ बैठे थे। मुझे श्री विजयशमशेर राणा ने पेश किया। राणाजी ने अपना हस्ताक्षरित फोटो दिया। उसके पश्चात् दाहिने हाथ ही हथेली पर नेपाल की स्वर्णमुद्रा रखकर उसे दिखाते हुए कहा—हमारी मुद्रा में मिलावट नहीं है। नेपाल की यह तुच्छ भेंट है। आपको बहुत कष्ट हुआ। मैं मुद्रा और चित्र लेकर लौट आया।

भारतीय इतिहास के पृष्ठों में हिन्दूशासन-व्यवस्था तथा उसके व्यवस्थापकों के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है। महाराणाओं ने भी भारत में शासन किया है; किन्तु भारत के कहे जानेवाले नपुंसक राजाओं में आदर्शशासन-व्यवस्था का वास्तविक रूप नहीं प्राप्त हो सकता। क्योंकि उनका शासन बृटिश झण्डे के नीचे बृटिशों के ही कृपापात्र नौकरों द्वारा होता रहा है और हो रहा है। यही कारण है कि बृटिशभारत की शासन-पद्धति तथा भारतीय राज्यों की शासन-पद्धति में कोई

अन्तर नहीं दिखाई देता है। इतना अन्तर अवश्य प्रकट होता है कि बृटिश राज्य में हम सर्वत्र एक ही प्रकार के शासन के भीतर शासित होने का अनुभव करते हैं; किन्तु देशी रियासतों में दुहरी गुलामी की छाया स्पष्ट प्रतीत होती है; अर्थात् अंग्रेजों के गुलाम भारतीय रियासतों के अधिपति हैं और इनके गुलाम रियासतों के नागरिक। बृटिश भारत में तो हम अंग्रेजों से लड़ने की तथा उनसे समानता करने की बात सोच सकते थे; किन्तु रियासतों में अंग्रेजों की पूजा होती आ रही थी। उन्हें प्रसन्न रखने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न किए जाते थे। कहना न होगा कि भारत के देशी राज्य बराबर अंग्रेजों के मौज उड़ाने एवं उनके मनोरंजन के साधन रहे हैं।

इसका स्पष्ट कारण यह है कि देशी राज्यों को अपनी रक्षा करने की चिंता नहीं रखनी पड़ती थी। अंग्रेजों ने उनकी सुरक्षा का भार ले रखा था। देशी राज्यों की बदौलत अंग्रेज जो लाभ उठाते रहे उसके बदले में ऐश-आराम और मौज उड़ाने का सार्टिफिकेट उन्होंने उन्हें दे रखा था। यह मौज तब तक निर्विघ्न चलता रहता था जब तक श्वेतांग महाप्रभु उनसे प्रसन्न रहते थे। श्वेतांगों की मर्जी के विरुद्ध चलने का एकमात्र परिणाम उनके लिए राज्य-त्याग था। यही कारण है कि भारत के देशी राज्यों की नीति बृटिशनीति की अनुवर्तिनी एवं मुखापेक्षिणी बनी रहती थी तथा उनके राजा गैरजिम्मेदार, अलहदी और निकम्मे हो गए थे। प्रजा एवं राज्य के प्रति उत्तरदायित्व की उन्हें कोई चिंता नहीं रहती थी; क्योंकि उनसे उन्हें कुछ मिलनेवाला नहीं था। धीरे-धीरे प्रजा से सम्पर्क रखना, अपने राज्य में कोई

सुधार करना अथवा राज्यकार्य में स्वयं भाग लेना उनकी परम्परा के विरुद्ध की बात हो गई थी। देशी राजा यदि कुछ सुधार करना चाहते अथवा राज्यकार्य में आधुनिक विचारों के अनुसार कार्य करने की मनोवृत्ति दिखाते तो उसका परिणाम प्रतिकूल ही होता था; क्योंकि अंग्रेज देशी रियासतों की प्रजा के प्रति उनमें किसी प्रकार की जिम्मेदारी आने देना अथवा प्रगतिशील विचारों द्वारा उन्हें काम करने देना अनुचित समझते थे और इस प्रकार के राजा सशंक दृष्टि से देखे जाते थे। जिन राजाओं ने श्वेतांग महाप्रभुओं की इस सत्यानाशी नीति का पालन नहीं किया, वे कान पकड़कर बाहर निकाल दिए गए। राजाओं के बाहर निकाले जाने पर जनता न तो किसी प्रकार का आन्दोलन अथवा विरोध-प्रदर्शन करती और न भारतवर्ष के राजा ही उसका पक्ष लेते। परिणाम यह होता था कि राजा लोग अंग्रेजों के पूर्ण मुखापेक्षी रहते थे। बुरी लतों एवं निष्क्रियता में पड़ जाने के कारण वे किसी काम के न रहते थे। अतएव उनके जीवन की धारा दासोन्मुखी एवं उनका स्थायित्व अंग्रेजों की दया पर निर्भर होता था।

देशी राज्यों में फौज रहती है, उसका व्यय राज्य से दिया जाता है; किन्तु फौज राजा के संकेत पर कुछ कर नहीं सकती। राजा का स्वतः कोई भी सम्पर्क फौज से नहीं रहता। कारण कि सुख-विलासिता का जीवन त्यागकर परेड करना और प्रजा कहे जानेवाले सिपाहियों के साथ मार्च करना अपनी प्रतिष्ठा में बट्टा लगाना समझा जाता है। उनके राज्य की व्यवस्था रिटायर्ड सिविलियन, भारत-सरकार से मँगनी माँगे हुए पी० सी०

एस० या पेंशन-प्राप्त अन्य कर्मचारी करते थे। इस प्रकार भारतीय देशी राज्यों की शासन-व्यवस्था वस्तुतः केवल अंग्रेजी व्यवस्था की छायामात्र थी।

इसमें सन्देह नहीं कि नेपाल-राज्य की व्यवस्था इससे सर्वथा भिन्न है। क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों को सदा अपने से दूर रखा। अंग्रेजों के साथ बराबरी का अपना दावा रखा। नेपाल को उनके मनोरंजन की सामग्री नहीं बनने दिया। उन्हें बराबर सशंक दृष्टि से देखते रहे। अपनी व्यवस्था में अंग्रेज ही नहीं, किसी भी बाहरी शक्ति का हाथ नहीं लगने दिया। अतः उनकी शासन-व्यवस्था अंग्रेजों की शासन-व्यवस्था की नक़ल न हो सकी। यदि नेपाली नकल करते तो नकलची परीक्षार्थी के समान मुँह के बल गिर जाते और जीवन में कभी सफल न होते। नेपाल-राज्य ने अपनी फौज अपने हाथों में रखी। अपने मुल्क के कोने-कोने पर दृष्टि रखी। सब बातों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लिया। मुल्क की जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता की जिम्मेदारी, स्वाधीनता की जिम्मेदारी एवं शासन की जिम्मेदारी का भार स्वयं ग्रहण किया। यदि नेपाल के शासकों ने आराम किया तो टूडीखेल के मैदान में परेड भी की। गोरखों के साथ कन्धा मिलाकर रणक्षेत्रों में युद्ध भी किया। इस प्रकार नेपाल का जीवन और उसकी परम्परा को सैनिक के रूप में बराबर बनाए रखा। सेना के रंग में नेपाल को रँग दिया। चाहे गोरखे अंग्रेजों की फौज में लड़े हों, चाहे अपने देश के लिए लड़े हों; लेकिन लड़ने की शिक्षा उन्होंने ली। अपने शस्त्र के कारखाने (आरसनल) स्वयं बनाए। वे गोली-बारूद के लिए

विदेशी कारखानों पर निर्भर नहीं रहे। साथ ही; कमर कसकर आफिसों में जाकर उन्होंने अपना पसीना भी बहाया। अपनी सैनिक किंवा आयुधजीवी परम्परा को सुरक्षित रखा। लड़का जन्म लेते ही मानों सेना के लिए तैयार किया जाने लगता था। राजवंश का लड़का जन्मते ही मेजरजनरल हो जाता था। इस प्रकार वहाँ सैनिक परम्परा बराबर सुरक्षित रखी गई।

राज्य का आधार जनशक्ति है। उसके न रहने पर राज्य का नाश होता है। भारत के देशी राजाओं ने अपना राज्य उसी दिन नष्ट कर दिया जिस दिन लार्ड वेलेजली की चलाई 'सहायक सन्धि' के सन्धि-पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर कर अपना स्वतन्त्र सैनिक जीवन नष्ट कर दिया। इसके विरुद्ध नेपाल स्वतंत्र सैनिक जीवन सुरक्षित रख सका, इसलिए वह अपनी स्वाधीनता को भी कायम रख सका। नेपाल ने अपनी मौलिकता कायम रखी। उसने अपने को पश्चिमी न बनाकर जापान की तरह पूर्वी ही रखा। बोल-चाल एवं सरकारी कारबार को नेपाली भाषा एवं देवनागरी लिपि में रखकर लोगों को बराबर याद दिलाते रहे कि तुम्हारी भाषा, तुम्हारी व्यवस्था और तुम्हारी लिपि अपनी स्वतन्त्र है। इसका नाश न होने दो और जापान की तरह पाश्चात्य राष्ट्रों के गुणों को भी अपनाकर राज्य को दृढ़ बनाए रखो।

नेपाल ने पाश्चात्य राष्ट्रों की सैनिक परम्परा को भी अवश्य अपनाया; लेकिन उसे अपना बनाकर। अपने यहाँ सैनिक स्कूल खोला; किन्तु उसमें शिक्षक वे स्वयं हुए। सारे नेपाल में परेड-मैदानों का जाल बिछा दिया; लेकिन शिक्षक एवं

अधिकारी स्वयं हुए। विदेशियों का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में प्रवेश नहीं होने दिया। बृटिश लिगेशन का प्रधान भी यदि बाहर जाता तो उसे सूचना देनी होती थी कि आज वह अमुक स्थान पर जायगा। यहाँ तक कि बृटिश लिगेशन के सैकड़ों हिन्दुस्तानी कर्मचारियों से भी नेपालियों का सम्पर्क नहीं होने दिया। फल यह हुआ कि लिगेशन के कर्मचारी स्वयं अलग रहने लगे। सम्पर्क में आने की चेष्टा न की।

नेपालियों ने धर्म को त्यागा नहीं। धर्म को खेल या तमाशा नहीं बनाया। धर्म द्वारा ही उन्होंने शक्ति ग्रहण की। धर्म द्वारा ही उन्होंने सैनिक परम्परा कायम की। वहाँ श्री पशुपतिनाथ को सब कुछ अर्पितकर राजा केवल प्रजा के रंजन के लिए होता है। भगवान् के दास के रूप में कार्य करता है। अपने सिक्कों पर भी पशुपतिनाथ, गोरखनाथ आदि देवताओं एवं महापुरुषों के चित्र या नाम अंकितकर 'जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का प्राचीन आदर्शवाक्य नेपाल के कोने-कोने में पहुँचाया। इसके द्वारा अपनी प्रजा को यह संदेश सुनाया कि अपनी मातृभूमि की रक्षा करना ही नेपालियों का मुख्य कर्तव्य है। यदि सच पूछा जाय तो इसी भावना के कारण अंग्रेजों की हिम्मत न हुई कि नेपाल पर हाथ लगा सकें।

नेपाल में सब गढ़ियों पर नियमित सैनिक पहरा रहता है। प्रत्येक स्थान पर कोई कप्तान, कोई कर्नल, कोई जनरल मौजूद रहता है। सब अपने काम में चौकन्ने रहते हैं। प्रत्येक आगन्तुक की जाँच होती है। वहाँ के सब कार्य सैनिक ढंग से सम्पन्न होते हैं। नेपाल ने आरम्भ से ही स्वाधीन रहना चाहा, इसलिए

स्वाधीन बना हुआ है। उसने अंग्रेजों से युद्ध किया, सन्धि की—सब कुछ किया; किन्तु बराबरी के नाते किया। सन्धि के पश्चात् भी अंग्रेजों का विश्वास नहीं किया, उनसे अपने को कोसों दूर रखा तथा उनका प्रवेश अपने यहाँ होने नहीं दिया। अपने घरेलू मामलों में उन्हें हाथ नहीं डालने दिया। वे दुनिया के झमेलों से दूर अपनी अलग दुनिया बनाकर उसकी रक्षा उसकी प्राचीरों, उसकी घाटियों और दर्रों में करते रहे।

व्यक्ति जब जिम्मेदारी का अनुभव करता है तो जिम्मेदारी स्वयं उसे जिम्मेदार होने के अनुरूप बना देती है। नेपालियों ने यही किया। वे अपनी सम्पत्ति, अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति, अपना गौरव अलग लिए बैठे थे और उसकी रक्षा करते रहे। उसी का परिणाम नेपाल की स्वाधीनता है।

चाहे वह नेपाल के राजा श्री ५ सरकार त्रिभुवनवीरविक्रम हों, चाहे श्री ३ सरकार पद्मशमशेर हों, फुटबाल के मैच में आप उन्हें नागरिकों के पहिनावे में नागरिकों के साथ मैच खेलते सानन्द देख सकते हैं। उनके पहिनावे में और नेपाल-राज्य के एक साधारण नागरिक के पहिनावे में विशेष अन्तर न मिलेगा। वे बोलेंगे अपनी भाषा में। वे अपने विचारों को संक्षेप में प्रकट कर देंगे। वे बहस नहीं करेंगे। सारांश यह कि हर बात की उनकी सादगी में ही गम्भीरता एवं मौलिकता है।

नेपाल में समय की पाबन्दी बड़ी कठिन है। उनकी पाबन्दी के आगे अंग्रेज भी मात हैं। यदि कोई कार्य ३ बजे आरम्भ होनेवाला है तो ठीक ३ बजे ही आरम्भ होगा। यदि आपसे भेंट करने का समय २-३५ पर दिया गया है तो आपके कमरे

श्री मोहन शमशेर एवं राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद

में ठीक २--३५ पर ही वे दिखाई देंगे। सैनिक परम्परा एवं व्यवहार-कुशलता के कारण नेपाल के लोग समय की पाबन्दी खूब जानते हैं। चाणक्य के शब्दों में उन्हें कुटिल राजनीतिज्ञ कहना अनुचित न होगा। उनकी मिरजई और कपड़े की गोल टोपी देखकर उन्हें सरल व्यक्ति समझ लेना भयंकर भूल होगी। उनकी सादगी के पीछे उनके आत्मसम्मान का भाव, विकट समस्याओं का सुलझाव, राजनीतिज्ञता, दूरदर्शिता आदि दिखाई देती हैं। उनकी सरल, शिष्ट एवं शीलसम्पन्न दिखाई देनेवाली शांत मूर्ति के भीतर जलती अग्निज्योति का स्पष्ट आभास दिखाई देता है। उन्हें कोई सहज ही धोखा नहीं दे सकता। वे सहस्त्रों वर्षों से स्वाधीन हैं। अंग्रेज बहुत इच्छुक एवं प्रयत्नशील होते हुए भी उन्हें हरा न सके, इससे यह मानना ही होगा कि उनमें बहुत बड़ी विशेषता है। नेपाल की यही विशेषता उसका गौरव एवं श्रेष्ठता है।

———

अनुक्रमणिका

ख

घ

च